बीएड, द्वितीय वर्ष

पर्यावरण और विकास

(ENVIRONMENT AND DEVELOPMENT)

GEDE-17

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Meena Barse
   Assistant Professor
   Sant Hirdaram Girls College, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group of Institutions, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Pushpita Rajawat
   Assistant Professor
   Madhyanchal University, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Hemlata Dinkar
   HOD, DME
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. Meena Barse
   Assistant Professor
   Sant Hirdaram Girls College, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group of Institutions, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Pushpita Rajawat
   Assistant Professor
   Madhyanchal University, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Dr Rakhi Mittal, Associate Professor, Ginni Devi Modi Girls PG College, Modinagar, Ghaziabad
Units: (1-2)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

पर्यावरण और विकास

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 पर्यावरण का परिचय पर्यावरण और परितंत्र, पर्यावरण के संघटक, विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्रों का अध्ययन पारिस्थितिकी तंत्र में गतिशीलता पारिस्थितिक तंत्र का ऊर्जा प्रवाह पारिस्थितिकीय पिरामिड पारिस्थितिक तंत्र में जैव भू–रसायन प्रवाह विकास का पर्यावरण पर प्रभाव प्रदूषण का अर्थ विनियामक कानून; मानवीय गतिविधियों के गौण प्रभाव	**इकाई 1** : मानवीय गतिविधियां और पर्यावरण **(पृष्ठ 3–136)**
इकाई–2 सतत विकास सतत विकास : मानवीय व्यवहार हेतु निहितार्थ सतत विकास की प्राप्ति सतत विकास के लिए अधिगम	**इकाई 2** : सतत विकास हेतु प्रयास **(पृष्ठ 137–236)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 मानवीय गतिविधियां और पर्यावरण **3–136**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 पर्यावरण का परिचय
  1.2.1 पर्यावरण और परितंत्र
  1.2.2 पर्यावरण के संघटक
  1.2.3 विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्रों का अध्ययन
1.3 पारिस्थितिकी तंत्र में गतिशीलता
  1.3.1 पारिस्थितिक तंत्र का ऊर्जा प्रवाह
  1.3.2 पारिस्थितिकीय पिरामिड
  1.3.3 पारिस्थितिक तंत्र में जैव भू–रसायन प्रवाह
1.4 विकास का पर्यावरण पर प्रभाव
  1.4.1 प्रदूषण का अर्थ
  1.4.2 विनियामक कानून
1.5 मानवीय गतिविधियों के गौण प्रभाव
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 सतत विकास हेतु प्रयास **137–236**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 सतत विकास
2.3 सतत विकास : मानवीय व्यवहार हेतु निहितार्थ
2.4 सतत विकास की प्राप्ति
2.5 सतत विकास के लिए अधिगम
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'पर्यावरण और विकास' का लेखन विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.एड. द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम के अनुरूप किया गया है।

मनुष्य के लिए पर्यावरण अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उसके जीवन को प्रभावित करता है। अपने अस्तित्व के लिए मनुष्य पर्यावरण पर निर्भर करता है। मनुष्य, पशु–पक्षी, वनस्पति तथा निर्जीव वस्तुएं मिलकर पर्यावरण का निर्माण करते हैं। पर्यावरण का अध्ययन और इसका संरक्षण कैसे किया जाए यह सीखना आवश्यक है और वर्तमान समय में तो यह और भी आवश्यक हो जाता है कि प्रौद्योगिकी ने प्राकृतिक संसाधनों और पारिस्थितिकी तंत्र को नष्ट करना आरंभ कर दिया है।

अब अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के माध्यम से वैश्विक विषयों पर जागरूकता का प्रसार किया जा रहा है जिससे कि तुरंत उपाय लागू किए जा सकें। इन विषयों की श्रृंखला में डायनामाइट फिशिंग से लेकर ग्लोबल वार्मिंग, वन अनाच्छादन से लेकर खनन तक के मामले आते हैं। तीव्र शहरीकरण और प्रौद्योगिकीय उन्नति के साथ–साथ पर्यावरण सुधार के लिए आवश्यक उपायों को सीखने की भी आवश्यकता है जिससे कि प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा की जा सके या एक बेहतर पारिस्थितिकी तंत्र से उसे प्रतिस्थापित किया जा सके।

इस पुस्तक में स्वाध्ययन प्रणाली का प्रयोग किया गया है जिसमें प्रत्येक इकाई का आरंभ उस इकाई के परिचय से होता है तत्पश्चात इकाई के उद्देश्य आते हैं। इसके बाद विस्तृत सरल और संरचित पाठ दिया गया है जिसमें बीच–बीच में अपनी प्रगति जांचिए के प्रश्न दिए गए हैं जिससे कि विद्यार्थी स्वयं यह जांच सकें कि उसने जो पढ़ा है, उसे कितना सीखा है। प्रभावी पुनर्कथन के लिए इकाई के अंत में सारांश, मुख्य शब्दावली और प्रश्न व अभ्यास दिए गए हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पाठ्यक्रम को दो इकाइयों में समायोजित किया गया है। इन इकाइयों का विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई मानवीय गतिविधियों और पर्यावरण पर आधारित है। इसमें पर्यावरण का विस्तृत परिचय दिया गया है तथा पारिस्थितिकी तंत्र में गतिशीलता का विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस इकाई में विकास के कारण पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। इसी इकाई में पर्यावरण पर पड़ने वाले मानवीय गतिविधियों के गौण प्रभावों का भी अध्ययन किया गया है।

दूसरी इकाई सतत विकास हेतु किए जाने वाले प्रयासों पर आधारित है। इसमें सतत विकास का विस्तारपूर्वक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तथा सतत विकास के संदर्भ में मानवीय व्यवहार हेतु निहितार्थ का विश्लेषण किया गया है। इसी इकाई में सतत विकास की प्राप्ति के पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है तथा सतत विकास के लिए किए जाने वाले अध्ययन–अधिगम की समीक्षा की गई है।

प्रस्तुत पुस्तक में पर्यावरण और विकास से जुड़े विभिन्न पहलुओं का विस्तृत अध्ययन किया गया है तथा पर्यावरण से जुड़ी मानवीय गतिविधियों एवं सतत विकास के प्रयासों का सांगोपांग विवेचन सरल, सहज एवं रोचक भाषा में किया गया है। हमें आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक अध्येताओं के ज्ञानवर्द्धन एवं मार्गदर्शन में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 मानवीय गतिविधियां और पर्यावरण

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 पर्यावरण का परिचय
  1.2.1 पर्यावरण और परितंत्र
  1.2.2 पर्यावरण के संघटक
  1.2.3 विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्रों का अध्ययन
1.3 पारिस्थितिकी तंत्र में गतिशीलता
  1.3.1 पारिस्थितिक तंत्र का ऊर्जा प्रवाह
  1.3.2 पारिस्थितिकीय पिरामिड
  1.3.3 पारिस्थितिक तंत्र में जैव भू–रसायन प्रवाह
1.4 विकास का पर्यावरण पर प्रभाव
  1.4.1 प्रदूषण का अर्थ
  1.4.2 विनियामक कानून
1.5 मानवीय गतिविधियों के गौण प्रभाव
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

प्रकृति के जैव (Biotic) व अजैव (Abiotic) तत्वों के समुच्चय को पर्यावरण कहते हैं। भूमि, जल तथा वायु भौतिक पर्यावरण का निर्माण करते हैं, जबकि जैविक प्राणी पशु–पक्षी, पेड़–पौधे तथा मानव जैविक पर्यावरण का निर्माण करते हैं।

भौतिक पर्यावरण पर ही जैविक पर्यावरण निर्भर करता है तथा जैविक पर्यावरण भूतल पर प्राणि–मात्र को जीवन प्रदान करने के लिए खाद्यान्न सामग्री एवं अन्य वस्तुएं प्रदान करता है। मानव वनस्पति तथा पशु–पक्षियों के अभाव में जीवित नहीं रह सकता है। मानव शरीर की रचना भी इन्हीं तत्वों से मिलकर हुई है तथा जीवन की समाप्ति पर शरीर भी इन्हीं तत्वों में विलीन हो जाता है।

भौतिक पर्यावरण के इन तत्वों के कारण अर्थात् पर्यावरण संतुलन के कारण ही सौर मण्डल में मात्र पृथ्वी ही एक जीवित ग्रह है और पर्यावरण के असंतुलन के कारण ही चन्द्रमा पर मानव–जीवन असम्भव है। हमारे वैज्ञानिक मंगल ग्रह पर भी प्राणी जीवन की खोज में संलग्न हैं। इस प्रकार सौर मण्डल में पृथ्वी ही ऐसा प्रमुख ग्रह है जिसमें पर्यावरण के समस्त घटक विद्यमान हैं जिनके कारण यहां जीवन संभव हुआ है। सौर मण्डल के अन्य ग्रहों पर भी जीवन के प्रमाण अभी तक नहीं मिल पाए हैं। पर्यावरण के ये समस्त घटक एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं, जिससे इनका विकास संभव हो पाता है। समस्त प्राणी, वनस्पति जीव–जंतु तथा मानव इसी पर्यावरण के अंग हैं और

मानव इस पर्यावरण की सर्वश्रेष्ठ कृति है। पर्यावरण के इन्हीं घटकों से मानव का विकास होता है और समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है।

टिप्पणी

प्रस्तुत इकाई में मानवीय गतिविधियों एवं पर्यावरण के अंतर्गत पर्यावरण के स्वरूप, पारिस्थितिकी तंत्र में गतिशीलता, पर्यावरण पर विकास के प्रभाव तथा मानवीय गतिविधियों के गौण प्रभावों का अध्ययन किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद बाद आप–

- मानवीय गतिविधियों एवं पर्यावरण के संबंध को समझ पाएंगे;
- पर्यावरण के स्वरूप से अवगत हो पाएंगे;
- पारिस्थितिकी तंत्र में गतिशीलता के बारे में जान पाएंगे;
- पर्यावरण पर पड़ने वाले विकास के असर को समझ पाएंगे;
- मानवीय गतिविधियों के गौण प्रभावों का अध्ययन कर पाएंगे।

1.2 पर्यावरण का परिचय

जल, स्थल और वायुमण्डल में उपलब्ध समस्त वस्तुएँ, शक्तियां, भौगोलिक रचना और मानवीय रचनाएं, संपूर्ण वनस्पति एवं जीव जगत, जल, स्थल, वर्षा, मौसमी परिवर्तन हवा, सूर्य, चन्द्रमा, प्रकाश आदि के द्वारा हमारा पर्यावरण निर्धारित होता है। पर्यावरण की कार्यप्रणाली प्राकृतिक संसाधनों से संचालित होती है तथा पर्यावरण के तत्वों में पार्थिव एकता विद्यमान है। पर्यावरण हमारी पृथ्वी पर जीवन का आधार है, जो न केवल मानव अपितु विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तुओं एवं वनस्पतियों के उद्भव, विकास एवं अस्तित्व का आधार है। सभ्यता के विकास से वर्तमान युग तक मानव ने जो प्रगति की है, उसमें पर्यावरण की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

1.2.1 पर्यावरण और परितंत्र

पर्यावरण शब्द अंग्रेजी के 'Environment' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। जीवधारियों एवं वनस्पतियों के चारों ओर जो आवरण है, वह पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के Environ शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है– आवृत्त या घिरा हुआ। पर्यावरण से अभिप्राय उन समस्त भौतिक दशाओं तथा तत्वों से लिया गया है जो मानव जाति को चारों ओर से घेरे हुए हैं। पर्यावरण के कुछ कारक संसाधन के रूप में कार्य करते हैं, जबकि दूसरे कारक नियंत्रक का कार्य करते हैं। कुछ विद्वानों ने पर्यावरण को मिल्यू (Milleu) से संबोधित किया है, जिसका अर्थ चारों ओर के वातावरण का समूह होता है।

पर्यावरण को विभिन्न विषयों में इकोसफियर (Ecosphere), प्राकृतिक वास (Habitat), जीवमण्डल (Geosphere) जैसी शब्दावली से भी जाना जाता है।

साधारण शब्दों में, 'पर्यावरण उन परिस्थितियों तथा दशाओं (भौतिक) को प्रदर्शित करता है, जो किसी एकल जीव या जीव समूह को चारों ओर से आवृत्त करती हैं तथा उसे प्रभावित करती हैं।'

टिप्पणी

'पर्यावरण' शब्द परि+आवरण से मिलकर बना है अर्थात् दूसरी वस्तुएं जो हमें आवरित कर रही हैं हमारा पर्यावरण है। पृथ्वी के चारों ओर जो भी जीवित और निर्जीव घटक हैं वे सब आपस में मिलकर पर्यावरण संतुलन का ताना–बाना बुनते हैं तथा जीवन की क्रियाओं को चलाने में सहायता प्रदान करते हैं।

प्राचीन काल के ग्रन्थों में वर्णित पंचतत्व–क्षिति (धरती), जल (पावक), अग्नि (ऊर्जा), गगन (आकाश), एवं समीर (वायु) ही हमारे जीवनदायक पर्यावरण के मुख्य ढांचे को बनाते हैं परन्तु गत वर्षों में हमारी जनसंख्या विस्फोट, अनियमित औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण, फैलती सघन कृषि, वनों का कटान तथा विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में पर्यावरण पहलुओं पर विशेष ध्यान न दिये जाने के कारण पर्यावरण असंतुलित होता जा रहा है।

गांधीजी ने कहा था, 'प्रकृति व्यक्ति की आवश्यकताओं की तो पूर्ति कर सकती है। किंतु यह प्रत्येक व्यक्ति के लालच की पूर्ति नहीं कर सकती है।'

पर्यावरण की परिभाषा (Definitions of Environment)

विभिन्न विद्वानों तथा पर्यावरणविदों द्वारा पर्यावरण को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है–

- विश्वकोश के अनुसार, 'पर्यावरण के अन्तर्गत उन समस्त दशाओं, संगठन और प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है जो किसी जीव अथवा प्रजाति के उद्भव, विकास और मृत्यु को प्रभावित करते हैं।'

  (The sum total of all conditions, agencies and influences which affect the development, growth, life and death of an organism, species or race.)

- एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के अनुसार, 'पर्यावरण उन समस्त बाह्य प्रभावों का समूह है जो जीवों को प्राकृतिक, भौतिक एवं जैविक शक्ति से प्रभावित करते रहते हैं तथा प्रत्येक जीव को आवृत्त किये रहते हैं।'

  'The entire range of external influences acting on organism both the physical and biological (in other organism), forces of nature surrounding an individual.'

- पी. गिसबर्ट के अनुसार, 'पर्यावरण किसी वस्तु के आसपास के वातावरण से सम्बन्धित है और उस पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है।'

  According to P. Gistbert, 'Environment is anything immediately surrounding an object and exerting a direct influence on it.'

- ई.जे. रॉस के शब्दों में, 'पर्यावरण एक बाह्य शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है।'

  An the words of E.J. Ross, 'Environment is an external force which influences us.'

- डगलस व हालैण्ड के अनुसार, 'पर्यावरण वह शब्द है जो समस्त बाह्य शक्तियों, प्रभावों और परिस्थितियों का सामूहिक रूप से वर्णन करता है जो जीवधारी के जीवन, स्वभाव, व्यवहार तथा अभिवृत्ति, विकास तथा प्रौढ़ता पर प्रभाव डालता है।'

- प्रसिद्ध अमेरिकी वैज्ञानिक हर्स, कोकवट्स के अनुसार, 'पर्यावरण उन समस्त बाह्य दशाओं और प्रभावों का योग है जो प्राणी के जीवन एवं विकास को प्रभावित करते हैं।'

टिप्पणी

- डा. डेविस के शब्दों में, 'मनुष्य के सम्बन्ध में पर्यावरण से अभिप्राय भूतल पर मानव के चारों ओर फैले उन समस्त भौतिक स्वरूपों से है, जिनके द्वारा वे निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं।'
- डडले स्टेम्प के अनुसार, 'पर्यावरण प्रभावों का ऐसा योग है जिसमें किसी जीव के विकास एवं प्रकृति की परिस्थितियों के संपूर्ण तथ्य आपसी सामंजस्य से वातावरण बनाते हैं।'
- शिक्षाशास्त्री टॉमसन के विचारानुसार, 'पर्यावरण ही शिक्षक है शिक्षा का कार्य छात्र को उसके अनुकूल बनाना है।'
- विश्व शब्दकोश के अनुसार, 'पर्यावरण के अन्तर्गत उन समस्त दशाओं, संगठन और प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है जो जीवों व उनकी प्रजातियों के विकास जीवन एवं मृत्यु को प्रभावित करते हैं।'
- हर्सकोविट्ज के मतानुसार, 'जो तथ्य मानव के जीवन और विकास को प्रभावित करते हैं उन संपूर्ण तथ्यों का योग पर्यावरण कहलाता है (सजीव अथवा निर्जीव)।'
- ए.बी. सक्सेना के अनुसार, 'पर्यावरण शिक्षा वह प्रक्रिया है जो पर्यावरण के संबंध में हमें संचेतना, ज्ञान और समझ प्रदान करती है। इसके सम्बन्ध में अनुकूल दृष्टिकोण का विकास करती है और इसके संरक्षण, तथा सुधार की दिशा में हमें प्रतिबद्ध करती है।'
- निकोलर्स के अनुसार, 'पर्यावरण उन समस्त बाह्य दशाओं तथा प्रभावों का योग है जो प्रत्येक प्राणी के जीवन विकास पर प्रभाव डालते हैं।'
- सी.सी. पार्क के अनुसार, 'मनुष्य एक विशेष समय पर जिन संपूर्ण परिस्थितियों से घिरा हुआ है उसे पर्यावरण या वातावरण कहा जाता है।'
- विश्व के लिए शिक्षा यूनेस्को यूरोप के अनुसार, 'पर्यावरण शिक्षा के विषय क्षेत्र उन पाठ्यक्रमों की तुलना में कम परिभाषित हैं परन्तु फिर भी यह सर्वमान्य है कि जैविक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मानवीय संसाधनों से सामग्री प्राप्त होती है। इस शिक्षा के लिए संप्रत्यात्मक विधि सर्वोत्तम है।'
- जर्मन वैज्ञानिक फिटिंग के अनुसार, 'पर्यावरण जीवों के परिवृत्तिय कारकों का योग है। इसमें जीवन की परिस्थितियों के संपूर्ण तथ्य आपसी सामंजस्य से वातावरण निर्मित करते हैं।'
- एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजूकेशन रिसर्च के अनुसार, 'पर्यावरण के लिए शिक्षा वास्तव में एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा पर्यावरण संबंधित मूल विषयों की जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए सबसे ज्यादा आवश्यकता इस बात की है कि बच्चे इन समस्याओं के प्रति जागरूक बनें और उनके संबंध में गहराई से सोच विचार करके उनका समाधान खोजने में जुट जाएं।'
- प्रसिद्ध विद्वान दार्शनिक तांसले के अनुसार, 'चारों ओर पायी जाने वाली प्रभावकारी दशाओं (Effective Conditions) का वह योग, जिसमें जीव निवास करते हैं, वातावरण अथवा पर्यावरण कहलाता है।'

टिप्पणी

- प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता ए. फिटिंग के मतानुसार, 'जीव की परिस्थिति के समस्त तत्व या घटक (Factors) सम्मिलित होकर पर्यावरण कहलाते हैं।'
- डा. सविन्द्र सिंह (भूगोलवेत्ता) के शब्दों में, 'पर्यावरण भूगोल सामान्य रूप से जीवित जीवों तथा प्राकृतिक पर्यावरण के मध्य तथा मुख्यतः प्रौद्योगिक स्तर पर विकसित आर्थिक मानव एवं उसके प्राकृतिक वातावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्धों के स्थानिक गुणों का अध्ययन है।'
- एनास्टसी ने पर्यावरण को परिभाषित करते हुए कहा है कि, 'पर्यावरण वह प्रत्येक वस्तु है जो शुक्र कण के अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करती है।'
- के.आर. दीक्षित के अनुसार, 'पर्यावरण विश्व का समग्र दृष्टिकोण है क्योंकि यह किसी समय संदर्भ बहुस्थानिक तत्वीय एवं सामाजिक–आर्थिक तंत्रों, जो जैविक एवं अजैविक रूपों के व्यवहार/आचार पद्धति तथा स्थान की गुणवत्ता और गुणों के आधार पर एक–दूसरे से भिन्न होते हैं, के साथ कार्य करता है।'
- श्री लक्ष्मीधर (महानिदेशक, राष्ट्रीय साक्षरता मिशन) के शब्दों में, 'पर्यावरण उन समस्त प्राकृतिक संसाधनों की समग्रता का नाम है, जो धरती माता ने मानव–जाति के लिए वरदान रूप में प्रदान किये हैं, ये संसाधन हैं, वायु, जमीन, वनस्पति, वन व वन्य जीव, जो हमें घेरे हुए हैं और जो प्रतिदिन हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं।'
- शैक्षिक अनुसंधान विश्वकोश के अनुसार, 'किसी के लिए यह निश्चित करना उचित नहीं है कि पर्यावरणीय अध्ययन भूगोल तथा नागरिक शास्त्र का योग मात्र है। निश्चय ही यह इन विषयों से पर्याप्त विषय सामग्री प्राप्त करता है, मगर यह उसी सामग्री को ग्रहण करता है जो मानव के वर्तमान तथा दैनिक जीवन के संबंधों को स्पष्ट करती है।'
- वुडवर्थ के मतानुसार, 'पर्यावरण शब्द का अभिप्राय उन समस्त बाह्य शक्तियों एवं तत्वों से है जो व्यक्ति को जीवन पर्यन्त प्रभावित करते हैं।'

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो कुछ मानव के चारों ओर विद्यमान है तथा हमारी रहन–सहन की दशाओं एवं मानसिक क्षमताओं को प्रभावित करता है, पर्यावरण कहलाता है। प्रकृति में जो कुछ भी मानव के लिए परिलक्षित होता है–जल, पर्वत, हवा, मृदा, पादप, प्राणी, भौतिक प्रभाव जैसे– नदी, ताप, वायुदाब, वर्षा तथा जैवीय प्रभाव समस्त सम्मिलित रूप से पर्यावरण की रचना करने वाले अवयव हैं। अतएव पर्यावरण से तात्पर्य उन समस्त बाह्य प्रभावी कारकों (Factors), दशाओं (Conditions), वस्तुओं (Objects), तथा स्थितियों (Situations) से है जो किसी जीव या प्राणी या पादप पर प्रभाव डालती हैं। पर्यावरण निरन्तर परिवर्तनशील होता है। वायुमण्डल (Atmosphere), स्थलमण्डल (Lythosphere), जलमण्डल (Hydrosphere) तथा जीवमण्डल (Biosphere) पर्यावरण के प्रमुख अंग हैं। यदि वायुमण्डल न होता तो पृथ्वी की स्थिति भी बुध, शुक्र अथवा अन्य ग्रहों के समान होती, क्योंकि वायुमण्डल न होने के कारण जल निर्माण संभव नहीं हो पाता और जल के अभाव में जीव का निर्माण भी असंभव हो जाता है। वायुमण्डल पृथ्वी के तापमान को नियंत्रित करता है तथा जीव जगत हेतु उपयुक्त वातावरण प्रदान करता है, इसे प्राकृतिक वातावरण कहा जाता है। अंततः पर्यावरण शब्द जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक (Physical) और जैविक (Biotic) परिस्थितियों का योग है।

टिप्पणी

पर्यावरण की प्रमुख विशेषताएं (Main Characteristics of Environment)

पर्यावरण की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

- जैविक (Biotic) एवं अजैविक (Abiotic) तत्वों के योग को पर्यावरण कहते हैं।
- जैविक विविधता (Biodiversity), प्राकृतिक वास तथा ऊर्जा (Energy) किसी पर्यावरण के प्रमुख अवयव होते हैं। पर्यावरण में समय व स्थान के साथ परिवर्तन होता रहता है।
- पर्यावरण जैविक तथा अजैविक तत्वों के कार्यात्मक (Functional) सम्बन्ध पर आधारित होता है।
- पर्यावरण की कार्यात्मकता (Functioning) ऊर्जा संचार पर निर्भर करती है।
- पर्यावरण अपने जैविक पदार्थों (Organic Matter) का उत्पादन करता है, जो विभिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न होते हैं। पर्यावरण सामान्यतः पारिस्थितिकी संतुलन स्थापित करने की ओर अग्रसर रहता है।
- पर्यावरण एक बंद तंत्र है। इसके अन्तर्गत प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र स्वतः नियन्त्रक क्रियाविधि (होमियोस्टेटिक क्रियाविधि) के द्वारा नियंत्रित होता है।

1.2.2 पर्यावरण के संघटक

पर्यावरण अनेकानेक तत्वों का समूह है तथा प्रत्येक तत्व का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्राकृतिक पर्यावरण के तत्व ही पारिस्थितिकी के भी तत्व हैं, क्योंकि पारिस्थितिकी का एक मूल घटक पर्यावरण है।

सामान्यतः पर्यावरण के संघटकों को दो समूहों में विभाजित किया गया है–

(क) जैविक संघटक (Biotic Components)

(ख) अजैविक संघटक (Abiotic Components)

(क) जैविक संघटक (Biotic Components) : पर्यावरण के जैविक संघटकों के अन्तर्गत पौधों, प्राणियों (मानव, जंतु, परजीवी, सूक्ष्मजीव आदि) एवं अवघटकों को सम्मिलित किया जाता है। परितंत्र के जैविकीय घटक अजैविक पृष्ठभूमि में परस्पर क्रिया करते हैं। जैविकीय घटक को चार उपघटकों में विभाजित किया जाता है–

1. प्राथमिक उत्पादक (Primary Producers)
2. उपभोक्ता (Consumers)
3. वियोजक (Decomposer)
4. अपरदी खाद्य श्रृंखला (Detritus)

1. **प्राथमिक उत्पादक (Primary Producers) :** ये स्वपोषी (Autotroph) भी कहलाते हैं। प्राथमिक उत्पादक जीव, आधारभूत रूप में हरे पौधे, कुछ विशेष जीवाणु एवं शैवाल (Algae) हैं, जो सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में सरल अजैविक पदार्थों से अपना भोजन स्वयं बना सकते हैं। वे स्वपोषी (Autotroph) अथवा प्राथमिक उत्पादक (Primary Producers) कहलाते हैं। स्वपोषित जीव अपना कार्बनिक पदार्थ स्वयं निर्मित करते हैं। ऊर्जा की उपलब्धि के स्रोत के

टिप्पणी

आधार पर ये प्रकाश संश्लेषी या रसायन संश्लेषी होते हैं। हरे पादप CO_2, H_2O अन्य लवणों की सहायता से सूर्य के प्रकाश में कार्बनिक पदार्थों का संश्लेषण करते हैं, अतः ये स्वपोषित कहलाते हैं। कुछ बैक्टीरिया रसायन संश्लेषी होते हैं जो अकार्बनिक पदार्थों से अपना कार्बनिक भोजन निर्मित करते हैं, जैसे– सल्फर व बैक्टीरिया आदि।

2. **उपभोक्ता (Consumers) :** ये परपोषी (Hetrotrophs) कहलाते हैं। ये जंतु अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकते हैं ये परपोषित होते हैं, और पौधों द्वारा निर्मित कार्बनिक पदार्थों को अपना भोजन बनाते हैं इनके पुनः तीन उपवर्ग होते हैं–

   - प्राथमिक उपभोक्ता– ये शाकाहारी (Herbivores) जंतु होते हैं।
   - द्वितीयक उपभोक्ता– ये मांसाहारी (Carnivores) जंतु होते हैं।
   - तृतीयक उपभोक्ता व सर्वाहारी– ये सर्वाहारी (Omnivores) होते हैं।

   इसके अंतर्गत मुख्यतः मनुष्य आता है, क्योंकि वह शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों श्रेणियों में आता है।

   पौधों को उत्पादक (Producers) कहते हैं। परपोषित जीव अपने भोजन के लिए स्वपोषित जीवों पर निर्भर रहते हैं। समस्त जंतु, कवक अधिकांशतः बैक्टीरिया और कुछ पुष्पीय पौधे परपोषित होते हैं। ये अपना भोजन अन्य जीवित या मृतकों के शरीर से प्राप्त करते हैं। जंतुओं को उपभोक्ता वर्ग में रखा गया है, क्योंकि जंतु भोजन के लिए किसी न किसी रूप में उत्पादकों पर निर्भर रहते हैं।

3. **वियोजक (Decomposer)** : ये अपघटक कहलाते हैं। ये सूक्ष्मजीव होते हैं, जो मृत पौधों, जंतुओं तथा जैविक पदार्थों को वियोजित करते हैं। इस क्रिया के अन्तर्गत ये अपना भोजन भी निर्मित करते हैं तथा जटिल कार्बनिक (जैविक) पदार्थों को एक–दूसरे से पृथक कर उन्हें सामान्य बनाते हैं।

4. **अपरदी खाद्य शृंखला (Detritus) :** जीवों द्वारा दूसरे जैविक को ऊर्जा प्रदान करना ही खाद्य शृंखला (Detritus) कहलाता है। खाद्य शृंखला में ऊर्जा का प्रवाह निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर होता है।

   खाद्य ऊर्जा का एक जीव से दूसरे जीव में जाने में लगभग 90% ऊर्जा का ऊष्मा के रूप में अपव्यय हो जाता है। शृंखला लम्बी नहीं हो सकती है। एल्टन (जीवशास्त्री) के अनुसार एक भोजन शृंखला में पांच–छह से अधिक कड़ियां नहीं होती हैं। भोजन शृंखलाएं अनेक होती हैं तथा परस्पर जुड़ी रहती हैं। ये आपस में अत्यन्त जटिल रूप में रहकर भोजन जाल का निर्माण करती हैं। इसी कारण एक जीव अनेक प्रकार के जीवों को अपना भोजन बनाता है। वास्तव में विभिन्न जीवों के मध्य सम्बन्धों को एक पिरामिड द्वारा समझा जा सकता है। इस पिरामिड का आधार चौड़ा व मजबूत होता है, प्रथम स्तर उत्पादकों द्वारा बनता है, ये संख्या में सर्वाधिक होते हैं। पिरामिड के शीर्ष पर पहुंचते–पहुंचते जीवों की संख्या में कमी होती जाती है क्योंकि उच्च स्तर के जीव पिरामिड को अपने भोजन की पूर्ति हेतु निम्न स्तर के जीवों की अधिक आवश्यकता होती है। मांसाहारी व शाकाहारी दोनों ही प्रकार का जीव पारिस्थितिकी पिरामिड के शीर्ष

टिप्पणी

पर अपना स्थान रखता है। जनसंख्या विस्फोट इस पिरामिड की स्थिति में असंतुलन ला सकता है।

ओडम (Odem) के अनुसार खाद्य शृंखला को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

• शाकवर्ती भोजन शृंखला (Grazing Food Chain)– यह पौधों से प्रारम्भ होकर शाकाहारी और मांसाहारी जीवों से सम्बन्ध रखती है।

• अपरदी भोजन शृंखला (Detritus Food Chain)– यह मृत, सड़े–गले कार्बनिक पदार्थों से प्रारम्भ होती है। इन कार्बनिक पदार्थों से सूक्ष्म जीव अपना भोजन प्राप्त करते हैं। सूक्ष्म जीवों को अन्य अपरद जीव अपना भोजन बनाते हैं। इन सभी अपरद जीवों पर अन्य मांस भक्षी जीव निर्भर करते हैं।

स्वपोषित, प्राथमिक हरे पादप उपयोग करते हैं। इनमें से अधिकतर जीव सूक्ष्म बैक्टीरिया तथा कवक (Fungi) के रूप में मृदा में रहते हैं।

ये सूक्ष्म जीव (मृतजीवी कवक तथा बैक्टीरिया) मृत व क्षय होते हुए उत्पादकों, उपभोक्ता का संक्रमण करके जटिल कार्बनिक पदार्थों को सरल यौगिकों में अपघटित कर देते हैं।

(ख) अजैविक संघटक (Abiotic Components): पर्यावरण के अजैविक घटकों में प्रकाश, वर्षण, तापमान, आर्द्रता एवं जल, अक्षांश, ऊंचाई, उच्चावच इत्यादि सम्मिलित होते हैं। प्रमुख अजैविक संघटक निम्नानुसार हैं–

(1) प्रकाश (Light)

(2) वर्षण (Precipitation)

(3) तापमान (Temperature)

(4) आर्द्रता व जल (Humidity and Water)

(5) अक्षांश (Latfitude)

(6) ऊँचाई (Attitude)

(7) उच्चावच (Relief)

(1) प्रकाश (Light): हरे पेड़–पौधों हेतु प्रकाश अति आवश्यक है जिसके द्वारा वे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया सम्पन्न करते हैं। समस्त प्राणी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हरे पौधों द्वारा निर्मित भोज्य पदार्थों पर ही निर्भर होते हैं। सभी जीवों के लिए सूर्य से आने वाला प्रकाश (सौर–ऊर्जा) ही ऊर्जा का अंतिम स्रोत है।

(2) वर्षण (Precipitation): कोहरा, वर्षा, धुंध, हिमपात अथवा ओलावृष्टि एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण अजैविक कारक है। अधिकांश जीव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में किसी न किसी रूप में वर्षण पर निर्भर होते हैं, जो अधोभूमि से होता है। वर्षण की मात्रा भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप भिन्न–भिन्न होती है।

(3) तापमान (Temperature): यह पर्यावरण का महत्वपूर्ण घटक है, जो जीवों की उत्तरजीविता (Survival) को वृहद रूप से प्रभावित करता है। जीव अपनी वृद्धि हेतु एक निश्चित सीमा तक के तापमान को ही सहन कर सकते हैं। उस सीमा से कम या अधिक तापमान की स्थिति में जीवों की वृद्धि रुक जाती है।

(4) आर्द्रता व जल (Humidity and Water): अनेक पौधे तथा प्राणियों के लिए वायु में नमी का होना अति आवश्यक है जिससे वे अपना कार्य सुचारु रूप से कर पाएं। कुछ प्राणी केवल रात में ही अधिक सक्रिय होते हैं, जब आर्द्रता अधिक होती है। जलीय आवास पर, रसायन तथा गैस की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों का तथा गहराई में अंतर आने का प्रभाव पड़ता है।

(5) अक्षांश (Latfitude): जैसे–जैसे हम विषुवत रेखा से उत्तर या दक्षिण की ओर अग्रसर होते हैं, वैसे–वैसे सूर्य का कोण भी सामान्यतः छोटा होता जाता है, जिससे औसतन तापमान गिरता जाता है।

(6) ऊँचाई (Attitude): विभिन्न ऊंचाइयों पर वर्षण तथा तापमान दोनों में भिन्नता पाई जाती है। वर्षण आमतौर से ऊंचाई के साथ बढ़ता जाता है, लेकिन चरम ऊँचाइयों पर यह कम हो सकता है।

(7) उच्चावच (Relief): भू–आकार या उच्चावच पर्यावरण का एक अति महत्वपूर्ण तत्व है। संपूर्ण पृथ्वी का धरातल या उच्चावच विविधतापूर्ण है। यह विविधता महाद्वीपीय स्तर से लेकर स्थानीय स्तर तक देखी जा सकती है। सामान्यतः उच्चावच के तीन स्वरूप पर्वत, पठार एवं मैदान हैं। पर्वत एवं मैदान में भी विस्तार, ऊँचाई, संरचना आदि की क्षेत्रीय विविधता होती है तथा अपरदन एवं अपक्षय क्रियाओं से अनेक भू–रूपों या स्थलाकृतियों का जन्म हो जाता है। उदाहरणार्थ– मरूस्थलीय, चूना प्रदेश, हिमानीकृत तथा डेल्टाई प्रदेश।

प्राकृतिक पर्यावरण अथवा भौतिक पर्यावरण (Natural Or Physical Environment)

प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत वे समस्त जैविक (Organic) एवं अजैविक (Inorganic) तत्व सम्मिलित हैं, जो धरा पर प्राकृतिक रूप में पाए जाते हैं। इसी आधार पर प्राकृतिक पर्यावरण को जैविक और अजैविक वर्गों में विभाजित किया गया है। जैविक तत्वों में सूक्ष्मजीव, पेड़–पौधे, जीव–जंतु सम्मिलित हैं तथा अजैविक तत्वों के अंतर्गत ऊर्जा, उत्सर्जन, तापमान, ऊष्मा प्रवाह, जल, वायुमण्डलीय गैसें, वायु, अग्नि, गुरुत्वाकर्षण, उच्चावच एवं मृदा आते हैं।

पृथ्वी पर पाए जाने वाले प्राकृतिक पर्यावरण की संरचना का निर्माण निम्नलिखित मंडलों से मिलकर हुआ है–

स्थल मण्डल (Lithosphere)

पृथ्वी का औसतन 29% भाग स्थलमण्डल (Lithosphere) है, जो अधिकांश, जीव–जंतुओं तथा पेड़–पौधों का सार है। इसमें पठार, मृदा, खनिज, पहाड़, चट्टानें आदि शामिल हैं। जीवों की स्थलमण्डल दो प्रकार से सहायता करता है। एक ओर वे इन जीवों को आवास उपलब्ध कराते हैं, तो दूसरी ओर जीव (जलीय या स्थलीय) हेतु खनिज का स्रोत स्थलमण्डल ही होता है।

धरातल के अवतलित क्षेत्र महासागरों से ढके हैं। जलीय क्षेत्र धरातल के लगभग 71 प्रतिशत पर विस्तृत है। जल–तल से ऊंचा उठा हुआ भाग स्थल–मण्डल है। इसमें तीन परतें पाई जाती हैं। प्रथम परत भू–पृष्ठ है तथा धरातल से इस परत की गहराई 100 किमी. है। इस परत में विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ और शैलें समायी हुई हैं। इस

टिप्पणी

भाग का औसत घनत्व 27 है। दूसरी परत को उपाचय मण्डल कहते हैं, जिसकी गहराई स्थल मण्डल के नीचे 200 किमी. तक है तथा जिसमें सिलिकन एवं मैग्नीशियम की बहुलता होती है। इसका औसत घनत्व 3.5 आंका गया है। तृतीय परत को परिमाण–मण्डल कहते हैं, जो पृथ्वी का केन्द्रीय मण्डल है और कठोर धातुओं से बना हुआ है, जिसमें निकिल एवं लोहे की अधिकता है तथा इसका औसत घनत्व 3–9 आंका गया है। मानव के अधिकांश कार्यकलाप स्थल मण्डल की ऊपरी सतह तक ही सीमित हैं। अभी स्थल–मण्डल की संपूर्ण जानकारी प्राप्त करना सम्भव नहीं हो सका है। स्थल–मण्डल मूलतः मिट्टियों तथा शैलों से निर्मित है। जिनका विवरण निम्नानुसार है–

मिट्टियां : मिट्टी भूतल पर मिलने वाले पदार्थों की वह ऊपरी परत है जिसमें शैलकणों एवं वनस्पति का सड़ा–गला अंश भी मिला होता है। मृदा का निर्माण तब होता है, जब शैलों का अपने स्थान से अपक्षयन (Weathring) होता है। मृदा का निर्माण मूल शैल, जलवायु, सजीवों, समय तथा स्थलाकृतियों के मध्य पारस्परिक क्रियाओं द्वारा सम्पन्न होता है। मानव–जीवन मिट्टी से बहुत प्रभावित होता है। मिट्टी की उपयोगिता में परिवर्तन के साथ मानव–इतिहास भी परिवर्तित होता रहा है। जिस देश में उपजाऊ मिट्टी होती है, उस देश की कृषि व्यवस्था उत्तम होती है। इसके विपरीत मिट्टी के अनोपजाऊ होने की स्थिति में निवासियों की आजीविका के दूसरे साधन खोजने पड़ते हैं। कणों की संरचना की दृष्टि से मिट्टियों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है–

- चीका मिट्टी
- बलुई मिट्टी
- दोमट मिट्टी
- **चीका मिट्टी** : इस मिट्टी के कण अत्यन्त महीन होते हैं तथा इसमें वायु व प्रकाश सरलतापूर्वक प्रवेश नहीं कर पाते हैं। इसमें चिपचिपा पदार्थ पाया जाता है, इसलिए यह चीका मिट्टी कहलाती है, इसमें अधिक समय तक आर्द्रता बनाये रखने की शक्ति तथा क्षमता होती है।
- **बलुई मिट्टी** : इस मिट्टी के कण बड़े होते हैं और इनके मध्य में पर्याप्त स्थान होता है। इसमें चिपचिपे पदार्थ का अभाव होता है। वर्षा होने पर इसमें जल शीघ्र समाहित हो जाता है, किन्तु वायु व प्रकाश के सरलता से प्रवेश के कारण जलवाष्प बनकर शीघ्र उड़ जाता है। रेगिस्तानी प्रदेशों में बलुई मिट्टी की अधिकता होती है।
- **दोमट मिट्टी** : इसके कण मध्यम आकार के होते हैं, अर्थात् न तो अधिक बड़े और न ही अधिक महीन। इसके कणों के मध्य में इतना स्थान होता है कि वायु तथा प्रकाश पौधों की जड़ों तक पहुंच जाते हैं तथा जल सरलता से समाकर पर्याप्त समय तक विद्यमान रहता है। वास्तव में इस दोमट मिट्टी में चीका व बलुई मिट्टी दोनों ही के गुण पाए जाते हैं। यह मिट्टी कृषि हेतु अति उपयोगी होती है। गंगा, यमुना, सतलुज तथा ब्रह्मपुत्र नदियों के मैदानों और तटीय प्रदेशों तथा नदियों के डेल्टा प्रदेशों में दोमट मिट्टी बहुतायत में होती है।

शैलें : भूपृष्ठ की रचना करने वाले समस्त पदार्थों को शैल कहा जाता है जो अनेकानेक खनिजों के सम्मिश्रण से निर्मित होते हैं। खनिज विभिन्न रासायनिक तत्वों ऑक्सीजन, सिलिकन, लोहा, कैल्शियम, एल्युमीनियम, सोडियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम आदि के सम्मिश्रिण से बनते हैं। संरचना तथा निर्माण प्रक्रिया के आधार पर शैलों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में बांटा जा सकता है–

- आग्नेय शैल
- अवसादी शैल
- कायान्तरित शैल

आग्नेय शैल : पृथ्वी के पिघले हुए पदार्थों अर्थात् लावा के ठण्डे होकर ठोस हो जाने से इन शैलों का निर्माण होता है इसलिए उन्हें प्रारम्भिक शैल भी कहा जाता है। इनमें परतें नहीं होती हैं तथा ये रवेदार होती हैं। इनमें जल प्रवेश नहीं कर सकता है। उदाहरणार्थ– ग्रेनाइट, बेसाल्ट, तांबा, लोहा, चांदी, सोना इत्यादि।

अवसादी शैल : गर्मी, सर्दी, वायु व वर्षा के प्रभाव से जब आग्नेय शैल क्षीण होने लगती है, तो उसके कण वायु तथा जल द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित हो जाते हैं और कालान्तर में ये कण परत दर परत एकत्रित हो जाते हैं तथा ऊपरी दबाव और रासायनिक क्रिया के प्रभाव से ये परतें अवसादी शैल में परिवर्तित हो जाती हैं। बालू का पत्थर, चूना पत्थर, चॉक–चिकनी मिट्टी डोलोमाइट आदि अवसादी शैल हैं। ये मुलायम होते हैं और परतें इनमें स्पष्ट दिखाई देती हैं जिनमें प्राणियों व वनस्पतियों के अवशेष भी पाए जाते हैं। कोयला, पेट्रोल, प्राकृतिक गैस आदि इन अवसादी शैलों में ही मिलते हैं। भू–पटल पर 75% भाग इन्हीं से निर्मित होने का अनुमान है।

कायान्तरित शैल : पृथ्वी के आंतरिक भाग की गर्मी व दबाव से आग्नेय व अवसादी शैल एक अन्य प्रकार की शैल में परिवर्तित हो जाती हैं, जो कि कायान्तरित शैल कहलाती है। चिकनी मिट्टी का स्लेट बन जाना, चूने पत्थर का संगमरमर बनना, बलुआ पत्थर का क्वार्टजाइट बनना, ग्रेनाइट से हीरा बनना एवं कोयले से ग्रेफाइट बनना आदि कायान्तरण के उदाहरण हैं।

सूक्ष्मदर्शी द्वारा रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात होता है कि चट्टानों की घिसने की क्रिया प्रकृति में पाए जाने वाले रासायनिक दृश्यों के प्रभाव से मन्द–मन्द होती है। चट्टानों के रासायनिक अवयव बदल जाते हैं और मिट्टी की रूपरेखा अत्यन्त भिन्न प्रतीत होती है। यदि चट्टान का क्षीण होना ही मिट्टी निर्माण की एक प्रधान प्रक्रिया होती तो खेती की मिट्टी पौधों के पनपने के लिए अनुकूल नहीं होती। मिट्टी की तुलना पिसी हुई बारीक चट्टान से नहीं की जा सकती। यद्यपि चट्टानों के खनिज मिट्टी के ऊपरी भाग में बहुत अधिक पाए जाते हैं, और उनके टुकड़ों में बड़े पैमाने में विद्यमान रहते हैं, फिर भी मिट्टी में जीव–जंतु क्रियाएं होती रहती हैं, जो कृषि हेतु महत्वपूर्ण सिद्ध हुई हैं। जीव–जंतु तथा इससे संबंधित पदार्थों के जैसे पेड़–पौधों की सड़ी हुई वस्तुओं और सड़े हुए जीव–जन्तुओं के प्रभाव से कलिल अवस्था में प्राप्त चट्टानों के सूक्ष्म कणों पर प्रतिक्रिया होती रहती है और मिट्टी का रंग रूप बदल जाता है। यह रूप केवल चट्टानों के कणों का नहीं होता, अपितु मिट्टी भी एक नवीन प्रणाली से सुसज्जित हो जाती है। सूक्ष्मदर्शी द्वारा मिट्टी के एक टुकड़े की परीक्षा तथा चट्टान के कणों का परीक्षण करने

टिप्पणी

पर दोनों में अत्यन्त असमानता पाई जाती है। इस असमानता का कारण उन अकार्बनिक पदार्थों के सम्मिश्रण से होता है जो जीव–जंतु और पौधों से प्राप्त होते हैं।

प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा चट्टानों के छोटे–छोटे कणों में परिवर्तन होने से मिट्टी के निर्माण में जो सहायता प्राप्त होती है, उस क्रिया को अपक्षय (Weathering) कहते हैं। यह क्रिया मिट्टी को कृषि के अनुकूल बनाने हेतु अति महत्वपूर्ण होती है। इस क्रिया में जल, वायु में उपस्थित कार्बन डाई ऑक्साइड, ऑक्सीजन जीवाणुओं तथा अन्य अम्लीय रासायनिक द्रव्यों से बहुत सहायता मिलती है।

जलमण्डल (Hydrosphere): जलमण्डल पर्यावरण का महत्वपूर्ण घटक है, क्योंकि यह पृथ्वी पर स्थलीय व जलीय जीवन को संभव बनाने वाला प्रमुख कारक है। पृथ्वी के समस्त जलीय भाग को जलमण्डल कहते हैं, जिसमें सागर तथा महासागर सम्मिलित हैं। भूपटल के 71 प्रतिशत भाग पर जल तथा 29 प्रतिशत भाग पर स्थल का विस्तार है। पृथ्वी की सतह का क्षेत्रफल लगभग 51 करोड़ वर्ग किलोमीटर है, जिसमें 36 करोड़ वर्ग किलोमीटर पर जल का विस्तार है। इसे प्रशान्त महासागर, अन्ध महासागर, हिन्द महासागर, और उत्तरी ध्रुव महासागर नामक चार वर्गों में बांटा गया है। प्रशान्त महासागर सबसे बड़ा तथा उत्तरी ध्रुव महासागर सबसे छोटा है। जलमण्डल के अन्तर्गत धरातलीय व भूमिगत जल को सम्मिलित किया गया है।

महासागर के अतिरिक्त पृथ्वी पर जल अनेक रूपों में पाया जाता है, जैसे– झीलें (Lakes), बांध (Dam), नदियां (Rivers), हिमनद (Glacier) तथा स्थल के नीचे स्थित भू–गर्भिक जल (Surface water)।

जलमण्डल ने मानव को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से बहुत प्रभावित किया है। जीव जल को अपनी विभिन्न उपापचय (Metabolism) प्रक्रियाओं के लिए प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त जीवद्रव्य (Protoplasm) का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक जल ही है।

जलमण्डल पर अधिकांश लवणीय जल है, जो कि सागरों व महासागरों में स्थित है और मानव हेतु प्रत्यक्ष रूप से उपयोगी नहीं है। महासागर ही थल भाग पर वर्षा का मुख्य स्रोत है और इसमें मछली, मोती, नमक और अन्य उपयोगी पदार्थ पाए जाते हैं तथा व्यापक स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है।

अलवणीय जल का संग्रहण मुख्यतः नदियों, हिमनदियों, झरनों व भूमिगत जल के रूप में होता है। पृथ्वी पर उपयोग हेतु उपलब्ध अलवण जल कुल जल की मात्रा के 1% से भी कम है।

जीवमण्डल (Biosphere): जीवमण्डल पृथ्वी का वह हिस्सा है, जहाँ जीवन संभव है। हमारे चारों ओर जो जीवित जगत है, वह जीवमण्डल कहलाता है। इसे अध्ययन की दृष्टि से प्राणी–मण्डल व वनस्पति मण्डल, इन दो वर्गों में विभाजित किया गया है। प्राणी–मण्डल के अन्तर्गत पशु–पक्षियों व मानव को सम्मिलित किया जाता है। वनस्पति–मण्डल में समस्त प्रकार की छोटी–बड़ी वनस्पतियों को सम्मिलित किया जाता है। वैज्ञानिकों व पर्यावरणविदों के अनुसार, संपूर्ण विश्व में लगभग दस लाख प्रकार के प्राणी तथा तीन लाख प्रकार की वनस्पतियां पाई जाती हैं। वे सब भौतिक अथवा प्राकृतिक पर्यावरण के प्रमुख अंग का निर्माण करते हैं।

जीवमण्डल ऐसा क्षेत्र होता है जहां वायुमण्डल, स्थलमण्डल एवं जलमण्डल परस्पर सम्बन्धित होते हैं।

टिप्पणी

जीवमण्डल में समुद्र तल से 2000 मीटर नीचे तक एवं 6000 मीटर की ऊँचाई तक जीवन संभव होता है। उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों तथा ऊँचे पर्वतों एवं गहरे महासागरों में पाई जाने वाली विषम जलवायु जीवन को सम्भव नहीं होने देती है। अतः इन क्षेत्रों में जीवमण्डल अनुपस्थित होता है।

जीवमण्डल में सूर्य ऊर्जा जीवन को संभव बनाती है, जबकि जीवों की पोषण आपूर्ति वायु, जल एवं मृदा से होती है। जीवमण्डल में जीवों का वितरण समान नहीं है क्योंकि ध्रुवीय क्षेत्रों में कुछ ही जीव पाए जाते हैं, जबकि विषुवतीय वर्षा वनों में अत्यधिक जीव प्रजातियां पाई जाती हैं।

वायुमण्डल (Atmosphere): वायुमण्डल एक महत्वपूर्ण घटक है इसके अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। पृथ्वी के चारों ओर हवा का सैकड़ों किलोमीटर तक मोटा आवरण है। यह आवरण ही वायुमण्डल (Atmosphere) कहलाता है। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण वायु का यह घेरा पृथ्वी को जकड़े हुए है। वायुमण्डल में अनेक प्रकार की गैसें पाई जाती हैं जिनमें ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाईऑक्साइड महत्वपूर्ण हैं। वायुमण्डल का 99% भाग नाइट्रोजन और ऑक्सीजन गैसों से निर्मित है और 1% में अन्य समस्त गैसें कार्बनडाईऑक्साइड, आर्गन, हाइड्रोजन, नीओन, हीलियम, ओजोन, क्रिप्टान, जीनॉन आदि सम्मिलित हैं।

वायुमण्डल में विभिन्न गैसों का मिश्रण

नाइट्रोजन	78.8%
ऑक्सीजन	20.95%
आर्गन	0.93%
कार्बनडाईऑक्साइड	0.036%
नीऑन	0.002%
हीलियम	0.0005%
क्रिप्टान	0.001%
जीनॉन	0.00009%
हाइड्रोजन	0.00005%

भारी गैसें वायुमण्डल के निचले भाग में पायी जाती हैं तथा हल्की गैसें ऊपरी भाग में। इन गैसों के अतिरिक्त वायुमण्डल में जलवाष्प तथा धूलकण भी विद्यमान रहते हैं। वायु अदृश्य होती है, लेकिन इसमें भार होता है, इसलिए धरातल के निकट वाली वायु दबाव डालती है, जिसके कारण धरातल के समीप वायु का घनत्व अधिक पाया जाता है तथा जैसे–जैसे धरातल से ऊपर उठते हैं, वायु का घनत्व कम होता जाता है।

वायुमण्डल में अनेक परतें होती हैं जो निम्नानुसार हैं–

- **क्षोभमण्डल (Tronosphere):** यह वायुमण्डल की सबसे निचली परत होती है, जो ध्रुवों पर 8 किमी. तथा विषुवत रेखा पर 18 किमी. की ऊँचाई तक पाई जाती है। इस मण्डल में तापमान के गिरने की दर 165 मी. वर्ग ऊँचाई पर $1^{\circ}C$ होती है।

टिप्पणी

क्षोभमण्डल में वायुमण्डल का कुल 90% भाग पाया जाता है। आँधी, बादल, वर्षा आदि प्राकृतिक घटनाएं मण्डल में घटित होती हैं। धरातलीय जीवों का सम्बन्ध इसी मण्डल से होता है। इसी के अन्तर्गत भारी गैसों, जलवाष्प तथा भूमिकणों का अधिकतम भाग रहता है। इस मण्डल की ऊँचाई सर्दी की अपेक्षा गर्मी में अधिक हो जाती है। इस मण्डल की ऊपरी सीमा को क्षोभसीमा (Tropopause) भी कहते हैं।

- **समताप मण्डल (Stratosphere):** यह वायुमण्डल में क्षोभमण्डल के ऊपर पाया जाता है। इसकी ऊँचाई विषुवत रेखा पर 18 किमी. से लेकर 50 किमी. तक पाई जाती है। इस मण्डल में ओजोन (Ozone) परत पाई जाती है इसलिए यह ओजोनस्फीयर (Ozonesphere) भी कहलाता है।
- **मध्यमण्डल (Mesosphere):** इसकी ऊँचाई 50 से 80 किमी. तक होती है तथा यहाँ तापमान में अचानक गिरावट आ जाती है। मध्यमण्डल में ऊँचाई के साथ तापमान में भी कमी आती जाती है। इसकी ऊपरी सीमा – 90°C द्वारा निर्धारित होती है, जिसको मेसोपॉज (Mesopause) कहते हैं।
- **तापमण्डल (Thermosphere):** मध्यमण्डल (80 किमी.) के ऊपर वाला वायुमण्डलीय भाग (अनिश्चित ऊँचाई तक) तापमण्डल कहलाता है। इसमें ऊँचाई के साथ तेजी से तापमान बढ़ता जाता है। इस मण्डल का तापमान अत्यधिक होने के बावजूद गर्मी महसूस नहीं होती है, क्योंकि इस ऊँचाई पर गैसें अत्यधिक विरल (dispersed) हो जाती हैं और बहुत कम ऊष्मा को ही रख पाती हैं। तापमण्डल के दो भाग होते हैं–

  (1) आयनमण्डल (Lonosphere)

  (2) बाह्यमण्डल (Exosphere)

  (1) **आयनमण्डल** (Lonosphere): मध्यमण्डल के ऊपर 80 से 640 किमी. तक आयनमण्डल का विस्तार होता है। इसमें विद्युत अवशोषित कणों की अधिकता होती है। इसी भाग में विस्मयकारी विद्युतीय व चुम्बकीय घटनाएँ घटित होती हैं, तथा ब्रह्माण्ड किरणों (Cosmic Rays) का परिलक्षण होता है। रेडियो तरंगें इसी मण्डल से परावर्तित होकर संचार को संभव बनाती हैं। यदि यह मण्डल नहीं होता तो रेडियो तरंगें भूतल पर न आकर आकाश में असीमित ऊँचाई तक चली जातीं। आयनमण्डल तापमण्डल का सबसे निचला भाग है।

  (2) **बाह्यमण्डल** (Exosphere): इस मण्डल का विस्तार 640 किमी. से ऊपर होता है। इस मण्डल के पश्चात वायुमण्डल अंतरिक्ष में विलीन हो जाता है।

मानवनिर्मित पर्यावरण (Man made Environment)

मानव निर्मित पर्यावरण के अन्तर्गत वे समस्त स्थान सम्मिलित हैं, जो मानव ने कृत्रिम रूप से निर्मित किए हैं अतः कृषि क्षेत्र, औद्योगिक शहर, वायुपत्तन, अंतरिक्ष स्टेशन, भवन, सड़कें, बांधें, नहरें, यातायात उद्योग आदि इसमें सम्मिलित हैं। जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक विकास के कारण मानव निर्मित पर्यावरण का क्षेत्र एवं प्रभाव तीव्र गति से वृद्धि कर रहा है।

टिप्पणी

सामाजिक व सांस्कृतिक पर्यावरण (Social and Cultural Environment)

सामाजिक पर्यावरण में सांस्कृतिक मूल्य व मान्यताओं को समाहित किया जाता है। पृथ्वी पर भाषायी, धार्मिक रीति रिवाजों, जीवन शैली आदि के आधार पर सांस्कृतिक पर्यावरण का निर्माण होता है। राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक संस्थाएँ, सामाजिक पर्यावरण के अंग होने के साथ–साथ यह निर्धारित करती हैं कि पर्यावरणीय संसाधनों का उपयोग कैसे और किन लाभों की पूर्ति करने हेतु किया जाना चाहिए।

सांस्कृतिक पर्यावरण मानव द्वारा निर्मित वह वातावरण है जिसमें मानवीय निवास–गृह, आवागमन के साधन, सिंचाई के साधन, परिवहन और संचार के साधन, आर्थिक क्रिया कलाप, श्रम–विभाजन, खेत, मिल तथा कारखाने, बैंक, बीमा सम्मिलित हैं। मानव एक क्रियाशील इकाई है, जो प्राकृतिक पर्यावरण के प्रत्येक क्षेत्र का केन्द्र बिन्दु है। मानव प्राकृतिक पर्यावरण के तत्वों से भी प्रभावित नहीं होता है, लेकिन अपनी शक्तियों से इसे नियंत्रित व परिवर्तित भी करता है।

इसलिए मानव अपनी शक्तियों और क्रिया–कलापों से प्राकृतिक पर्यावरण में परिवर्तन कर जिस नवीन पर्यावरण का निर्माण करता है उसे सांस्कृतिक पर्यावरण कहते हैं। इस प्रकार मानव एक ऐसा केन्द्रीय कारक है जो प्राकृतिक पर्यावरण के तत्वों से प्रभावित होता है और पुनः अपनी शक्तियों तथा क्रियाओं से अधिकाधिक लाभ हेतु प्राकृतिक पर्यावरण में परिवर्तन कर उसे अपने अनुकूल बनाता है।

गर्म जलवायु वाले क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों को कृत्रिम साधनों, जैसे वातानुकूलित कमरों (Airconditioned Rooms) तथा प्रशीतक (Refrigerator) का प्रयोग करना होता है। इस प्रकार मानव अपने क्रिया–कलापों एवं बुद्धिबल के प्रयास से प्राकृतिक पर्यावरण का शोषण करता है अथवा उसका रूप परिवर्तित कर उसे अपने अनुकूल बनाता है जिसे प्राकृतिक अनुकूलन (Natural Adaption) तथा सांस्कृतिक पर्यावरण (Cultural Environment) कहते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem)

पारिस्थितिक तंत्र (Ecological System) एक प्राकृतिक इकाई है जिसमें एक क्षेत्र विशेष के समस्त जीवधारी, अर्थात पौधे, जीवजंतु तथा अणुजीव सम्मिलित हैं जो कि अपने अजैविक पर्यावरण के साथ अंतर्क्रिया करके एक संपूर्ण जैविक इकाई बनाते हैं। इस प्रकार पारितंत्र अन्योन्याश्रित अवयवों की एक इकाई है जो एक ही आवास को बांटते हैं। पारितंत्र में सामान्यतः अनेक खाद्य जाल होते हैं जो पारिस्थितिकी तंत्र के अंदर इन जीवों के अन्योन्याश्रय और ऊर्जा के प्रवाह को दिखाते हैं जिसमें वे अपने आवास, भोजन व अन्य जैविक क्रियाओं हेतु परस्पर निर्भर रहते हैं।

पारिस्थितिकी जीवविज्ञान की एक शाखा है जिसमें जीव समुदायों का उसके वातावरण के साथ परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं। प्रत्येक जंतु व वनस्पति एक निश्चित वातावरण में निवास करते हैं। पारिस्थितिकी के द्वारा इस तथ्य का पता लगाते हैं कि जीव आपस में और पर्यावरण के साथ किस प्रकार क्रिया करते हैं और वे पृथ्वी पर जीवन की जटिल संरचना का पता लगाते हैं!

पारिस्थितिकी को पर्यावरणीय जीवविज्ञान भी कहा जाता है। इस विषय में व्यक्ति, जनसंख्या, समुदायों और परितंत्र का अध्ययन होता है। पारिस्थितिकी हेतु

टिप्पणी

जर्मन भाषा में Oekologic शब्द का प्रथम प्रयोग 1866 में जर्मन जीव वैज्ञानिक अर्नेस्ट हैकल ने अपनी पुस्तक 'जनरेल मोर्फोलॉजी ऑफ ऑर्गेनिज्म' में किया था।

बीसवीं शताब्दी पर अध्ययन प्रारम्भ हुआ और एक साथ अनेक विषयों पर ध्यान किया गया। फलस्वरूप मानव पारिस्थितिकी की संकल्पना आयी। प्राकृतिक वातावरण अत्यंत जटिल है इसलिए शोधकर्ता अधिकांशतः किसी एक प्रकार के प्राणियों की प्रजाति या पौधों पर शोध करते हैं।

बीसवीं सदी में यह ज्ञात हुआ कि मनुष्यों की गतिविधियों का प्रभाव पृथ्वी और प्रकृति पर सदैव सकारात्मक रूप में ही नहीं होता है। मानव गतिविधियों का प्रकृति पर प्रभाव प्रदूषण, वनों में आग लगना, सूखा पड़ना, अति वर्षा, भूस्खलन, भूकम्प के रूप में प्रकट होता है। जिससे मनुष्य पर्यावरण पर पड़ने वाले गंभीर प्रभाव के प्रति जागरूक हुए। पृथ्वी के प्रत्येक पारितंत्र में अनेक प्रकार के पौधों और पशुओं की प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनके अध्ययन में पारिस्थितिक किसी स्थान विशेष के पारितंत्र के इतिहास और गठन को ज्ञात करते हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र शब्द को 1930 में रोय क्लाफाम द्वारा एक पर्यावरण के संयुक्त शारीरिक और जैविक घटकों को निरूपित करने के लिए बनाया गया था। ब्रिटिश पारिस्थितिक विज्ञानशास्त्री आर्थर टान्सले ने, इस शब्द को परिष्कृत करते हुए यह वर्णन किया कि 'यह संपूर्ण प्रणाली, न केवल जीव परिसर है बल्कि इसमें समस्त भौतिक कारकों का सम्पूर्ण परिसर भी सम्मिलित है जिसे हम पर्यावरण कहते हैं।'

तनस्ले पारितंत्रों को न केवल प्राकृतिक इकाइयों के रूप में, अपितु 'मानसिक पृथकता' के रूप में भी मानते थे। टान्सले द्वारा 'इकोटोप' शब्द के प्रयोग द्वारा पारितंत्रों की स्थानिक हद को परिभाषित किया गया।

पारिस्थितिकी तंत्र अवधारणा का मुख्य विचार यह है कि जीवित जीव अपने स्थानीय परिवेश में प्रत्येक दूसरे तत्व को प्रभावित करते हैं।

इसके अतिरिक्त पारिस्थितिकी का अध्ययन नगरीय परिवेश में भी संभव होता है। इसके अतिरिक्त इसके विषय क्षेत्र में समुद्री जनजीवन तथा जन्मस्रोतों आदि को भी सम्मिलित किया गया है।

पारिस्थितिकी सजीवों तथा उनके निर्जीव पर्यावरण के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन भिन्न–भिन्न स्तरों पर करती है। एक जीवित कोशिका से लेकर अंग, जीवधारी, जनसंख्या, समुदाय, पारितंत्र, बायोम और जैवमंडल तक जीवों और उनके पर्यावरण के मध्य अन्तर्क्रियाओं के भिन्न–भिन्न रूप और विकास दिखाई देते हैं। अतः पारिस्थितिकीय अध्ययन के स्तरों में प्रमुख हैं–

(क) जीव और उसका पर्यावरण

(ख) जनसंख्या पारिस्थितिकी – प्रजाति और उसके पर्यावरण का अध्ययन

(ग) समुदाय पारिस्थितिकी

(घ) पारितंत्र पारिस्थितिकी

(ङ) भूदृश्य पारिस्थितिकी

(च) बायोम या जीवाश्म पारिस्थितिकी

टिप्पणी

संपूर्ण पृथ्वी अर्थात् स्थल जन्म व वायु मण्डल और इस पर रहने वाले जीव एक विशिष्ट चक्र अथवा प्रणाली या तंत्र में पारिचालित होते रहते हैं और प्रकृति के साथ अपूर्व सामंजस्य स्थापित करके न केवल स्वयं का अस्तित्व बनाये रखते हैं, अपितु पर्यावरण को भी स्वचालित करते हैं।

जीव समुदाय एवं पर्यावरण के अन्तर्सम्बंध को 'इकोसिस्टम' का नाम सर्वप्रथम ए.जी. टेन्सले ने 1935 में दिया। टेन्सले से पूर्व एवं उनके समकालीन अनेक विद्वानों ने जीव पर्यावरण संबंधों को विविध नाम दिए जैसे– 1877 में कार्यमोबिअस ने 'Bicoenosis', एस.ए. फोरबेस ने 1887 में 'Microcosm', डोकचेहव ने 1846–1903 में 'Geobiocoenosis', 1930 में फ्रेडरिच ने 'Holocoen' , थियनेमान ने 1989 में 'Biosystem' आदि।

इसका सर्व स्वीकार्य 'Ecosystem' ही है। यह दो शब्दों के संयोग से बना है अर्थात 'Eco' जिसका अर्थ है पर्यावरण जो ग्रीक शब्द 'Oikos' का पर्याय है जिसका अर्थ है 'एक घर', और दूसरा 'System' जिसका अर्थ है व्यवस्था या अन्तर्संबंध या अंतर्निर्भरता से जनित एक व्यवस्था जो छोटी–छोटी इकाइयों में विभक्त विभिन्न स्थानों में विभिन्न स्वरूप लिए विकसित पाई जाती है। इस तंत्र में जीवमण्डल में चलने वाली समस्त प्रक्रियाएं सम्मिलित होती हैं और मानव इसके एक संघटक के रूप में उसके परिवर्तक या बाधक के रूप में कार्य करता है।

पारिस्थितिकी तंत्र को स्पष्ट करते हुए मॉकहॉउस और स्माल ने लिखा है कि– पादप एवं जीव–जंतुओं या जैविक समुदायों का प्राकृतिक पर्यावरण अथवा आवास के दृष्टिकोण से अध्ययन करना। जैविक समुदायों में वनस्पति व जीव–जंतुओं के साथ ही मानव भी सम्मिलित किया जाता है।

पीटर हेगेट के मतानुसार, 'पारिस्थतिकी तंत्र वह पारिस्थितिक व्यवस्था है जिसमें पादप एवं जीव–जन्तु अपने पर्यावरण से पोषक चेन द्वारा संयुक्त रहते हैं।'

अर्थात पर्यावरण पारिस्थितिक तंत्र को नियंत्रित करता है और प्रत्येक व्यवस्था में विशिष्ट वनस्पति एवं जीव प्रजातियों का विकास होता है। पर्यावरण वनस्पति एवं जीवों के अस्तित्व का आधार होता है और इनका अस्तित्व उस व्यवस्था पर निर्भर करता है जो इन्हें पोषण प्रदान करती है।

स्थ्रेलर ने पारिस्थितिक तंत्र का अर्थ स्पष्ट करते हुए बताया है, 'पारिस्थितिक तंत्र उन समस्त घटकों का समूह है जो जीवों के समूह की क्रिया–प्रतिक्रिया में योग देते हैं तथा भूगोलवेत्ताओं के लिए पारिस्थितिक तंत्र उन भौतिक दशाओं के संगठन का भाग है जो जीवन सतह (स्तर) का निर्माण करते हैं।

मूलतः पारिस्थितिक तंत्र एक विशिष्ट पर्यावरण व्यवस्था है जिसमें पर्यावरण के विशिष्ट घटकों में एक संतुलन होता है जो विशिष्ट जीवन–समूहों के विकास का कारक होता है।

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के शब्दों में, 'पारिस्थितिकी एक क्षेत्र विशेष की वह इकाई है जिसमें पर्यावरण से प्रतिक्रिया करते हुए समस्त जीव सम्मिलित होते हैं। इनमें ऊर्जा प्रतिक्रिया करते हुए सभी जीव सम्मिलित होते हैं। इनमें ऊर्जा प्रवाह के माध्यम से पोषण उपलब्ध होता है परिणामस्वरूप जैव विविधता एवं विभिन्न भौतिक चक्रों का प्रादुर्भाव होता है। यह समस्त क्रम एक नियंत्रित रूप में कार्यरत रहता है।'

टिप्पणी

पारिस्थितिक तंत्र एक क्षेत्र विशेष में विकसित एक इकाई है जिसमें विभिन्न जीवों का समूह विकसित होता है। इसमें विभिन्न प्रकार के पादप, वनस्पति, जलीय जीव, स्थलीय जीव सम्मिलित हैं। ये जीव प्राथमिक उत्पादक, द्वितीय उत्पादक या उपभोक्ता एवं अपघटक के रूप में होते हैं। इन पर अजैविक घटकों का नियंत्रण होता है जिनमें अकार्बनिक तत्व (ऑक्सीजन, कार्बन डाई ऑक्साइड, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, खनिज लवण) तथा अकार्बनिक पदार्थ (प्राटीन व कार्बोहाइड्रेट) तथा जलवायु, तत्व, जल, प्रकाश, तापमान इत्यादि सम्मिलित होते हैं।

संपूर्ण भौतिक तत्वों से मिलकर पर्यावरण बनता है। इन समस्त घटकों व तत्वों में ऊर्जा प्रवाह सदैव होता रहता है जो पारिस्थितिक तंत्र के सुचारु रूप से गतिमय रहने के लिए आवश्यक है।

पारिस्थितिक तंत्र एक अनवरत प्रक्रिया है किंतु यदि इसके किसी एक घटक में परिवर्तन आता है या चक्रीकरण में व्यवधान आता है, तो पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है जो जीव के अस्तित्व के लिए संकट का कारण बन जाता है। पारिस्थितिक तंत्र एक क्षेत्र विशेष के पर्यावरण एवं उसमें उद्भूत जीवन तंत्र के अंतर्संबंधों की उपज है। इसमें स्थान एवं समय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जो प्रमुख भौगोलिक उपादान है। वास्तव में पारिस्थितिक तंत्र क्षेत्रीय एवं वृहत भौगोलिक अंतर्संबंधों का परिणाम है।

1.2.3 विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्रों का अध्ययन

ए.जी. तान्सले (A.G. Tansle) द्वारा 1935 में पारिस्थितिकी तंत्र के अन्तर्गत जैविक एवं अजैविक संघटकों के समूह को समाहित किया गया था जो पारस्परिक क्रिया में सम्मिलित होकर पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करते हैं।

प्राकृतिक पारितंत्र (Natural Ecosystem)

वे पारितंत्र जो पूर्ण रूप से सौर विकिरण (Solar radiation) पर निर्भर रहते हैं, प्राकृतिक पारितंत्र कहलाते हैं। जैसे– जंगल, घास के मैदान, सागर, मरुस्थल, नदियाँ, झील आदि।

स्थलीय पारितंत्र (Terrestrial Ecosystem)

एक स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र वह स्थान है जिसमें पृथ्वी व वायु में विकसित होने वाले समस्त जीव विकसित होते हैं। एक स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र को निर्मित करने वाले तत्व अत्यधिक विविध होते हैं जैसे– तापमान, मिट्टी की गुणवत्ता, वर्षा, वायुमंडलीय दबाव तथा मानव गतिविधियाँ। स्थलीय पारितंत्र निम्न रूपों में होता है–

घास पारिस्थितिकी तंत्र (Grass Ecosystem)

घास पारितंत्र में वृक्षहीन शाकीय पौधों के आवरण रहते हैं जो कि विस्तृत प्रकार की घास प्रजाति द्वारा प्रभावित रहते हैं। इनमें कम वार्षिक वर्षा (25–75 सेमी. के मध्य) होती है। वाष्पीकरण की दर उच्च होने के कारण इन क्षेत्रों की भूमि शुष्क हो जाती है।

मृदा की आंतरिक उर्वरता के कारण विश्व के अधिकांश प्राकृतिक घास स्थल कृषि क्षेत्र में परिवर्तित कर दिये गए हैं।

टिप्पणी

क्र.सं.	स्थान	घास के मैदान का नाम
1.	उत्तरी अमेरिका	प्रेयरी
2.	यूरेशिया	स्टेपीज
3.	अफ्रीका	सवाना
4.	दक्षिणी अमेरिका	पम्पास
5.	आस्ट्रेलिया	डाउन्स
6.	दक्षिणी अफ्रीका	वेल्ड
7.	न्यूजीलैंड	कैटरबरी
8.	हंगरी	पुस्टाज
9.	ब्राजील	कैम्पोस

वन पारिस्थितिकी तंत्र (Forests Ecosystem)

इस तंत्र हेतु तापमान, मृदा और आर्द्रता अनिवार्य तत्व हैं, वनों में वनस्पति का वितरण उस क्षेत्र की जलवायु व मृदा पर निर्भर करता है। इसे तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है–

- ऊष्ण कटिबंधीय वन (Tropical)
- शीतोष्ण कटिबंधीय वन (Temperate forests)
- शंकुधारी वन (Tega forests)

ऊष्ण–कटिबंधीय सदाबहार वन के अंतर्गत वे वन सम्मिलित हैं जो विषुवत रेखा के निकट हैं, जहाँ वर्षभर आर्द्रता व तापमान काफी उच्च होते हैं, तथा वार्षिक वर्षा 200 सेमी. से अधिक होती है। अत्यधिक वर्षा के कारण विषुवत रेखीय वनों में निक्षापन की प्रक्रिया में पोषक तत्व मिट्टी के निचले भाग में चले जाते हैं, यहाँ अम्लीय मृदा पाई जाती है। ये वन कृषि हेतु उपयुक्त नहीं होते हैं। इन क्षेत्रों में वृक्ष व झाड़ियों के तीन स्तर होते हैं, जिससे सूर्य की रोशनी जमीन तक नहीं पहुँच पाती है। सबसे ऊपरी सतह पर महोगनी रोजवुड व चंदन लकड़ी, मध्य स्तर पर अधिपादप तथा सबसे नीचे के स्तर पर लताएँ होती हैं।

इन वृक्षों का विस्तार अमेजन बेसिन, कांगो बेसिन, अंडमान व निकोबार, जावा व सुमात्रा आदि क्षेत्रों में पाया जाता है।

ऊष्ण कटिबंधीय पर्णपाती या मानसूनी वनों के अंतर्गत वे वन सम्मिलित हैं जहाँ औसत वार्षिक वर्षा 70–200 सेमी. के मध्य होती है। इनके पौधे शुष्क या ग्रीष्म ऋतु में अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं जिससे वाष्पोत्सर्जन कम हो। इन वनों के प्रमुख वृक्ष सागवान, सीसम, शाल, बांस इत्यादि हैं। जो मुख्यतः दक्षिण–पूर्व एशिया में पाए जाते हैं।

इन वनों को प्रमुख तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है–

मध्य अक्षांशीय सदाबहार वन : इनके अंतर्गत उपोष्ण (subtropical) प्रदेशों में महाद्वीपों के पूर्वीय तटीय भागों के वर्षा वनों को सम्मिलित किया गया है, इन वनों के वृक्षों की पत्तियाँ चौड़ी होती हैं। उदाहरणार्थ– लौरेल, युकेलिप्टस आदि। ये वन मुख्यतः दक्षिण चीन (South China), जापान (Japan), दक्षिण ब्राजील (South Brazill) व दक्षिण एशिया (South Asia) के क्षेत्रों में पाए जाते हैं।

टिप्पणी

मध्य अक्षांशीय पर्णपाती वन : इन वनों में पाए जाने वाले वृक्ष शीत ऋतु में ठंड से बचने के लिए अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं तथा इन वनों में पॉडजोल मिट्टी पाई जाती है। इन वनों के प्रमुख वृक्ष अखरोट, शाहबलूत तथा चिनार आदि हैं।

भूमध्य सागरीय वन : इन वनों के अन्तर्गत मध्य अक्षांशों में महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में पाए जाने वाले वन सम्मिलित हैं। यहां के प्रमुख वृक्षों में जैतून, पाइन, नाशपाती व नारंगी आते हैं।

- **शंकुधारी वन (Tega forests)**

इस प्रकार के वन मुख्यतः पर्वतीय क्षेत्रों में आर्कटिक वृत्त (66.50) के चारों ओर एशिया, यूरोप व अमेरिका महाद्वीपों में पाए जाते हैं। यहाँ के वृक्ष कोणधारी होते हैं जिससे वाष्पोत्सर्जन कम होता है तथा बर्फ पत्तियों पर रुक नहीं पाती है। इन क्षेत्रों में अम्लीय पोट्जोल मृदा (खनिज रहित मृदा) पायी जाती है।

मरुस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र (Desert Ecosystem)

इसमें दीर्घकाल तक आर्द्रता की कमी रहती है, वायु में नमी की मात्रा तथा तापमान के आधार पर मरुस्थल को ऊष्ण मरुभूमि एवं शीत मरुभूमि में बांटा गया है। अधिकांशतः मरुस्थलीय भूमि उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध की ऊष्णकटिबंधीय कर्क रेखा व मकर रेखा के निकट महाद्वीपों के पश्चिम तट पर 150–350 अक्षांश तक पाई जाती है।

मरुस्थलीय पौधों की विशेषताएं

- पत्तियाँ नुकीली व बहुत छोटी होती हैं।
- अधिकतर झाड़ियों के रूप में होते हैं।
- पत्तियाँ व तने गूदेदार होते हैं, जो जल को संचित रखते हैं। कुछ पौधों के तनों में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के लिए क्लोरोफिल पाया जाता है।
- पादप प्रजातियों में नागफनी, बबूल आदि के वृक्ष पाए जाते हैं।

मरुस्थलीय जंतुओं की विशेषताएँ

- यहाँ तेज दौड़ने वाले जीव पाए जाते हैं।
- ये स्वभाव से रात्रिचर होते हैं।
- यहाँ के जंतु व पक्षी सामान्यतः लंबी टांगों वाले होते हैं जिससे उनका शरीर गर्म धरती से दूरी बनाये रखता है।
- शाकाहारी जंतु उन बीजों से पर्याप्त मात्रा में जल ग्रहण कर लेते हैं, जिन्हें वे ग्रहण करते हैं।

टुंड्रा प्रदेश (Tundra Regions)

टुंड्रा का अर्थ है– बंजर भूमि, ये वन विश्व के उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जहाँ पर्यावरणीय दशाएँ अत्यन्त जटिल होती हैं। भौतिक भूगोल में, टुंड्रा एक बायोम है, जहाँ वृक्षों की वृद्धि कम तापमान तथा छोटे मौसम के कारण प्रभावित होती है। टुंड्रा का शाब्दिक अर्थ है– ऊँची भूमि या वृक्षविहीन पर्वतीय रास्ता। यहाँ पर चलने वाली ठंडी हवाएँ पुर्गा तथा ब्लीजार्ड कहलाती हैं। यहाँ काई, लाइकेन, विलो, भुर्ज तथा झरवेरी आदि वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। टुंड्रा प्रदेशों के मुख्यतः तीन प्रकार हैं–

टिप्पणी

- आर्कटिक टुंड्रा
- अल्पाइन टुंड्रा
- अंटार्कटिक टुंड्रा

यहाँ की वनस्पतियाँ मुख्यतः बौनी झाड़ियां, दलदली पौधे, काई, व लाइकेन से मिलकर बनती हैं। कहीं–कहीं छितरे हुए वृक्ष उगते हैं। टुंड्रा प्रदेश और जंगल के मध्य की पारिस्थितिकी सीमा वृक्ष रेखा कहलाती है। कनाडा तथा यूरेशिया के उत्तर में स्थित यह ध्रुवीय शीतमरुस्थल ऊँचे अक्षांशों में न्यून तापमान के कारण हिमाच्छादित रहता है। शीत ऋतु में यहाँ का तापमान –13.90 डिग्री से. से –45.6 डिग्री से. रहता है। शीत ऋतु आठ मास व ग्रीष्म ऋतु चार मास की होती है। यहाँ पर वार्षिक औसत वर्षा 24 सेमी. से 30 सेमी. तक होती है।

जलीय पारिस्थितिक तंत्र (Aquatic Ecosystem)

जलीय इकाइयों में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ व जंतु पाए जाते हैं। जलीय पारिस्थितिकी में महासागरों, सागरों, झीलों, तालाबों, नदियों सहित समस्त जलीय वातावरणों में इन सम्बन्धों के अध्ययन सम्मिलित हैं।

किसी जलीय वस्तु (तालाब, नदी, समुद्र) के परितंत्र को जलीय परितंत्र कहते हैं। इसके अन्तर्गत वे समस्त जलीय जीव–जन्तु (Organisms) आते हैं जो पर्यावरण पर निर्भर होते हैं या एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं।

जलीय तंत्र विशिष्ट क्षेत्र है जिसमें विविध व विशिष्ट प्रकार के जंतु, पौधे व सूक्ष्म जीव निवास करते हैं। पादप व जंतु जगत में यह विविधीकरण मुख्यतः तापमान, लवणता, प्रकाशित मंडल, ताप प्रवणता, प्रकाशी (समुद्री) क्षेत्र, जल में प्रकाश का प्रवेशन, घुले हुए पोषक तत्व, कीचड़, रेत और अजैविक पदार्थों की उपस्थिति के कारण होता है। विभिन्न प्रकार के जलीय पारिस्थितिकी तंत्र निम्नानुसार हैं–

स्वच्छ जलीय पारिस्थितिकी तंत्र (Fresh water Ecosystem): स्वच्छ जल से अभिप्राय बहता पानी या स्थिर पानी है।

बहता पानी– स्वच्छ जलधाराएं, झरने, जल प्रपात, नदियाँ, छोटे नाले

स्थिर पानी– तालाब, दलदल, झीलें

इसकी भौतिक, रासायनिक तथा जैववैज्ञानिक विशेषताओं में अत्यन्त विभिन्नताएँ पायी जाती हैं।

समुद्री जल पारिस्थितिकी तंत्र (Marine Ecosystem) : पृथ्वी की सतह के लगभग 71 प्रतिशत भाग पर जल है तथा जल की औसत गहराई 3750 मीटर है।

ज्वारनदमुख या एस्चूएरी (Estuaries)

समुद्री खाड़ियाँ, नदी मुख, डेल्टा, ज्वारीय कच्छ ज्वारनदमुख या एस्चूएरी में नदियों से स्वच्छ जल समुद्री जल में मिलता है तथा दोनों का मिश्रण ज्वारीय क्रिया से होता है। एस्चूएरी समीपस्थ नदी, समुद्र या महासागर की अपेक्षा उच्च रूप से उत्पादक है। एस्चूएरी वह बिंदु है जहाँ नदी का मुख समुद्र में प्रवेश करता है तथा स्वच्छ जल व खारा जल आपस में मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह वह स्थान है जहाँ सागरीय उतार–चढ़ाव आते रहते हैं। अन्य शब्दों में यह नदी की खाड़ी है, जो नदी के मुख से शुद्ध जल व समुद्र से लवणीय जल प्राप्त करती है। एस्चूएरी विश्व में

टिप्पणी

सर्वाधिक उत्पादक जलीय इकाइयां हैं। इन्हें प्रतिदिन समुद्री जल द्वारा एक या दो बार स्वच्छ किया जाता है।

एस्चूएरी पारिस्थितिकी तंत्र की प्रमुख विशेषताएँ (Salient Features of Estuary Ecosystem)

एस्चूएरी पारितंत्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

- समुद्री व नदी जल का मुक्त मिश्रण होता है।
- यह समुद्री तरंगों की अपेक्षा शांत होता है तथा अनेक पादपों व जंतुओं को आश्रय प्रदान करता है।
- यह सर्वाधिक उत्पादक क्षेत्र है जो स्वच्छ व समुद्री जल से उच्च मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त करता है।
- ये विश्व के सर्वाधिक जनघनत्व वाले क्षेत्र हैं।
- एस्चूएरी नदी के जल में घुले हुए घटकों के लिए छलनी का कार्य करते हैं।
- यह प्रदूषकों का प्रभाव कम करता है।
- एस्चूएरी विभिन्न प्रकार के पादप व जीव जगत को सहारा प्रदान करते हैं। इनमें लवणीय दलदल, समुद्री खरपतवार, समुद्री घास, मैग्रोव, सूक्ष्मजीव, समुद्री कछुआ, कैटफिश, समुद्री शेर, ईलग्रास, बुलगस तथा सेज के वास हैं।
- इनका सौंदर्यात्मक स्थल व मनोरंजक स्थल के रूप में अत्यन्त महत्व है।
- ये मृदा अपरदन को संरक्षित करते हैं।
- जमा हुए कीचड़ तथा रेत के नदी के मुख पर एकत्रित होने से डेल्टा का निर्माण होता है।

पोखर अथवा तालाब (Pond Ecosystem)

पोखर अधिकांशतः भारत के समस्त गांवों में होते हैं। ये पोखर छोटे–बड़े आकार के होते हैं, जिनमें जल की मात्रा भिन्न–भिन्न होती है। कुछ पोखरों में ग्रीष्म काल में जल समाप्त हो जाता है। जल की उपस्थिति एवं मात्रा के अनुसार उनके जैविक पदार्थों में भी परिवर्तन होता रहता है।

पोखर के स्थिर जल में खरपतवार जल पर तैरती रहती है जिनकी जड़ें दलदल में होती हैं। प्रमुख प्राणियों में मछली, मेढक, कोडिल्ला तथा जलमुर्गियाँ हैं। अनेक प्रकार के कीड़े–मकोड़े, घोंघे, केकड़े भी तालाबों में पाए जाते हैं। अधिकांशतः जीव मृत जैविक पदार्थों पर आश्रित होते हैं। पोखर के सूख जाने की स्थिति में मेढक, घोंघे तथा कीड़े कीचड़ के नीचे छिप जाते हैं तथा वर्षा होने पर जल में तैरने लगते हैं।

झील परितंत्र (Lake Ecosystem)

झील एक विस्तृत जलाशय है जो चारों ओर से जल से घिरी होती है। इसकी प्रक्रिया भी पोखर के समान होती है। झीलें सामान्यतः गहराई में तीन मीटर से अधिक होती हैं। इसके अतिरिक्त पौधे अलगी के रूप में होते हैं, जो सूर्य से प्रकाश व ऊर्जा प्राप्त करके उसको रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं। झीलों के जल में बहुत से शाकाहारी जीव व मछलियाँ पाई जाती हैं। मछलियाँ कैटफिश मलमूत्र तथा मृत प्राणियों पर आश्रित होती हैं जिनको 'बोटम–फीडर' भी कहा जाता है।

टिप्पणी

झीलों की आहार श्रृंखला तथा ऊर्जा श्रृंखला सूर्य प्रकाश पर निर्भर होती है। पेड़–पौधों के द्वारा उत्पन्न की गई ऊर्जा को शाकाहारी उपभोग में लाते हैं। शाकाहारियों को मांसाहारी प्रयोग करते हैं; पशुओं के मल–मूत्र को खाकर सूक्ष्म प्राणी आहार श्रृंखला पूर्ण करते हैं।

इस प्रक्रिया में पौधे जल से कार्बन का प्रयोग करते हैं, जो ऑक्सीजन उत्पन्न करते हैं। उपलब्ध ऑक्सीजन का उपयोग जल में रहने वाले पशु–पक्षी भी करते हैं। भारत में अधिकांश झीलें हिमालय व सतलुज–गंगा–ब्रह्मपुत्र के मैदानों में हैं।

- स्वच्छ जलवाली झीलें डल, बूलर आदि हैं।
- लवणीय झीलें चिल्का, अष्ठमुदी, बेम्बानद हैं।
- पोषक तत्वों के आधार पर झीलों को ओलिगोट्रोफिक (अत्यन्त निम्न पोषक तत्व युक्त), यूट्रोफिक (उच्च पोषक तत्व युक्त) जैसे डल झील में बांटा गया है। अधिकांश भारतीय झीलें यूट्रोफिक हैं।

यूट्रोफिक झीलें अधिकांशतः तीन मीटर से अधिक गहरी होती हैं। झीलों का पारिस्थितिकी तंत्र नदियों, एस्चूएरी, आर्द्रभूमि सागरों व महासागरों से भिन्न होता है। प्रायः झीलें अपनी सतह से जल प्राप्त करती हैं। झीलें अंततः अपने व्यापक पोषक तत्वों की आपूर्ति समीपस्थ क्षेत्रों तथा मानवीय गतिविधियों से करती हैं। ये पोषक तत्व शैवाल, समुद्री पादपों तथा विभिन्न जीवों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इस प्रकार जलीय इकाइयों में खरपतवारों व पादपों की विकास प्रक्रिया यूट्रोफिकेशन कहलाती है। यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसमें झीलें अपना पोषण व अवसाद प्राप्त करती हैं तथा पुष्ट होती हैं। इस प्रक्रिया में झीलें धीरे–धीरे जल से भर जाती हैं। इस प्रक्रिया में झील की प्राथमिक उत्पादकता में विकासात्मक वृद्धि होती है क्योंकि झीलें जमे हुए पोषक तत्वों को हटाने में अप्रभावी होती हैं। यूट्रोफिकेशन को झील का वृद्ध होना भी कहा जाता है।

यूट्रीफिकेशन में झील में अधिक संख्या में मृत जीवों की आपूर्ति होती है। सूक्ष्म जीव–जन्तु इस जैविक पदार्थ को तोड़ देते हैं किन्तु इस प्रक्रिया में उन्हें ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है जबकि ऑक्सीजन जल में अंशतः घुल जाती है तथा ये निम्न संकेन्द्रण में विद्यमान रहते हैं। अपघटकों द्वारा ऑक्सीजन का प्रयोग करने से इसका स्तर गिर जाता है। अन्य जलीय जीव इसमें जीवित नहीं रह पाते हैं। कुछ वर्षों के निरन्तर पोषकों के प्रदूषण से झील एक छिछली झील में बदल जाती है। शनैः–शनैः झील यूट्रोफिकेशन की प्रक्रिया से गुजरते हुए अवसादी व जैविक पदार्थों से भर जाती है।

यूट्रोफिकेशन के प्रमुख परिणाम निम्न हैं–

- पारिस्थितिकी तंत्र में परिवर्तन
- जैव विविधता में कमी
- नई प्रजातियों का हस्तक्षेप
- शैवाल सम्बन्धी वृद्धि
- घुली ऑक्सीजन के स्तर में कमी
- प्रवाल भित्तियों की हानि
- हानिकारक गंध

टिप्पणी

- मनोरंजन गतिविधियों में कमी
- सौंदर्यात्मक मूल्य में कमी

आर्द्र–भूमि पारिस्थितिकी तंत्र (Wetland Ecosystem)

दलदल व कछारीयुक्त भूमि की वह सतह जहाँ जल निकास की अल्पतम व्यवस्था होती है, आर्द्र–भूमि कहलाती है। आर्द्र–भूमि को समय–समय पर निकटतम गहरे जलावास से जल की प्राप्ति होती रहती है। इसी कारण से यह जल भराव में विकसित होने वाले पौधों व जीवों को सहायता प्रदान करती है तथा उनकी वृद्धि में सहायक होती है। आर्द्र–भूमि वे छिछली झीलें हैं जो सामान्यतः तीन मीटर से कम गहरी होती हैं। आर्द्र–भूमि में तटीय क्षेत्र, दलदली भूमि, कछारी क्षेत्र तथा नमी क्षेत्र सम्मिलित होते हैं।

आर्द्र–भूमि को दो वर्गों में विभक्त किया गया है–

- आंतरिक आर्द्र–भूमि
- समुद्रतटीय आर्द्र–भूमि

आंतरिक आर्द्र–भूमि प्राकृतिक व कृत्रिम हो सकती है। प्राकृतिक आंतरिक आर्द्र–भूमि में झीलें, तालाब, दलदली भूमियाँ व कछारी क्षेत्र आते हैं। जबकि मानव निर्मित आर्द्र–भूमि में टैंक जलभराव क्षेत्र तथा जलाशय सम्मिलित होते हैं।

समुद्रतटीय आर्द्र–भूमि में खाड़ियाँ, पृष्ठजल क्षेत्र क्रीक, एस्चूएरी, लैगून, लवणीय दलदली क्षेत्र, ज्वारीय फ्लैट सम्मिलित हैं। समुद्र तट के पास साल पेन्स आदि मानव निर्मित आर्द्र–भूमियाँ हैं। आर्द्र–भूमि मानव व पर्यावरण हेतु निम्न रूपों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है–

- ये जलीय पौधों, जन्तुओं, पक्षियों तथा भ्रमणकारी प्रजातियों के वास हैं।
- इनमें अवसाद व पोषक तत्व सतही जल से छनते हैं।
- जल शुद्धीकरण में सहयोग प्रदान करते हैं।
- बाढ़ों के आगमन को कम करते हैं।
- भूजल के पुनर्निर्माण में सहायक होते हैं।
- पेयजल, मछलियाँ, चारा तथा ईंधन उपलब्ध कराते हैं।
- जैव विविधता को बनाये रखने में सहायक होते हैं।
- पर्यटन व पारिस्थितिकी पर्यटन को प्रोत्साहित करते हैं।

किन्तु आर्द्र–भूमियां तीव्रता से कम हो रही हैं, जिनके प्रमुख कारण अग्रलिखित हैं–

- जनसंख्या वृद्धि
- आर्द्र–भूमियों पर कृषि कार्य हेतु अतिक्रमण
- अधिक चारागाह के रूप में प्रयोग
- एक्वाकल्चर
- भूमि सुधार
- जल प्रदूषण
- औद्योगिक व घरेलू अपशिष्टों की निपटान भूमि के रूप में प्रयोग।

टिप्पणी

नदियों तथा बहते जल के पारिस्थितिकी तंत्र (Streams and Rivers Ecosystem)

नदी का बहता जल एक संकीर्ण सरिता होती है जो ढलान के अनुरूप बहती है। नदी, दरिया किसी सरिता का विस्तृत रूप होता है। कुछ पौधे तथा प्राणी बहते जल को सहन करके जीवित रह पाते हैं, जबकि कुछ प्राणी बहते जल में जीवित नहीं रह पाते हैं।

कुछ जलीय प्राणी केवल बहते जल में ही प्रजनन करते हैं। महसीर जैसी मछलियां प्रजनन के लिए नदियों के ऊपरी पर्वतीय भागों में पलायन करती हैं। गंदे पानी तथा सख्त चट्टानों पर बहने वाली नदियों में कुछ विशेष प्रकार की मछलियाँ ही जीवित रहती हैं।

स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र के समान ही जलीय पारितंत्र भी तापमान, पोषक तत्वों की उपलब्धता, प्रकाश, जलधारा व लवणता से प्रभावित होता है।

तापमान (Temperature)

स्थलीय भाग की अपेक्षा जल में तापमान का परिवर्तन मंद गति से होता है, तापमान में परिवर्तन जलीय जलवन को प्रभावित करता है तथा किसी जीव की संख्या में वृद्धि तापमान पर ही निर्भर करती है।

लवणता (Salinity): लवणता भी जलीय परिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करने वाले कारकों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि जलीय पारिस्थितिकी तंत्रों में पाए जाने वाले जीव–जंतुओं व पादपों में भिन्नता पाई जाती है।

पोषक तत्व (Nutrients): जलीय पारिस्थितिकी तंत्र पर पोषक तत्वों का अत्यधिक प्रभाव होता है क्योंकि जलीय पारितंत्र के लिए पोषक तत्वों का एक निश्चित मात्रा में होना अनिवार्य है। अत्यधिक पोषक तत्वों की अधिकता में जल में अति पोषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

सूर्य का प्रकाश (Sunlight): सूर्य के प्रकाश का जलीय पारितंत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। जलीय पारितंत्र की गहराई में वृद्धि होने के साथ–साथ सूर्य के प्रकाश व तापमान में कमी होती जाती है और 200 मीटर के पश्चात् यह समाप्त हो जाता है। जलीय पारितंत्र को दो भागों में बाँटा गया है–

- प्रकाशीय क्षेत्र (Photic Zone): इस क्षेत्र में प्रकाश संश्लेषण व श्वसन दोनों प्रक्रियाएं संपन्न होती हैं।
- अप्रकाशीय क्षेत्र (Aphotic Zone): यह 200 मीटर से अधिक गहराई वाला क्षेत्र होता है। यहाँ रहने वाले अवसादों पर निर्भर रहते हैं तथा इस क्षेत्र में मात्र श्वसन क्रिया संपन्न होती है।

जल में घुलित ऑक्सीजन (Dissolved Oxygen in Water)

स्वच्छ जल में घुलित ऑक्सीजन की सांद्रता 0.0017% होती है, स्थलीय पारिस्थितिकी की तुलना में जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में लगभग 150 गुना कम ऑक्सीजन उपलब्ध होती है।

कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र में बगीचे, मानव निर्मित झील (खदान झील) और भूमि जो कि कृषि के लिए उपयोग की जाती है ये सब सम्मिलित हैं। वास्तव में कृषि ने विश्व के परिदृश्य को काफी सीमा तक परिवर्तित कर दिया है। मानव घास के मैदानों और

टिप्पणी

वन पारिस्थितिक तंत्र को उन क्षेत्रों में परिवर्तित कर रहा है जिन्हें फसलों हेतु उपयोग करने के लिए विभाजित किया गया है।

मानव निर्मित पारिस्थितिक तंत्र का एक उदाहरण भूमि का एक समृद्ध भूखंड है– यह एक जंगल पारिस्थितिक तंत्र है, जिसे मनुष्यों ने जानबूझकर वृक्षों के समूह को रोपण करने के परिणामस्वरूप निर्मित किया है।

कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र में प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र की कुछ विशेषताएं होती हैं लेकिन उसको मनुष्यों द्वारा बनाया जाता है। यह प्राकृतिक पारितंत्र की अपेक्षा अधिक सरल होता है। सांस्कृतिक परिदृश्य बड़े पैमाने पर पारिस्थितिक तंत्र हैं जिन्हें मनुष्यों द्वारा संशोधित किया गया है। कृषि एक कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र है जो मानव आबादी को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। नगरीय पारिस्थितिक तंत्र सामान्यतः हाइब्रिड पारिस्थितिक तंत्र होते हैं, जो एक क्षेत्रीय पैमाने पर कृत्रिम व प्राकृतिक तत्वों को जोड़ते हैं। कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र के उदाहरण हैं– आधुनिक शहर हाइड्रोपोनिक्स (मिट्टी और सूरज की रोशनी के बिना पौधों की खेती), आकाशीय प्रयोगशालायें और अंतरिक्ष जहाज, दक्षिण ध्रुव खोजकर्ताओं के शिविर, शहरी बस्तियाँ, कक्कुट पिठारी, चिड़ियाघर, सामाजिक जंगल, औद्योगिक हरी बेल्ट, मशीनीकृत कृषि खेती, उद्योग और अपशिष्ट में जैव रिएक्टर उपचार संयंत्र।

भारत में अनेक कृत्रिम व मानव निर्मित झीलें हैं। इनमें से गिरनार की सुदर्शन झील जो 300 ईसा पूर्व बनाई गयी थी भारत की सर्वाधिक प्राचीन कृत्रिम झील है।

मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप प्रकृति के परितंत्रों को रूपान्तरित करने का प्रयत्न किया है जिसके प्रमुख कारण हैं–

- जनसंख्या वृद्धि
- मानवीय आवश्यकताओं में वृद्धि
- जीवन शैली में परिवर्तन

मानव निर्मित पारितंत्र (Manmade Ecosystem)

सौर ऊर्जा पर निर्भर वे पारितंत्र जो मनुष्यों द्वारा निर्मित किए गए हैं जैसे– खेत और कृत्रिम तालाब।

जीवाश्म ईंधन पर निर्भर पारितंत्र जैसे–नगरीय पारितंत्र व औद्योगिक पारितंत्र।

कृत्रिम तंत्र में ऊर्जा प्रवाह नियोजन एवं प्राकृतिक संतुलन में व्यवधान रहता है।

कृषि पारितंत्र मनुष्य के तकनीकी व वैज्ञानिक ज्ञान के कारण प्राकृतिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित कर नए पारिस्थितिक तंत्र का विकास किया गया है उदाहरणार्थ, कृषि क्षेत्र का पारिस्थितिक तंत्र। इस तंत्र में मनुष्य अधिक से अधिक उत्पादन हेतु विभिन्न प्रकार के हानिकारक रासायनिक तत्वों का प्रयोग करता है। मृदा में कृत्रिम उर्वरक का प्रयोग करके उसमें खनिज लवणों की पूर्ति करता है। विशेष प्रकार के बीज, सिंचाई व्यवस्था व तकनीकी प्रयोग से न केवल कृषि क्षेत्र में विस्तार हुआ है अपितु उत्पादन में भी वृद्धि हुई है। नई फसलों के उत्पादन द्वारा अधिक विकास संभव हुआ है। फसल के विकास के साथ–साथ अनेक प्रकार के पौधे स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं। ये पौधे उपभोक्ता द्वारा उपभोग कर लिये जाते हैं। फसल के पक जाने पर विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थ मृदा में मिल जाते हैं जिससे प्राकृतिक पर्यावरण के साथ–साथ पारिस्थितिक तंत्र में भी परिवर्तन आ जाता है। मानवीय प्रयास उसमें और

अधिक समानुकूलन उत्पन्न करते हैं जिससे अनेक नवीन पारिस्थितिक तंत्रों का विकास हो जाता है।

टिप्पणी

कृषि पारितंत्र वे बड़े–बड़े क्षेत्र हैं जहाँ वाणिज्यिक व्यापारिक महत्व की फसलें उगाई जाती हैं। फसलों को आर्थिक उद्देश्यों के लिए बोया उगाया जाता है। अधिकतर पूरे खेत में एक ही प्रकार की फसल (एकल फसल) उगायी जाती है या कभी–कभी दो या दो से अधिक फसलों को एक साथ उगाया जाता है।

कृषि पारितंत्रों की प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित हैं–

- ये अत्यधिक सरल पारितंत्र हैं जो फसल प्रजाति की एकल फसल को सहारा देते हैं।
- प्रजातीय विविधता न्यूनतम होती है।
- अत्यधिक अस्थायी और स्वपोषणीय नहीं होते हैं।
- खरपतवार को बढ़ावा देते हैं तथा पादप रोगों के प्रति संवेदनशील होते हैं।
- मृदा में पोषक तत्वों की न्यूनता होती है तथा रासायनिक उर्वरकों को इनमें मिलाना पड़ता है।
- कृत्रिम सिंचाई और जल प्रबंधन की आवश्यकता होती है।
- मानवीय संरक्षण और प्रबंधन पर निर्भर होते हैं।

मानव निर्मित वन (Manmade forests)

यह एक मानव–निर्मित पारितंत्र है, जिसमें वृक्षों की विशेष प्रजातियाँ आती हैं। इसमें पेड़ों को खाली भूमि, निजी भूमि, गाँव पंचायत की भूमि, सड़क के किनारे, नहर के किनारे, रेलवे लाइन के किनारे तथा कृषि अयोग्य भूमि पर लगाया जाना सम्मिलित है। ऐसे पारितंत्र आर्थिक दृष्टि से उपयोगी पौधों को तेजी से उगाने हेतु लक्षित होते हैं।

इनकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

- इन वनों में प्रायः एकल कृषि संवर्धन (ऑयल पॉम, रबर व कॉफी) वृक्षारोपण आदि आते हैं।
- इन वनों में लगभग एक ही प्रकार के वृक्ष होते हैं।
- ये वन रोगजनकों और पीड़कों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं।
- प्रजातीय विविधता बहुत कम होती है।
- निरंतर मानवीय संरक्षण व प्रबंधन की आवश्यकता होती है।
- बायोडीजल हेतु जेट्रोफा करकरे (Jatropha Curcure) जैसी प्रजाति के पौधों का वृक्षारोपण प्रचलित है।

नगरीय पारितंत्र (Urban Ecosystem)

नगरीय जीवन में बहुत सारे मनुष्य साथ–साथ निवास करते हैं। वर्तमान में एक नगरीय क्रांति प्रचलित है समस्त संसार में मनुष्यों का एक बड़ा हिस्सा नगरों की ओर पलायन कर रहा है। नगरीय पारितंत्र मनुष्यों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं, औद्योगीकरण, व्यवसायीकरण, जनसंख्या विस्फोट व परिवर्तित जीवनशैली का परिणाम है।

नगरीय पारितंत्र की निम्न विशेषताएं हैं–

- अत्यधिक जनसंख्या घनत्व।

टिप्पणी

- घरों की कमी, भीड़भाड़ तथा झोंपड़पट्टी में वृद्धि।
- शहरी क्षेत्र उत्तरजीविका के लिए ऊर्जा, खाद्य पदार्थ, तथा अन्य वस्तुओं की बढ़ती हुई मांगों का बाहर से आयात करते हैं।
- अत्यधिक मात्रा में ठोस और द्रव अपशिष्ट पदार्थ उत्पन्न करते हैं तथा वायु प्रदूषण पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या उत्पन्न करते हैं।
- रोजगार के अधिक अवसर तथा अत्यधिक प्रतिस्पर्धा।
- उच्च शिक्षा सुविधाएं।
- उचित चिकित्सीय सुविधाएं और स्वास्थ्य सेवाएं।
- मनोरंजन के अन्य विविध स्रोत।

नगरीय पारितंत्रों द्वारा मानवजाति निम्न तरीकों से लाभान्वित होती है–

- आर्थिक दृष्टि से विकसित।
- औद्योगिक वृद्धि के केन्द्र।
- व्यापार के केन्द्र (वाणिज्य केन्द्र)।
- बहुसांस्कृतिक सामाजिक पर्यावरण।
- कम शिशु मृत्यु दर।
- राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र।

ग्रामीण पारितंत्र (Rural Ecosystem)

ग्रामीण पारितंत्र प्राकृतिक व नगरीय पारितंत्र के मध्य में होता है क्योंकि इसमें मानव द्वारा प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अपेक्षाकृत काफी कम होता है। ग्रामीण क्षेत्रों के लोग अपेक्षाकृत सरल, साधारण व प्रकृति के अधिक निकट होते हैं।

ग्रामीण पारितंत्र की अग्रलिखित विशेषताएं होती हैं–

- बहुत से गाँव केवल एक ही परिवार के होते हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में मनुष्य प्रकृति के समीप होने के कारण स्थानीय संसाधनों का अधिक उपयोग करते हैं।
- छोटे–छोटे समूहों में रहते हैं।
- प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कार्य पर निर्भर होते हैं।
- पीने का पानी कुएं, नहरों, झीलों व नदियों से प्राप्त किया जाता है।
- शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, जल निकास, स्वच्छता, स्वास्थ्य, विज्ञान और परिवहन आदि सुविधाएं लगभग न्यून होती हैं।
- वायु व ध्वनि प्रदूषण से मुक्त होता है।

गांवों से शहरों की ओर पलायन हेतु शहरों में भूमि की कीमतों में वृद्धि करना तथा अतिक्रमण पर रोक इत्यादि सम्मिलित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों को प्रोत्साहन देना चाहिए।

बांध, जलाशय तथा नहरें (Dam, Reservoire and Canal)

बांध एक ऐसी संरचना है जिसमें नदी तथा ज्वारीय जल को संचित किया जाता है। बांध में जलाशय और नहरों में बहते हुए जल को संचित किया जाता है तथा आवश्यकतानुसार उस पानी को छोड़ा जाता है। इनके उपयोग निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

- बाढ़ पर नियंत्रण हेतु।
- जल विद्युत उत्पन्न करने के लिए।
- सिंचाई उद्योगों और अन्य उपयोग। ग्रामीण, उपनगरीय तथा नगरीय क्षेत्रों में जल आपूर्ति के लिए।
- तैराकी, नौकायन जैसी मनोरंजनात्मक गतिविधियों हेतु।
- कोयले के उपभोग में कमी आने से कार्बनडाईऑक्साइड का उत्सर्जन कम होता है पारिणामस्वरूप प्रदूषण में कमी आती है।

इनके द्वारा होने वाली हानियाँ निम्नलिखित हैं–

- वनों व कृषि भूमि का बहुत बड़ा भाग स्थायी रूप से जलमग्न हो जाता है।
- यहाँ निवास करने वाली आबादी को हटाना पड़ता है।
- कम जल बहाव के कारण जल प्रदूषण में वृद्धि होती है।
- निचले बाढ़ के क्षेत्रों में पोषक तत्वों के पुनर्भरण में कमी आती है।
- कुछ मत्स्य प्रजातियों के प्रवास और अण्डे देने में बाधा पड़ती है।
- उच्च लागत लगती है।
- ऊँचे बांध (15 मीटर से ऊँचे) भूकम्प संभावित क्षेत्रों में भूकम्प के खतरे को बढ़ा देते हैं।
- जल की भौतिक और रासायनिक गुणवत्ता में परिवर्तन होता है।

एक्वाकल्चर (Aquaculture)

एक्वाकल्चर जलीय जंतुओं और पौधों का कृत्रिम संवर्धन है। एक्वाकल्चर में बुनियादी तौर पर व्यावसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अलवणजलीय तथा लवणजलीय मछलियों, घोंघों, क्रस्टेशियनों और जलीय पौधों की खाद्य–प्रजातियों का संवर्धन किया जाता है। सामान्यतः प्राकृतिक जल निकायों में अत्यधिक जैव विविधता पायी जाती है। मनुष्यों के द्वारा बहुत कम प्रजातियों का ही संवर्धन किया जाता है। मानव द्वारा मात्र 22 मत्स्य प्रजातियों का (लगभग 20,000 मत्स्य प्रजातियों में से) संवर्धन किया जाता है। मत्स्यकी में समुद्र और अलवणीय जल से खाद्य का निष्कर्षण सम्मिलित है जबकि एक्वाकल्चर के अंतर्गत कृत्रिम रूप से निर्मित जल निकायों में जलीय जीवों का पालन–पोषण सम्मिलित है उदाहरण– कार्य, तिलापिया मछलियों का संवर्धन।

एक्वाकल्चर दो प्रकार के होते हैं–

- **मत्स्य पालन** (Pisuculture): इसके अंतर्गत नियंत्रित पर्यावरण सामान्यतः तटीय अथवा अन्तः स्थलीय तालाबों, झीलों, जलाशयों या धान के खेतों में मछलियों का संवर्धन तथा उन्हें पकड़ना सम्मिलित है।
- **मत्स्य रानचिंग** (Ranching): इसमें मछलियों को तटीय खाड़ी क्षेत्रों (Lagoon) में प्लवमान पिंजरों के अंदर पहले कुछ वर्षों के लिए बंदी–स्थिति में रखा जाता है। तत्पश्चात इन्हें जल निकायों में छोड़ दिया जाता है।

एक्वाकल्चर के प्रमुख गुण इस प्रकार हैं–

- पारिस्थितिकीय दक्षता उच्च होती है।
- कम पानी में अधिक उत्पादन।

टिप्पणी

- चयन, जनन तथा आनुवांशिक अभियांत्रिकी द्वारा मछलियों की उन्नत किस्में प्राप्त करना।
- एक्वाकल्चर मछलियों के अत्यधिक संवर्धन को कम करना।
- आर्थिक लाभ।

एक्वाकल्चर में निहित अवगुण इस प्रकार हैं–

- अत्यधिक खाद्य, भूमि और भूमि निवेश की आवश्यकता होती है।
- जल की प्राकृतिक जैवविविधता नष्ट हो जाती है क्योंकि व्यापारिक महत्व की मत्स्य प्रजातियों का एकल संवर्धन किया जाता है।
- अत्यधिक मात्रा में मत्स्य अपशिष्ट उत्पन्न होने के कारण जल निकाय दूषित हो जाते हैं।
- मैंग्रोव वन व तटीय वनस्पति नष्ट हो जाती है।
- एक्वाकल्चर मछलियां खेतों से बहकर आने वाली कीटनाशियों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं।
- एक्वाकल्चर जलाशयों से उच्च समष्टि घनत्व को नियमित कर देता है जो उनकी फसल को किसी भयंकर रोग से सुरक्षा प्रदान करता है।
- एक्वाकल्चर जलाशय प्रायः कुछ वर्षों के पश्चात दूषित हो जाते हैं।

क्रियाशीलता के आधार पर पारिस्थितिक तंत्र का वर्गीकरण (Classification of Ecosystem on the basis of functionality)

क्रियाशीलता के आधार पर वर्गीकरण

1. स्वयं समर्थ पारिस्थितिक तंत्र (Self sufficient Ecosystem)
2. अपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र (Incomplete Ecosystem)
3. विकृत पारिस्थितिक तंत्र (Degraded Ecosystem)
4. अनियंत्रित पारिस्थितिक तंत्र (Uncontrolled Ecosystem)

- स्वयं समर्थ पारिस्थितिक तंत्र में कोई परिवर्तन आ जाता है तो उस तंत्र के घटक स्वयं स्थिति को नियंत्रण में कर लेते हैं।
- अपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र के अन्तर्गत किसी भी एक घटक (उत्पादक, उपभोक्ता, अपघटक और अजैविक घटक) की कमी को सम्मिलित किया गया है।
- विकृत पारिस्थितिक तंत्र वह पारिस्थितिक तंत्र है जिसमें उत्पादक एवं उपभोक्ता के सामान्य अनुपात में कमी या वृद्धि हो जाती है जिससे पारिस्थितिक तंत्र विकृत हो जाता है तो यह विकृत पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है।
- अनियंत्रित पारिस्थितिक तंत्र के अन्तर्गत मानवीय गतिविधियों द्वारा पारिस्थितिक तंत्र असंतुलित हो जाता है।

अंततः पारिस्थितिकी तंत्र का सरलतम अर्थ है, 'प्राणियों एवं वनस्पतियों के परस्पर सम्बन्धों और इनके पर्यावरण से सम्बन्धों का सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्ध अध्ययन करना।'

पारिस्थितिकी तंत्र की विशेषताएँ (Characteristics of Ecosystem)

पारिस्थितिकी तंत्र की विशेषताएँ अग्रलिखित हैं—

- पारिस्थितिकी तंत्र एक कार्यशील क्षेत्रीय इकाई होता है, जो क्षेत्र विशेष के समस्त जीवधारियों एवं उनके भौतिक पर्यावरण के सकल योग का प्रतिनिधित्व करता है।
- समुदाय का यह पूर्ण तंत्र, जिसमें ऊर्जा जैविक तथा अजैविक घटकों का पारस्परिक सम्बन्ध ही पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र जीवमंडल में एक सुनिश्चित क्षेत्र धारण करता है।
- किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र का समय इकाई के संदर्भ में पर्यवेक्षण किया जाता है।
- ऊर्जा, जैविक तथा भौतिक संघटकों के मध्य जटिल पारिस्थितिकी अनुक्रियाएँ होती हैं, साथ ही साथ विभिन्न जीवधारियों में भी पारस्परिक क्रियाएँ होती हैं।
- पारिस्थितिकी तंत्र एक मुक्त तंत्र होता है, जिसमें ऊर्जा तथा पदार्थों का सतत् निवेश तथा उसमें बहिर्गमन होता रहता है।
- जब तक पारिस्थितिकी तंत्र के एक या अधिक नियंत्रक कारकों में अव्यवस्था नहीं होती, पारिस्थितिकी तंत्र अपेक्षाकृत स्थिर समस्थिति में होता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र प्राकृतिक संसाधन होते हैं। वे प्राकृतिक संसाधनों का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- पारिस्थितिकी तंत्र संरचित तथा सुसंगठित तंत्र होता है।
- प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में अंतर्निर्मित नियंत्रण की व्यवस्था होती है उदाहरणार्थ, यदि पारिस्थितिकी तंत्र के किसी एक संघटक में प्राकृतिक कारणों से कोई परिवर्तन होता है तो तंत्र दूसरे संघटक में परिवर्तन द्वारा उसको नियंत्रण में कर लेता है; परन्तु यदि यह परिवर्तन प्रौद्योगिकी मानव के आर्थिक क्रिया—कलापों द्वारा अत्यधिक हो जाता है कि वह पारिस्थितिकी तंत्र के अंतर्निर्मित नियंत्रण की व्यवस्था की सहनशक्ति से बाहर होती है तो उक्त परिवर्तन नियंत्रित नहीं हो पाता है और पारिस्थितिकी तंत्र अव्यवस्थित व असंतुलित हो जाता है एवं पर्यावरण अवनयन तथा प्रदूषण प्रारंभ हो जाता है।

पारिस्थितिकी तंत्र के प्रकार (Types of Ecosystem)

1. **निवास क्षेत्र के तंत्र के आधार पर वर्गीकरण** : निवास क्षेत्र, जीव मंडल के विशेष क्षेत्रीय इकाई के भौतिक पर्यावरण की दशाएँ, जैविक समुदायों की प्रकृति तथा विशेषताओं को निर्धारित करता है। यद्यपि भौतिक दशाओं में क्षेत्रीय विभिन्नताएँ होती हैं, अतः जैविक समुदायों में भी स्थानीय विभिन्नताएँ होती हैं। इस अवधारणा के आधार पर पारिस्थितिकी तंत्र को दो प्रमुख उपवर्गों में विभाजित किया गया है—

   (क) पार्थिव पारिस्थितिकी तंत्र : भौतिक दशाओं का उसके जैविक समुदायों पर प्रभाव के अनुसार पार्थिव या स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्रों में विभिन्नताएँ

टिप्पणी

होती हैं। अतः पार्थिव पारिस्थितिकी तंत्रों को पुनः अनेक तंत्रों में विभाजित किया गया है–

- उच्च स्थलीय या पर्वतीय पारिस्थितिकी तंत्र
- निम्न स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र
- उष्ण रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र
- शीत रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र

(ख) जलीय पारिस्थितिकी तंत्र : जलीय पारिस्थितिकी तंत्र को दो प्रमुख उपभागों में विभाजित किया जाता है–

- ताजे जल वाले : इनके अन्तर्गत सरिता पारिस्थितिकी तंत्र, झील पारिस्थितिकी तंत्र, जलाशय पारिस्थितिकी तंत्र, दलदल पारिस्थितिकी तंत्र आदि आते हैं।
- सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र : इनके अन्तर्गत खुले सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र तटीय ज्वारनदमुखी पारिस्थितिकी तंत्र, कोरलरिफ पारिस्थितिकी तंत्र आदि सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त सागरीय पारिस्थितिकी तंत्रों को यथा सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र तथा सागर नितल पारिस्थितिकी तंत्र में भी विभाजित किया जा सकता है।

2. **क्षेत्रीय मापक के आधार पर वर्गीकरण** : क्षेत्रीय मापक या विस्तार के आधार पर विभिन्न उद्देश्यों के लिए पारिस्थितिकी तंत्र को अनेक रूपों में विभाजित किया जाता है–
   - महाद्वीपीय पारिस्थितिकी तंत्र
   - महासागरीय या सागरीय पारिस्थितिक तंत्र आवश्यकतानुसार क्षेत्रीय मापक को घटाकर एकाकी जीव तक लाया जा सकता है।
3. **उपयोग के आधार पर वर्गीकरण** : विभिन्न उपयोगों के आधार पर पारिस्थितिकी तंत्र को निम्न रूपों में विभाजित किया जाता है–
   - **कृषित पारिस्थितिकी तंत्र** : कृषित पारिस्थितिकी तंत्र को विभिन्न प्रमुख फसलों के आधार पर यथा गेहूँ क्षेत्र पारिस्थितिकी तंत्र तथा चारा क्षेत्र पारिस्थितिकी तंत्र में विभाजित किया जाता है।
   - **अकृषित पारिस्थितिकी तंत्र** : अकृषित पारिस्थितिकी तंत्र को वन पारिस्थितिकी तंत्र, ऊँची घास पारिस्थितिकी तंत्र, बंजर भूमि पारिस्थितिकी तंत्र तथा दलदल क्षेत्र पारिस्थितिकी तंत्र में बांटा गया है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. पर्यावरण की कार्यप्रणाली किससे संचालित होती है?
   (क) प्राकृतिक संसाधनों से (ख) मानवीय साधनों से
   (ग) पृथ्वी से (घ) जल से
2. वे पारितंत्र जो पूर्ण रूप से सौर विकिरण पर निर्भर रहते हैं, क्या कहलाते हैं?
   (क) कृत्रिम पारितंत्र (ख) प्राकृतिक पारितंत्र
   (ग) सौर पारितंत्र (घ) चंद्र पारितंत्र

1.3 पारिस्थितिकी तंत्र में गतिशीलता

टिप्पणी

पारिस्थितिकी तंत्र की गतिशीलता पर्यावरण तथा इसके जैव घटकों (पौधों, कवक, जानवरों के मध्य) में होने वाले निरन्तर परिवर्तनों के समूह को संदर्भित करती है। दोनों जैव तथा अजैव घटक एक पारिस्थितिकी तंत्र के अंग हैं व गतिशील संतुलन हैं, जो इसे स्थिरता प्रदान करते हैं। उसी प्रकार परिवर्तन की प्रक्रिया पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना और उपस्थिति को परिभाषित करती है।

पारिस्थितिकी तंत्र सदैव क्रियाशील रहता है अर्थात गतिमान रहता है, उसी को इस क्रियात्मक स्वरूप (गतिशीलतात्मक) की संज्ञा दी जाती है। गतिशीलता स्वरूप के अन्तर्गत ऊर्जा प्रवाह, पोषकता का प्रवाह एवं जैविक व पर्यावरणीय नियमन सम्मिलित होता है जो कि सामूहिक रूप से प्रत्येक तंत्र को परिचालित करता है।

जैव भू–रासायनिक चक्र में ऊर्जा का मुख्य स्रोत सूर्य होता है, जो जलवायु व्यवस्था के अनुरूप ऊर्जा प्रदान करता है। उत्पादक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से खनिज लवण, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन द्वारा शाकाहारी जीवों को भोजन प्रदान करते हैं जिन पर मांसाहारी निर्भर करते हैं। इन्हीं के अपघटन के परिणामस्वरूप विभिन्न खनिज लवणों का भी निर्माण होता है, जो पुनः उत्पादक तक पहुँचते हैं। ऊर्जा सूर्य से उत्पन्न होकर, फिर भोज्य तथा अपघटक में पहुँचती है। ये समस्त क्रियाएँ नियमित एवं इतने अधिक सुचारु रूप से संपादित होती हैं कि सामन्यतया इनका अनुभव नहीं होता है। इस संपूर्ण क्रिया में ऊर्जा का प्रवेश तथा उसका रूपांतरण गणित के ऊष्मागर्तित नियम के अनुसार होता है अर्थात ऊर्जा का न तो निर्माण होता है और न ही यह नष्ट होती है अपितु उसका रूपान्तरण होता है, इस क्रम में कुछ ऊर्जा नष्ट अवश्य हो जाती है।

1.3.1 पारिस्थितिक तंत्र का ऊर्जा प्रवाह

पारिस्थितिक तंत्र ऊर्जा का नियंत्रक है, प्रत्येक जीव को विभिन्न क्रियाओं को संपादित करने के लिए ऊर्जा सूर्य से प्राप्त होती है।

सूर्य से प्राप्त ऊर्जा जिसे सौर ताप कहते हैं, संपूर्ण पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाती अपितु इसका विविध प्रकार से अवशोषण, विकिरण व परावर्तन आदि हो जाता है। सौर ताप के एक अंग को वायु मण्डल की अनेक गैसें, धूल के कण, जल वाष्प तथा अन्य अशुद्धियाँ शोषण कर लेती हैं। इसमें ओजोन व कार्बन डाई ऑक्साइड गैस सर्वाधिक प्रभावित करती है।

कुछ ऊर्जा प्रकीर्णन द्वारा प्रसारित होती है, कुछ बादलों एवं अन्य गैसों से परावर्तित हो जाती है तथा कुछ भाग अवशोषण द्वारा समाप्त हो जाता है। इस प्रकार सौर ऊर्जा का मात्र 14 प्रतिशत हिस्सा वायुमण्डल में प्रत्यक्ष प्राप्त होता है तथा 34 प्रतिशत पृथ्वी की विकिरण क्रिया से मिलता है। इस प्रकार वायुमण्डल में जितनी ऊष्मा आती है उतनी ही पुनः लौट जाती है अथवा प्रयोग कर ली जाती है।

यदि किसी कारणवश सौर ऊर्जा चक्र में बाधा उत्पन्न हो जाती है और अधिक मात्रा में ऊष्मा का प्रवाह होने लगे तो पृथ्वी पर अनेक जलवायु एवं पारिस्थितिक परिवर्तन हो जाते हैं। ओजोन गैस की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह पृथ्वी को सुरक्षा प्रदान करती है अर्थात कवच का कार्य करती है तथा हानिकारक पराबैगनी किरणों को पृथ्वी पर आने हेतु बाधित करती है। किन्तु प्रदूषण में वृद्धि (विशेषकर

क्लोरो–फ़्लोरो) से ओजोन परत में छिद्र होने की संभावना व्यक्त की जाती है जो जीव जगत के लिए शोचनीय स्थिति होती है। वनस्पति एवं जीवों में ऊर्जा का रूपान्तरण, विविध प्रकार से होता है, जो भोज्य क्रम को संचालित करता है।

टिप्पणी

यह तथ्य सबसे पहले पारिस्थितिक विद्वान लिण्डमेन ने 1942 में प्रतिपादित किया। उनके अनुसार संपूर्ण पारिस्थितिक चक्र को ऊर्जा प्रवाह के दो तथ्यों (ऊर्जा भंडार का स्तर एवं उनके स्थानान्तरण की क्षमता) द्वारा समझा जा सकता है। इसके पश्चात अनेक विद्वानों– एच.टी. ओडम (1957), स्लोबोडकिन (1959, 1960, 1962), तील (1962), कोजलोवस्की (1988) आदि ने इस तथ्य पर अपने विचार प्रस्तुत किये। तीन पोषण स्तरों पर ऊर्जा प्रवाह क्रमशः कम होता जाता है।

सूर्य प्रकाश से लगभग 3000 किलो कैलोरी ऊर्जा किरणों से प्राप्त होती है उसका अनुमानतः आधा भाग ही पौधों द्वारा ग्रहण होता है तथा उसका एक प्रतिशत प्रथम पोषण पर पौधों द्वारा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित होता है।

यह प्रतिशत द्वितीय तथा तृतीय स्तर पर क्रमशः कम होता जाता है। सामान्यतया जब एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में ऊर्जा का प्रवाह होता है तो उसका अधिकांश भाग नष्ट हो जाता है। अतः अधिक ऊर्जा की प्राप्ति हेतु भोजन चक्र का छोटा होना अनिवार्य है।

पारिस्थितिकी तंत्र की उत्पादकता से तात्पर्य है – पोषण स्तर प्रथम में स्वपोषित पौधों द्वारा ऊर्जा उपयोग से पोषण प्राप्त करना। दूसरे शब्दों में, यह परावर्तित ऊर्जा जो प्रकाश संश्लेषण क्रिया से तथा अन्य रासायनिक क्रिया द्वारा संचित कर उत्पादकता के रूप में प्रयुक्त की जाती है, जैसा कि ओडम ने लिखा है–

'Primary Productivity of an Ecological System in the rate at which Padiant energy is stand by photo synthesis and chomosynthetic activity of radiant organism in the form organic substance which can be used as food materials.'

इस उत्पादकता के चार क्रमिक सोपान अग्रलिखित हैं–

- **सकल प्राथमिक उत्पादकता** : सकल प्राथमिक उत्पादकता से तात्पर्य है– पोषण स्तर प्रथम में स्वपोषित पौधों द्वारा रासायनिक ऊर्जा की मात्रा अर्थात यह प्रकाश संश्लेषण की कुल दर है जिसमें श्वसन में उपयुक्त जैविक पदार्थ भी सम्मिलित होते हैं।
- **वास्तविक प्राथमिक उत्पादकता** : इस उत्पादकता से आशय पोषण स्तर प्रथम में संचित या स्थिरीकृत ऊर्जा या जैविक पदार्थों की मात्रा से होता है।
- **सामुदायिक उत्पादकता** : इसमें जैविक पदार्थों के संचित करने की दर को सम्मिलित किया जाता है।
- **गौण उत्पादकता** : इसमें भिन्न उपभोक्ता स्तर पर ऊर्जा संचय की दर को गौण उत्पादकता के नाम से जाना जाता है।

ई.पी. ओडम ने वैश्विक स्तर पर प्राथमिक उत्पादकता के तीन स्तर क्रमशः उच्च उत्पादकता, मध्यम उत्पादकता एवं निम्न उत्पादकता के रूप में निर्धारित किये हैं–

- उच्च उत्पादकता प्रदेशों के अन्तर्गत उष्ण एवं शीतोष्ण आर्द्र वन, जलोढ़ मैदान, गहरी कृषि एवं छिछले जलीय क्षेत्रों को शामिल किया जाता है।

टिप्पणी

- मध्यम उत्पादकता क्षेत्रों में घास के मैदान, छिछली झीलें तथा विस्तृत कृषि क्षेत्र सम्मिलित हैं।
- निम्न पारिस्थितिकी उत्पादकता के प्रदेशों में हिमाच्छादित क्षेत्र, मरुस्थलीय प्रदेश तथा अगाध सागरीय क्षेत्रों को सम्मिलित किया जाता है। वास्तव में पारिस्थितिक तंत्र का कार्य सम्पादन ऊर्जा प्रवाह एवं उत्पादकता के सम्मिलित प्रक्रम द्वारा संपन्न होता है।

जीवित जीव विकिरणीय और निश्चित ऊर्जा के रूप में ऊर्जा का उपयोग करते हैं। विकिरणीय ऊर्जा विद्युत चुम्बकीय तरंगों के रूप में होती है, जैसे– प्रकाश। निश्चित ऊर्जा विभिन्न जैविक पदार्थों से बंधी रासायनिक ऊर्जा है जो उनकी ऊर्जा सामग्री को मुक्त करने के लिए टूट भी सकती है।

जैविक अणुओं का उत्पादन करने के लिए अजैविक पदार्थों का उपयोग करने वाली विकिरणीय ऊर्जा को निश्चित करने वाले जीवों को स्वपोषी कहा जाता है। जीव जो अजैव स्रोत से ऊर्जा प्राप्त नहीं कर सकते हैं लेकिन स्वपोषी जीवों द्वारा संश्लेषित ऊर्जा समृद्ध जैविक अणुओं पर निर्भर करते हैं, परपोषी कहलाते हैं। जो जीवित जीवों से ऊर्जा प्राप्त करते हैं उन्हें उपभोक्ता कहा जाता है और जो मृत जीवों से ऊर्जा प्राप्त करते हैं, अपघटन कहलाते हैं।

जब पौधों की हरी सतहों पर प्रकाश ऊर्जा संश्लेषित होती है, तो इसका एक बड़ा हिस्सा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है जो पौधों में विभिन्न कार्बनिक उत्पादों में संग्रहीत हो जाता है और पौधों के उत्पादों में गतिशील ऊर्जा में संचित रासायनिक ऊर्जा को परिवर्तित करता है, तो ऊर्जा में गिरावट गर्मी में इसके रूपान्तरण के माध्यम से होती है। जब प्रथम बार माध्यमिक उपभोक्ताओं के मांसाहारियों द्वारा स्वपोषी का सेवन किया जाता है तो इसमें और गिरावट आ जाती है। इसी प्रकार, जब प्राथमिक मांसाहारियों को शीर्ष मांसाहारियों द्वारा खाया जाता है, तो उसमें ऊर्जा कम हो जाती है।

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह

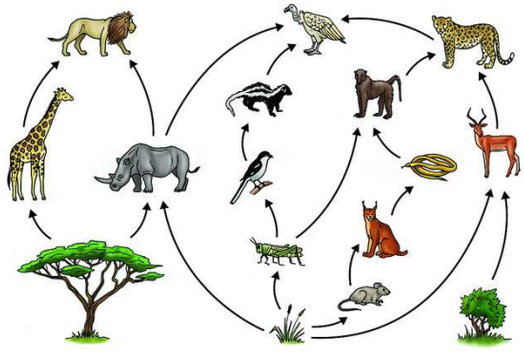

खाद्य शृंखला (Food Chain)

खाद्य शृंखला पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न जीवों की परस्पर भोज्य निर्भरता को प्रदर्शित करती है। किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र में कोई भी जीव सदैव भोजन के लिए किसी दूसरे जीव पर निर्भर होता है। भोजन के लिए समस्त जीव वनस्पतियों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर होते हैं। वनस्पतियाँ अपना भोजन प्रकाश संश्लेषण की क्रिया

द्वारा निर्मित करती हैं। इस भोज्य क्रम में प्रथम स्तर पर शाकाहारी जीव आते हैं जो कि पौधों पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर होते हैं। इसलिए पौधों को उत्पादक या स्वपोषी और जंतुओं को 'उपभोक्ता' की संज्ञा देते हैं।

टिप्पणी

सामान्यतः खाद्य शृंखला निम्न प्रकार प्रदर्शित की जाती है–

उत्पादक – शेर – मांसाहारी – हिरन – शाकाहारी – घास

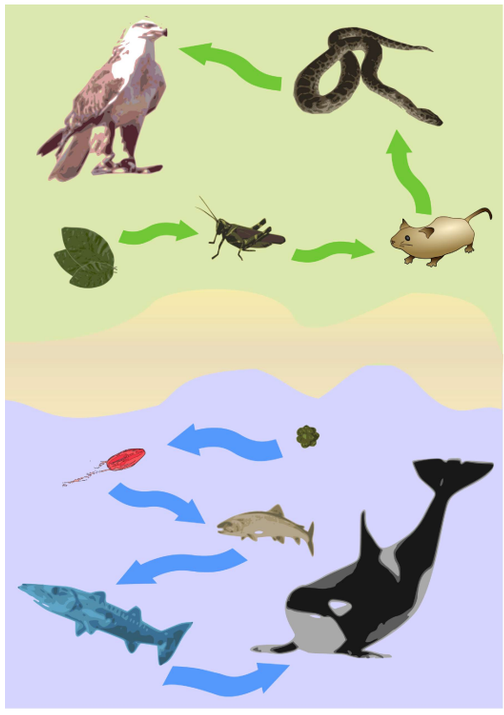

खाद्य शृंखला को प्रदर्शित करता एक चित्र

पारिस्थितिक तंत्र में मात्र पादप ही सौर ऊर्जा द्वारा उसे रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करने में सक्षम हैं। विभिन्न जैविक यौगिक (कार्बोहाइड्रेट, वसा और प्रोटीन) रासायनिक ऊर्जा युक्त होते हैं। चूंकि लगभग समस्त अन्य जीवित जीव अपनी ऊर्जा के लिए हरे पौधों पर निर्भर करते हैं, इसलिए सौर ऊर्जा हेतु किसी भी क्षेत्र में पौधों की दक्षता समुदाय में दीर्घकालीन ऊर्जा प्रवाह और जैविक गतिविधि की ऊपरी सीमा निर्धारित करती है।

हरे पौधों द्वारा निर्मित भोजन का उपयोग स्वयं तथा शाकाहारी जीवों द्वारा भी किया जाता है। शाकाहारी जीव कुछ मांसाहारी जानवरों के भोजन बन जाते हैं। इस प्रकार जीवन का एक रूप दूसरे रूप का समर्थन करता है। इस प्रकार एक उष्णकटिबंधीय स्तर से भोजन दूसरे पोषण स्तर तक पहुँच जाता है और इस प्रकार एक शृंखला स्थापित की जाती है, जो कि खाद्य शृंखला कहलाती है।

किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य शृंखला सीधे चलती है जिसमें हरे पौधे शाकाहारी द्वारा खाए जाते हैं। शाकाहारियों को मांसाहारियों द्वारा खाया जाता है और मांसाहारियों को शीर्ष मांसाहारियों द्वारा अपना भोजन बनाया जाता है। मनुष्य अनेक खाद्य शृंखलाओं के स्थलीय संपर्क स्थापित करते हैं।

टिप्पणी

खाद्य शृंखला दो प्रकार की होती है–

ग्रेजिंग (चारण) खाद्य शृंखला

ग्रेजिंग या चारण खाद्य शृंखला हरे पौधों से आरम्भ होती है और स्वपोषी से यह प्राथमिक मांसाहारियों (माध्यमिक उपभोक्ताओं) और फिर माध्यमिक मांसाहारियों (तृतीयक उपभोक्ताओं) तक और उसके पश्चात् शाकाहारी (प्राथमिक उपभोक्ताओं) तक जाती है। इस प्रकार की खाद्य शृंखलाएं वाले पारिस्थितिकी तंत्र, सौर ऊर्जा के अन्तर्वाह (Influx) पर निर्भर हैं। प्रकृति में अधिकांशतः इसी प्रकार की खाद्य शृंखलाएँ मिलती हैं। ऊर्जा की दृष्टि से ये शृंखलाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं। जलाशयों में पाई जाने वाली पादपप्लवक, जंतुप्लवक–मछली अनुक्रम शृंखला व घास स्थल में पाए जाने वाली घासें–खरगोश लोमड़ी अनुक्रम, चारण खाद्य शृंखला के उपयुक्त उदाहरण हैं।

चारण खाद्य शृंखला को पुनः दो भागों में बाँटा गया है–

- परभक्षी शृंखला (Predator Chain): यह शृंखला पादपों से प्रारम्भ होकर छोटे जंतुओं से होती हुई बड़े जंतुओं में जाती है।
- परजीवी शृंखला (Parasitic Chain): यह शृंखला पादपों से प्रारम्भ होकर बड़े जीवों से होती हुई छोटे जीवों में जाती है।

अपरद खाद्य शृंखला (Detritius Food Chain)

इस प्रकार की खाद्य शृंखला, मृत कार्बनिक पदार्थों से प्रारम्भ होकर इन पदार्थों का खाद्य रूप में उपभोग करने वाले सूक्ष्मजीवियों (अपरदहारी) से होकर सूक्ष्मजीवियों के परभक्षकों (Predators) तक जाती है। ये पारितंत्र दूसरे पारितंत्र से आने वाले कार्बनिक पदार्थों पर निर्भर होते हैं। शीतोष्ण वन में एकत्रित करकट में पायी जाने वाली खाद्य शृंखला इसका एक उत्तम उदाहरण है।

अपरदक सूक्ष्मजीव होते हैं जो कि मृत जीवों (वनस्पतियों व जंतुओं) को उनके पार्थिव अवयवों में तोड़ देते हैं। अपरद की क्रिया मृत्यु के पश्चात आरम्भ हो जाती है जिसे सामान्यतः सड़ने के तौर पर देखा जाता है।

प्रकृति में दोनों प्रकार की भोजन शृंखलाएँ निरन्तर चलती रहती हैं, परन्तु अपरद भोजन शृंखला घासस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्रों में अधिक महत्वपूर्ण होती है तथा जनीय या समुद्री तंत्रों में चारण खाद्य शृंखला का अधिक योगदान होता है।

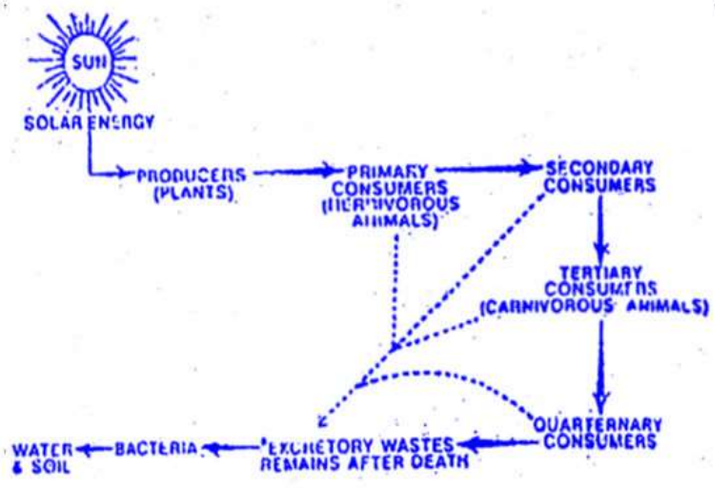

टिप्पणी

खाद्य जाल (Food Web)

प्राकृतिक पारिस्थितिकियों में पारितंत्र (Ecosystem) में पायी जाने वाली खाद्य शृंखलाएँ एक–दूसरे से पृथक एकल रूप में प्रचलित नहीं होती हैं, वरन् ये परस्पर सम्बद्ध (interconnected) होकर अन्तर्ग्रथित प्रतिरूप बनाती हैं, जिसे खाद्य जाल (Food Web) कहते हैं। खाद्य शृंखलाएँ विभिन्न पोषरीतियों में विभिन्न जीवन द्वारा परस्पर सम्बद्ध रहती है।

उदाहरणार्थ, घास स्थल के चारण खाद्य शृंखला में खरगोश की अनुपस्थिति में चूहे भी घास का चारण कर सकते हैं। चूहे को साँप व साँप को बाज भक्षित कर सकता है। इस प्रकार खाद्य शृंखला की प्रत्येक पोषरीति में विकल्पी जीव उपलब्ध रहते हैं जो कि सम्मिलित रूप में अन्तर्ग्रहित प्रतिरूप खाद्य जाल बनाते हैं।

घास स्थल पर अनेक खाद्य शृंखलाएँ एक–दूसरे के साथ परस्पर सम्बन्ध प्रदर्शित करती हैं और जाल का निर्माण कर लेती हैं। इस प्रकार अनेक खाद्य शृंखलाओं के एक साथ जुड़े रहकर कार्य करते रहने के कारण खाद्य जाल बन जाता है। एक समुदाय में अनेक खाद्य शृंखलाएँ जुड़ी रहती हैं और एक खाद्य जाल बनाती हैं।

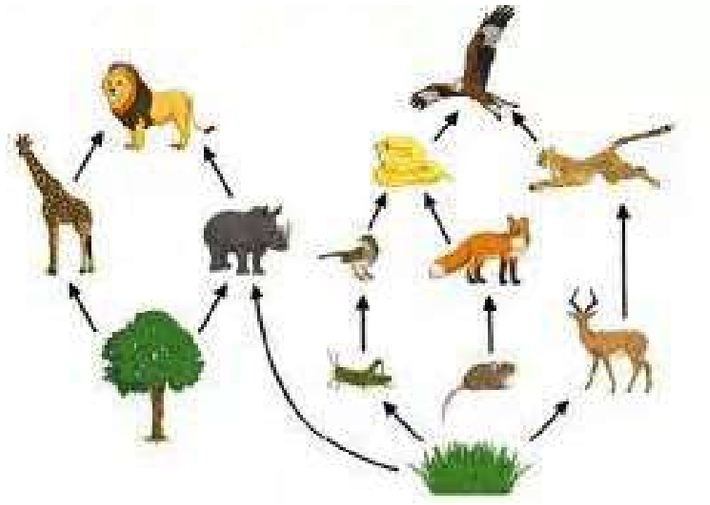

खाद्य जाल प्रदर्शित करता चित्र

घास स्थल के खाद्य जाल के चित्र में निम्न अनुक्रम में पाँच शृंखलाएँ प्रदर्शित की गई हैं–

- घास–टिड्डा–बाज
- घास–टिड्डा–छिपकली–बाज
- घास–खरगोश–बाज या गिद्ध या लोमड़ी या मनुष्य
- घास–चूहा–बाज
- घास–चूहा–सर्प–बाज।

बाज के अतिरिक्त अंतिम पोषरीति में गिद्ध, लोमड़ी या मानव भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में यह खाद्य जाल और भी जटिल हो जाता है।

टिप्पणी

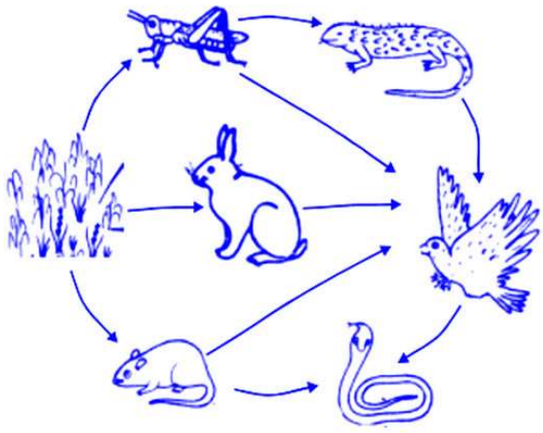

पारितंत्र के स्थायित्व को बनाये रखने में खाद्य जालों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उपरोक्त घासस्थल खाद्य जाल में खरगोश की आबादी घट जाने पर स्वाभाविक है कि अन्य शाकाहारी चूहों की आबादी में वृद्धि हो जाएगी। परिणामतः वे मांसाहारी जो खरगोश के मांस पर निर्भर होते हैं, उनकी आबादी भी घट जाएगी। इस प्रकार विभिन्न पोषस्तरों पर विकल्पी उपभोक्ताओं की उपस्थिति पारितंत्र के स्थायित्व में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त तंत्र में पाए जाने वाले समस्त जीवों के अस्तित्व के लिए पारितंत्र का संतुलित बने रहना अति आवश्यक है।

खाद्य जाल की जटिलता पारितंत्र में उपस्थित विविधता पर निर्भर होती है। खाद्य जाल की जटिलता दो गुणों पर निर्भर करती है–

- **खाद्य शृंखला की लंबाई** : पारितंत्र में जीवों की विविधता उनके खाद्य स्वभाव पर आधारित होती है। जीवों के खाद्य स्वभाव में जितनी अधिक विविधता होती है, खाद्य शृंखला उतनी ही अधिक लम्बी होती है।
- **शृंखला के विभिन्न पोषस्तरों पर उपभोक्ता विकल्पों की उपस्थिति** : किसी पोष स्तर पर जितने अधिक विकल्प होते हैं, उसका खाद्य जाल उतना ही अधिक अन्तर्ग्रथित होता है।

गहरे, विशाल सागरों में जीवों की अधिक विविधता के कारण उस पारितंत्र का खाद्य–जाल भी अधिक जटिल होता है।

Trophic Level (पौष्टिकता स्तर)

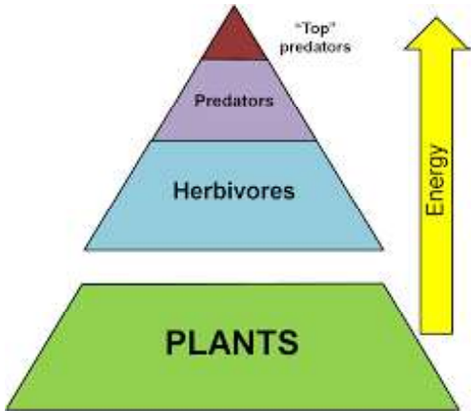

टिप्पणी

पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादकों और उपभोक्ताओं को अनेक खाद्य समूहों में व्यवस्थित किया जा सकता है। जिन्हें प्रत्येक पोषण स्तर (Trophic Level) के रूप में जाना जाता है। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में, उत्पादक प्रथम पोषण स्तर का प्रतिनिधित्व करता है, शाकाहारी दूसरे पोषण स्तर पर प्राथमिक मांसाहार तृतीय ट्रोपिक स्तर को और शीर्ष मांसाहार अंतिम स्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं।

1.3.2 पारिस्थितिकीय पिरामिड

एक पारिस्थितिक तंत्र की उष्ण कटिबंधीय संरचना को पारिस्थितिकीय पिरामिड के माध्यम से संकेतित किया जा सकता है। खाद्य श्रृंखला में प्रत्येक चरण में संभावित ऊर्जा का एक बड़ा हिस्सा भाप के रूप में समाप्त हो जाता है। परिणामतः प्रत्येक पोषण स्तर में जीव वास्तव में प्राप्त होने वाले अगले पोषण स्तर तक कम ऊर्जा से गुजरते हैं।

खाद्य श्रृंखला जितनी लंबी होती है अंतिम सदस्यों के लिए उतनी ही कम ऊर्जा उपलब्ध होती है। खाद्य श्रृंखला में उपलब्ध ऊर्जा के इस निस्तारण के कारण एक पिरामिड का निर्माण होता है, जो कि पारिस्थितिकीय पिरामिड कहलाता है।

यह एक उत्पादक उपभोक्ता व्यवस्था है जिसमें खाद्य स्तर को पोषी स्तर कहते हैं। पोषी संरचना का चित्रालेख पारिस्थितिकी पिरामिड कहलाता हे।

उत्पादक और उपभोक्ताओं की संख्या, जीवभार और ऊर्जा के मध्य परस्पर सम्बन्धों को पिरामिड द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

इस प्रकार का आलेखी निरूपण सर्वप्रथम एल्टन ने 1927 में प्रदर्शित किया। इन आलेखों में सबसे निचला पोषी स्तर उत्पादक और सबसे ऊपर का पोषी स्तर मांसाहारियों का होता है।

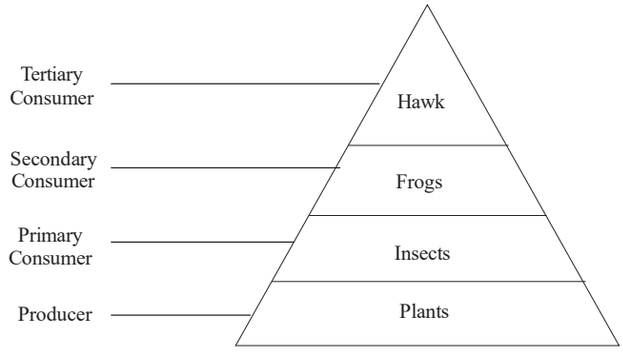

खाद्य श्रृंखला में क्रमिक उच्च पोषण स्तरों में प्रजातियों की संख्या का सकल जैवभार तथा ऊर्जा की सुलभता एवं प्राप्यता में इस प्रकार से ह्रास होता है कि उनका आकार पिरामिड जैसा हो जाता है। इसे पारिस्थितिकीय पिरामिड कहते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं–

- संख्या पिरामिड (Number Pyramid)
- जैवभार पिरामिड (Biomass Pyramid)
- ऊर्जा पिरामिड (Energy Pyramid)

टिप्पणी

• **संख्या पिरामिड (Number Pyramid)**

इसमें प्राथमिक उत्पादकों और विभिन्न स्तरों के उपभोक्ताओं की संख्याओं के मध्य का सम्बन्ध दर्शाया जाता है ये दो प्रकार के होते हैं–

(i) सीधा संख्या पिरामिड (Upward Number Pyramid)

(ii) उल्टा संख्या पिरामिड (Inverted Number Pyramid)

(i) सीधा संख्या पिरामिड (Upward Number Pyramid): इस पिरामिड में बढ़ते पोषण स्तरों के साथ जीवों की संख्या में अत्यधिक कमी होती जाती है। संख्या पिरामिड के इस प्रकार में पिरामिड आधार पर अत्यधिक चौड़ा तथा शीर्ष पर अत्यधिक नुकीला हो जाता है। घास के मैदान व तालाब पर इस प्रकार का पिरामिड देखा जा सकता है।

(ii) उल्टा संख्या पिरामिड (Inverted Number Pyramid): इस पिरामिड में प्रत्येक पोषण स्तर पर संख्या में वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार का पिरामिड वनों में पाया जाता है जहाँ वृक्षों का आकार बड़ा होने पर उन पर निर्भर जंतुओं की संख्या अधिक होती है। यह पिरामिड आधार पर नुकीला तथा शीर्ष पर अत्यधिक चौड़ा होता है।

• **जैवभार पिरामिड (Biomass Pyramid)**

पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य श्रृंखला तथा खाद्य जाल के समस्त पोषण स्तरों पर भंडारित समस्त जीवों के सकल भार के प्रदर्शन तथा अध्ययन के लिए जैवभार पिरामिड का उपयोग किया जाता है। इसके अंतर्गत संख्या के स्थान पर उसके सकल भार को सम्मिलित किया जाता है। जैवभार पिरामिड को निर्धारित करने के लिए प्रायः प्रत्येक पोषण स्तर पर उपस्थित समस्त जीवों को एकत्रित कर उनके शुष्क भार का मापन किया जाता है। इस विधि द्वारा जीवों के आकार के अंतर की समस्या दूर हो जाती है क्योंकि इसमें पोषण स्तर के समस्त प्रकार के जीवों का मापन किया जाता है। जैवभार को ग्रा./मी. में मापा जाता है।

जैवभार पिरामिड दो प्रकार के होते हैं–

(i) सीधा जैवभार पिरामिड (Upward Biomass Pyramid)

(ii) उल्टा जैवभार पिरामिड (Inverted Biomass Pyramid)

(i) सीधा जैवभार पिरामिड (Upward Biomass Pyramid)

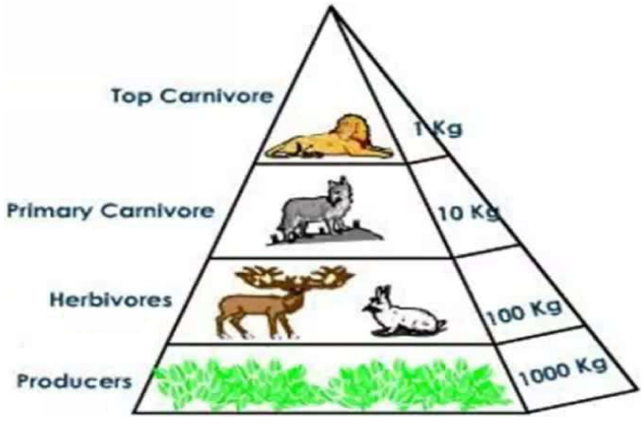

स्थल पर पाए जाने वाले अधिकतम पारितंत्रों के लिए जैवभार के पिरामिड में एक बड़ा आधार प्राथमिक उत्पादकों से बनता है तथा शीर्ष पर एक लघु पोषण स्तर होता है।

टिप्पणी

(ii) उल्टा जैवभार पिरामिड (Inverted Biomass Pyramid)

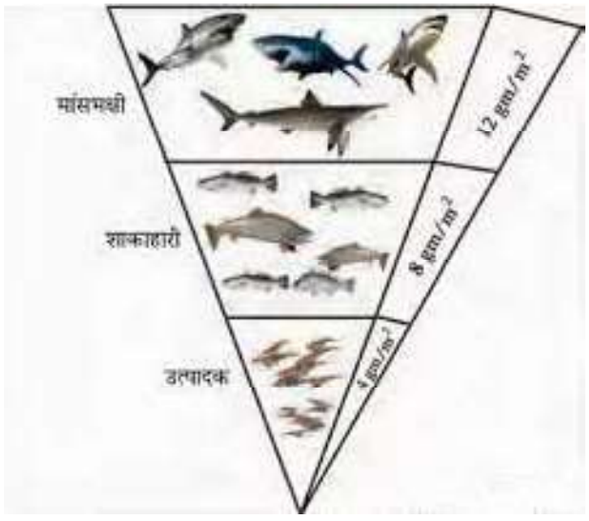

जलीय पारिस्थितिक तंत्र में जैवभार का पिरामिड उल्टा होता है, क्योंकि जलीय पारितंत्र के उत्पादक सूक्ष्म पादपप्लवक होते हैं जो तीव्र गति से वृद्धि करते हुए जनन करते हैं। इसमें जैवभार के पिरामिड का आधार छोटा होता है और किसी भी समय उपभोक्ता का जैवभार प्राथमिक उत्पादक के जैवभार से अधिक होगा।

- **ऊर्जा पिरामिड (Energy Pyramid)**

किसी पारितंत्र के विभिन्न पोषण स्तरों की कार्यात्मक भूमिका की तुलना करने के लिए ऊर्जा पिरामिड ही सर्वाधिक उत्कृष्ट प्रदर्शन होता है क्योंकि इसमें व्यष्टियों के आकार और जैव संहति की भिन्नताओं पर आवश्यकता से अधिक महत्व देकर उसे विकृत नहीं किया जाता है।

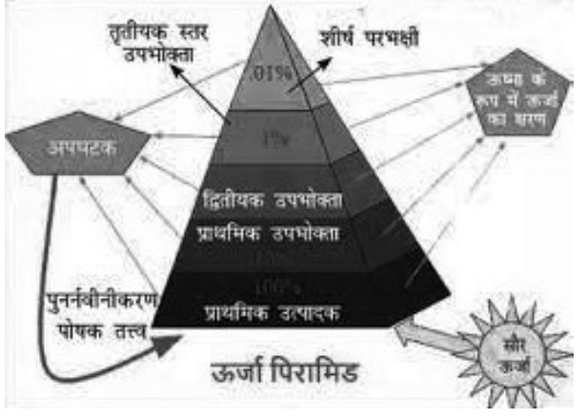

ऊर्जा पिरामिड ऊष्मागतिकों के नियमों का पालन करता है। इसमें एक स्तर से दूसरे पोषण स्तर पर स्थानांतरित होने वाली ऊर्जा को भी दर्शाया जाता है अतः ऊर्जा पिरामिड सदैव सीधा होता है।

टिप्पणी

दस प्रतिशत नियम (Ten Percent Law)

1942 में लिंडेमान ने इस नियम को प्रतिपादित किया। इस नियम के अनुसार जब हम एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर की ओर अग्रसर होते हैं, तो ऊर्जा की मात्रा में धीरे–धीरे कमी होती जाती है।

वास्तव में, एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में मात्र 10 प्रतिशत ही ऊर्जा स्थानान्तरित होती है। इसी कारण ऊर्जा का प्रवाह एक दिशा में होता है।

1.3.3 पारिस्थितिक तंत्र में जैव भू–रसायन प्रवाह

पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न पदार्थ, गैस व ऊर्जा एक चक्र के रूप में गतिमान रहते हुए इस संपूर्ण तंत्र को परिचालित करते हैं। अजैविक तत्वों का जैविक प्रावस्था (biotic phase) में परिवर्तन और उन जैविकों के अजैविक प्रावस्था (inorganic phase) में पुनरागमन का प्रारूप या चक्र जैव भू–रसायन प्रवाह में सम्मिलित होता है। समस्त प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र अपने अंतर्गत सम्मिलित पोषक रसायनों को जैविक अवयवों में संग्रहित करके उन्हें सुरक्षित रखते हैं किन्तु प्राणी या पादप के विनाश के पश्चात उनके वियोजित होने अथवा सड़ने पर पोषक तत्व मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार रासायनिक तत्वों का निर्माण, उपयोग विघटन, विभाजन तथा मुक्त होना एक चक्रीय रूप में अनेक चरणों में पूर्ण होता है। भोजन चक्र, जल चक्र, ऑक्सीजन चक्र, कार्बन चक्र, फास्फोरस चक्र एवं विभिन्न खनिज लवणों के चक्र निरन्तर गतिमान रहते हुए एक ओर पर्यावरण संतुलन बनाये रखते हैं तो दूसरी ओर वनस्पतियों, जीव–जन्तुओं व मानव की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं। प्रत्येक चक्र में उत्पादन और अपघटन (तत्वों के) चरणों की एक शृंखला सम्मिलित होती है।

जीवों को अपनी जैवीय क्रियाओं को क्रियाशील बनाये रखने हेतु तथा जीव द्रव्य निर्माण हेतु अनेक खनिज लवणों की आवश्यकता होती है जैसे–फास्फोरस (P), सल्फर (S), पोटैशियम (K), मैग्नीशियम (Mg), कैल्शियम (Ca), ताँबा (Cu), जिंक या जस्ता (Tn), बोरोन (B), क्लोरीन (CI), ब्रोमीन (Br), आयोडीन (I), क्रोमियम (Ca) आदि।

इन समस्त तत्वों का चक्रीकरण होना नितान्त आवश्यक होता है। कुछ चक्र अत्यधिक जटिल होते हैं, जैसे– नाइट्रोजन तथा कुछ चक्र साधारण होते हैं जैसे– फास्फोरस। कुछ प्रमुख तत्वों का चक्रीकरण निम्नानुसार होता है–

टिप्पणी

जलीय चक्रीकरण : (Hydrolosical) जल का हाइड्रोलॉजिकल चक्र उस तरीके का वर्णन करता है जिसमें पानी (हाइड्रोजन डाई ऑक्साइड H_2O) को प्रसारित किया जाता है और संपूर्ण पृथ्वी की व्यवस्था का पुनर्नवीनीकरण किया जाता है। समस्त जीवित जगत को जीवित रहने तथा विकसित होने के लिए जल की आवश्यकता होती है, जिसके कारण यह पृथ्वी पर उपस्थित समस्त पदार्थों में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। जटिल जीवों में इसका उपयोग विटामिन व खनिज पोषक तत्वों को घुलनशील बनाने के लिए किया जाता है।

जलचक्र पृथ्वी पर उपलब्ध जल के एक रूप से दूसरे में परिवर्तित होने और एक भण्डार से दूसरे भण्डार या एक स्थान से दूसरे स्थान पर गति करने की चक्रीय प्रक्रिया है जिसमें कुल जल की मात्रा का क्षय नहीं होता, मात्र रूप परिवर्तन और स्थान परिवर्तित होता है। यह प्रकृति में जल संरक्षण के सिद्धांत की व्याख्या है।

इसके मुख्य चक्र में सर्वाधिक उपयोग में लाया जाने वाला जल रूप द्रव है जो वाष्प बनकर वायुमण्डल में जाता है फिर, संघनित होकर बादल बनता है और पुनः बादल बनकर ठोस (हिमपात) या द्रव रूप में वर्षा के रूप में बरसता है। हिम पिघलकर पुनः द्रव में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार जल की कुल मात्रा स्थिर रहती है।

यह पृथ्वी के संपूर्ण पर्यावरण रूपी पारिस्थितिक तंत्र में एक भूजैव रसायन चक्र का उदाहरण है। उन समस्त घटनाओं का एक पूर्ण चक्र है जिसमें होकर पानी, वायुमंडलीय जलवाष्प के रूप में आरम्भ होकर द्रव या ठोस रूप में बरसता है और उसके पश्चात वह भू–पृष्ठ की ऊपरी या भीतरी सतह पर बहने लगता है एवं अन्ततः वाष्पन तथा वाष्पोत्सर्जन द्वारा पुनः वायुमंडलीय जल वाष्प के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

जल के समुद्र से वायुमण्डल में तथा पुनः भूमि पर अनेक अवस्थाओं (अवक्षेपण, अंतरोधन अपवाह, अन्तःस्पन्दन, अन्तःस्रवण भौमजल संचयन वाष्पन तथा वाष्पोत्सर्जन) के पश्चात् पुनः समुद्र में वापिस जाने का चक्र।

जलीय परिसंचरण द्वारा निर्मित एक चक्र जिसके अंतर्गत जल महासागर से वायुमंडल में, वायुमंडल से भूमि पर और भूमि से पुनः महासागर में पहुँच जाता है। महासागर से वाष्पीकरण द्वारा जलवाष्प के रूप में जल वायुमंडल में ऊपर उठता है जहाँ जल संघनन से बादल बनते हैं तथा वर्षण द्वारा जलवर्षा या हिमवर्षा के रूप में जल नीचे भूतल पर आता है और नदियों में होता हुआ पुनः महासागर में मिल जाता है। इस प्रकार एक जलचक्र पूर्ण होता है।

सागर से वायुमण्डल तथा थल से होता हुआ वापस सागर तक जाने वाला जल का परिसंचरण चक्र। इस निरन्तर चलते रहने वाले चक्र में जल अस्थायी रूप से जीवों तथा ताजे पानी, बर्फीली जमावटों अथवा भूमिगत भंडारों के रूप में जमा होता रहता है।

सौर ऊर्जा और पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण इसके संचालक ऊर्जा स्रोत हैं।

टिप्पणी

जल चक्र या हाइड्रोलोजिकल चक्र

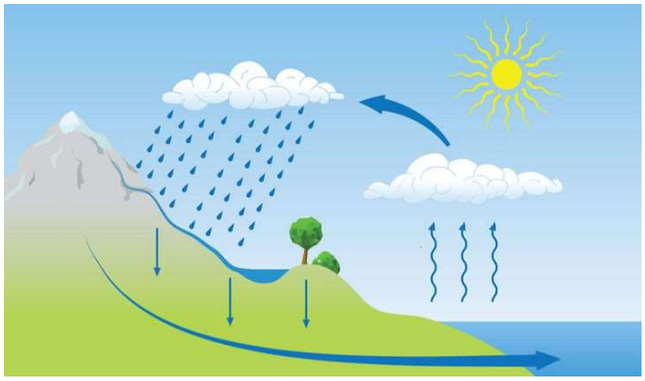

जलचक्र के प्रमुख घटक इस प्रकार हैं–

- **भाप** : पानी की गैसीय अवस्था या जलवाष्प भाप कहलाती है। शुष्क भाप अदृश्य होती है किंतु जल की छोटी–छोटी बूंदें मिल जाने पर भाप का रंग सफेद होता है। भाप में जल की बूंदें उपस्थित होने पर इसे 'आर्द्र भाप' कहते हैं और जल की बूंदों का अभाव होने पर इसे 'शुष्क भाप' कहते हैं।

- **स्वेद** : स्वेद पौधों के पत्तों द्वारा जल का वाष्पीकरण है। पादपों द्वारा मात्र 2% जल का सेवन प्रकाश संश्लेषण के लिए उपयोग में लाया जाता है। शेष जल वाष्प बनकर वाष्पीकृत हो जाता है।

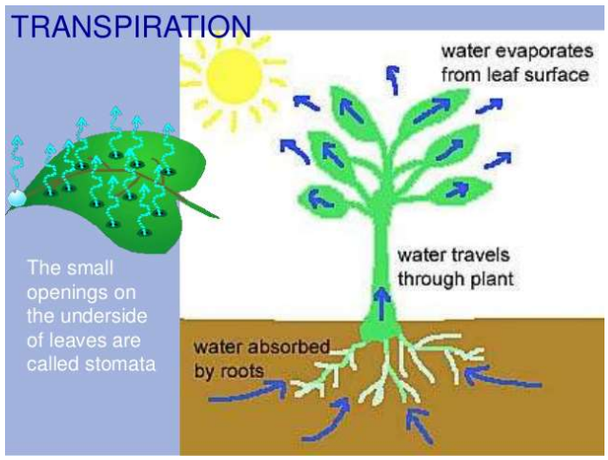

- **संघनन** : वाष्पीकृत जल वातावरण में ऊपर बढ़ने के लिए ठंडा हो जाता है। ठंडा वाष्प पुनः तरल या बर्फ बन जाता है और पर्यावरण में उपस्थित धूलकणों

टिप्पणी

पर बैठ जाता है, जोकि संघनन कहलाता है। इसी प्रकार बादलों का निर्माण होता है।

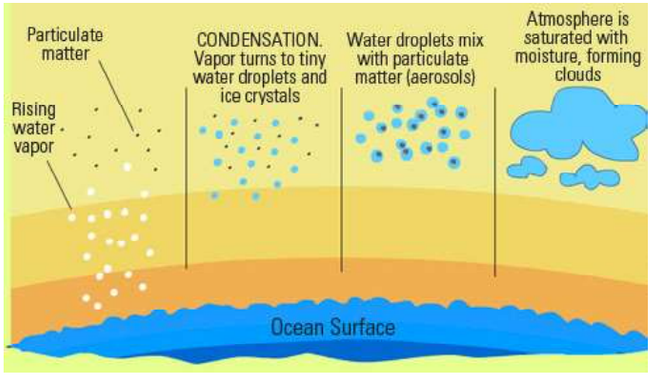

- **अवक्षेपण** : अवक्षेपण के अन्तर्गत वर्षा, ओलों के साथ वर्षा, ओलावृष्टि तथा हिमपात सम्मिलित हैं।

- **जल प्रवाह** : यह जल चक्र का वह भाग है जो भूजल में अवशोषित होने या वाष्पीकरण होने की बजाय भूमि पर जल के रूप में बढ़ता है।

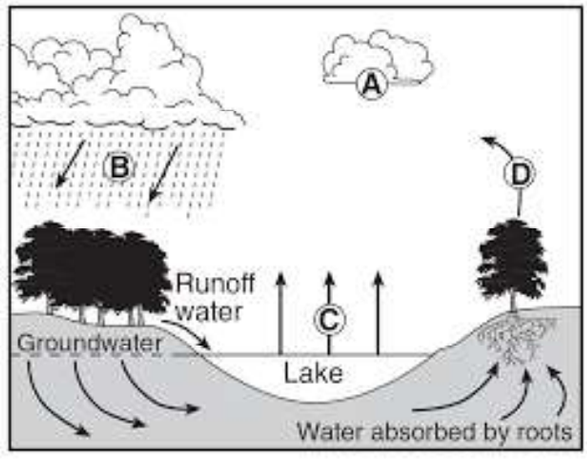

- **रिसाव** : मिट्टी और चट्टानों में दरारें, जोड़ों और छिद्रों के माध्यम से पानी का जल स्तर तक पहुँच जाना और भूजल बन जाने को रिसाव कहते हैं।

टिप्पणी

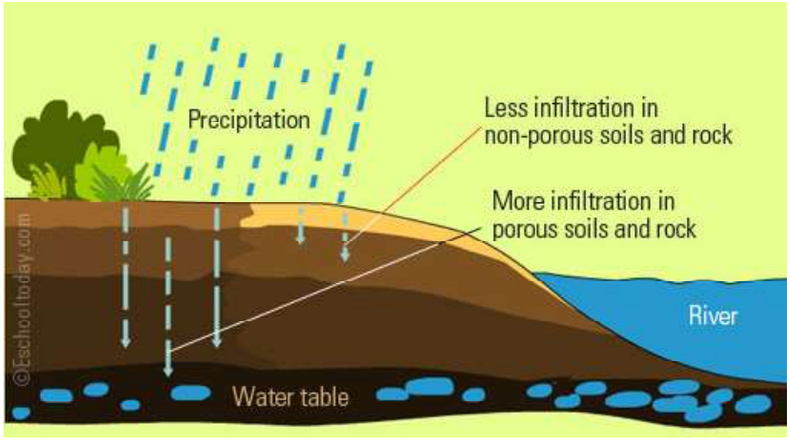

अंततः जल चक्र का तात्पर्य पृथ्वी के स्थलमंडल, जलमंडल तथा वायुमंडल के मध्य होने वाले जल के चक्रीय प्रवाह से है। जल एक चक्र के रूप में महासागर से धरातल पर और धरातल से महासागर तक पहुँचता है। इसमें जल के विभिन्न स्रोतों से जीवों के मध्य जल का आदान–प्रदान भी सम्मिलित है। इसमें वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, संघनन, वर्षण, अंतःस्पंदन, अपवाह तथा संग्रहण की प्रक्रिया शामिल है।

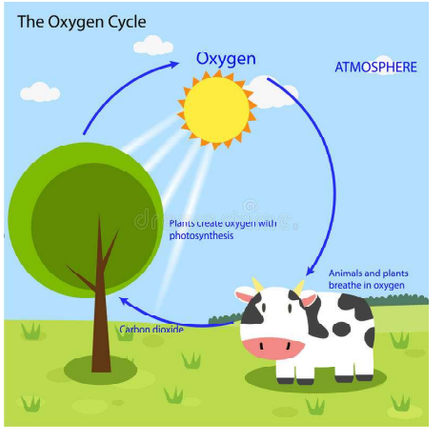

ऑक्सीजन चक्र (Oxygen cycle): श्वसन क्रिया के अन्तर्गत पौधों और जंतुओं के द्वारा ऑक्सीजन वायुमण्डल से ग्रहण किया जाता है। पौधे प्रकाश–संश्लेषण की प्रक्रिया के दौरान वातावरण में ऑक्सीजन छोड़ते हैं। यह ऑक्सीजन चक्र कार्बन चक्र से सम्बन्धित है। वनों की कटाई से हमारे वातावरण में ऑक्सीजन का स्तर तीव्रता से घट रहा है।

ऑक्सीजन चक्र एक जैव रासायनिक चक्र है जो इसके तीन मुख्य भंडारणों में ऑक्सीजन की गति की व्याख्या करता है–

- वातावरण (वायु), जीवमंडल में जैविक पदार्थों की कुल मात्रा
- स्थल मंडल – पृथ्वी का आवरण
- जल मंडल – जलमंडल में ऑक्सीजन चक्र की विफलता के परिणामस्वरूप हाइपोक्सिक मंडल (Hypoxic atmosphere) का विकास होता है। ऑक्सीजन चक्र के संचालन का प्रमुख कारण प्रकाश संश्लेषण है जो पृथ्वी के आधुनिक वातावरण तथा पृथ्वी पर जीवन के लिए उत्तरदायी है।

हमारे वायुमंडल में लगभग 21% ऑक्सीजन है और यह नाइट्रोजन के पश्चात् दूसरी सर्वाधिक प्रचुर मात्रा में पाई जाने वाली गैस है। श्वसन के अतिरिक्त दहन, सड़न तथा ऑक्सीकरण की प्रक्रिया के दौरान भी ऑक्सीजन का उपयोग किया जाता है।

टिप्पणी

वायुमंडल, जीवमंडल तथा पृथ्वी की परत– ये तीन ऐसी मुख्य प्रवाह प्रणालियां हैं जिनके माध्यम से ऑक्सीजन का संचलन होता है। इसलिए वायुमंडल में ऑक्सीजन की उपस्थिति के लिए, इसे प्रकृति के विभिन्न रूपों के माध्यम से प्रसारित करना होता है, जिसे अनिवार्य रूप से ऑक्सीजन चक्र कहा जाता है।

कार्बन चक्र (Carbon Cycle): कार्बन चक्र जैव भू–रासायनिक चक्र है जिसके द्वारा कार्बन का जीवमंडल, मृदामंडल, भूमंडल, जलमंडल और पृथ्वी के वायुमण्डल के साथ विनिमय होता है। यह पृथ्वी के सबसे महत्वपूर्ण चक्रों में से एक है और जीवमंडल तथा उसके समस्त जीवों के साथ कार्बन के पुनर्नवीनीकरण और पुनरुपयोग को अनुमत करता है।

कार्बन चक्र की खोज प्रारंभिक रूप से जोसेफ प्रिस्टली और एंटोनी लावाइसियर ने की तथा हमफ्री डेवी ने इसे प्रतिपादित किया। सामान्यतः इसे विनिमय मार्गों द्वारा जुड़े इन प्रमुख कार्बन भंडार के रूप में माना गया है–

- वायु मंडल
- स्थलीय जीवमंडल, इसे सामान्यतः ताजे जल प्रणालियों और मृदा कार्बन जैसे निर्जीव कार्बनिक पदार्थों को सम्मिलित करते हुए वर्णित किया गया है।
- समुद्र, जिसमें द्रवीभूत अकार्बनिक कार्बन और सजीव व निर्जीव समुद्री जीव समूह सम्मिलित हैं।
- जीवाश्म ईंधन
- पृथ्वी का आभ्येतर, ज्वालामुखियों और भू–ऊष्मीय प्रणालियों द्वारा भूमि के प्रावरण और भूपटल से कार्बन वायुमण्डल और जलमंडल में छोड़ा जाता है।

कार्बन के वार्षिक संचलन, भंडारों के मध्य कार्बन विनिमय, विभिन्न रासायनिक, भौतिक भूवैज्ञानिक और जैविक प्रक्रियाओं के कारण से होते हैं। पृथ्वी की सतह के निकट समुद्र के पास कार्बन का सबसे बड़ा सक्रिय केन्द्र है। लेकिन इस केंद्र का गहरा सागर वाला अंश वायुमंडल के साथ तेजी से विनिमय नहीं करता है।

समस्त जीवों के कार्बन का स्रोत वायुमण्डल है। यह कार्बन–डाई–ऑक्साइड के रूप में हरे पौधों, बैक्टीरिया एवं शैवालों द्वारा ग्रहण किया जाता है तथा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के परिणामस्वरूप कार्बोहाइड्रेट के रूप में शरीर में संचित हो जाता है। यह वायुमण्डल से हरे पौधों (उत्पादक) फिर जीव–जंतुओं (उपभोक्ताओं) तथा अंत में सूक्ष्म जीवाणुओं (अपघटकों) से पुनः वायुमण्डल में पहुँच जाता है।

जल में भी कार्बन–डाई–ऑक्साइड चूने के जमाव के रूप में है तथा हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा इसे कार्बनिक भोजन तत्वों में परिवर्तित कर देते हैं। पौधे जानवरों द्वारा खाये जाते हैं और पौधों के चट्टानों में दबने से कोयला बनता है जिसके अपक्षय से कार्बन–डाई–ऑक्साइड पुनः वायुमण्डल में पहुँचती है। श्वसन की प्रक्रिया से भी वायुमण्डल में यह गैस पहुँचती है। जल में मिश्रित कार्बन–डाई–ऑक्साइड जटिल प्रक्रिया से कार्बोनेट बनाती है अर्थात् यह चक्र निरन्तर चलता रहता है।

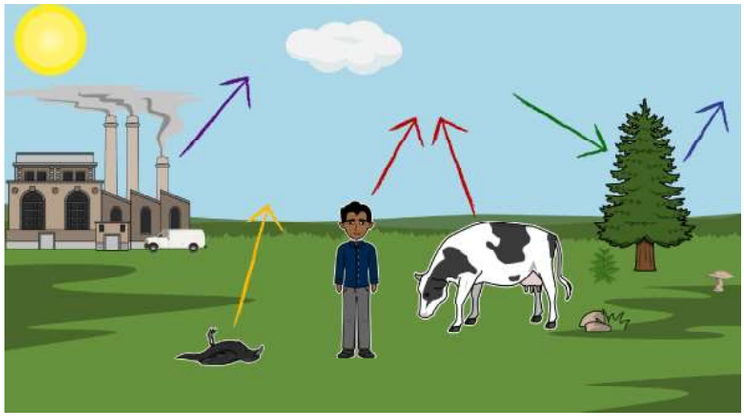

टिप्पणी

कार्बन चक्र

नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen Cycle): नाइट्रोजन प्रत्येक जीव का एक आवश्यक तत्व है तथा वायुमंडल का 79 प्रतिशत इसी गैस का होता है। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि नाइट्रोजन प्रत्यक्ष वायुमण्डल से ग्रहण नहीं किया जाता। वायुमण्डल की नाइट्रोजन (N_2) का प्रत्यक्ष उपभोग कुछ नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु ही कर पाते हैं। पौधों के नाइट्रोजन का प्रमुख स्रोत मृदा में उपस्थित नाइट्रेट होते हैं।

मृदा में उपस्थित नाइट्रेट के ये यौगिक पोषक के रूप में पौधों की जड़ों द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं, जहाँ अंत में अमीनो अम्ल तथा पादप प्रोटीन्स की रचना होती है जिन्हें खाने से यह जंतु प्रोटीन में परिवर्तित हो जाती है। तत्पश्चात ये नाइट्रोजन अपशिष्टों के रूप में उत्सर्जन के पश्चात् मृदा में पुनः मिश्रित हो जाते हैं। बिजली चमकने से भी वायुमण्डलीय नाइट्रोजन यौगिकीकरण होता है। मानव द्वारा उर्वरकों के निर्माण हेतु कृत्रिम विधियों से नाइट्रोजन यौगिकीकरण किया जाता है।

पौधों द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा विभिन्न यौगिकों में परिवर्तित कर ग्रहण किया जाता है। जिससे विभिन्न कार्बनिक यौगिकों का निर्माण होता है। कुछ सूक्ष्म जीव वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं। इस प्रकार स्थिरीकृत नाइट्रोजन विभिन्न प्रतिक्रियाओं द्वारा पुनः वातावरण में अन्य जीवों के उपयोग हेतु मुक्त हो जाती है। यह संपूर्ण प्रक्रिया नाइट्रोजन चक्र कहलाती है। नाइट्रोजन चक्र निम्न चरणों में पूर्ण होता है–

- **नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen Fixation)**

वायुमण्डलीय नाइट्रोजन मुख्य रूप से एक निष्क्रिय रूप (N_2) में होता है जो कुछ जीवों द्वारा ही उपयोग में लाया जाता है, इसलिए इसे नाइट्रोजन निर्धारण नामक प्रक्रिया में जैविक या निश्चित रूप में परिवर्तित किया जाना चाहिए।

अधिकांश वायुमण्डलीय नाइट्रोजन जैविक प्रक्रियाओं के माध्यम से निश्चित है। सर्वप्रथम, नाइट्रोजन वातावरण से मुख्य रूप से वर्षा के माध्यम से मिट्टी और सतह के जल में जमा किया जाता है।

एक बार मिट्टी और सतह के पानी में, नाइट्रोजन परिवर्तनों के एक समूह से गुजरता है, इसके दो नाइट्रोजन परमाणु अलग होते हैं और हाइड्रोजन के साथ अमोनिया (MH4+) बनाने हेतु गठबंधन करते हैं।

नाइट्रोजन अणु में दो नाइट्रोजन परमाणु शक्तिशाली त्रिसंयोजी बंध से जुड़े रहते हैं, नाइट्रोजन का अमोनिया या अन्य अणुओं में परिवर्तित होने की प्रक्रिया नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहलाती है।

टिप्पणी

नाइट्रोजन स्थिरीकरण निम्न चार प्रकार की होती है–

(1) अजैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण : यह दो प्रकार की होती है–

(i) वायुमण्डलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण – वर्षा के समय वायुमण्डलीय N_2 ऑक्सीजन से संयोग कर नाइट्रेट व नाइट्राइट में परिवर्तित होती है।

$$N + O = NO$$

$$NO + O = NO_2$$

$$NO_2 + H_2O = 2HNO_3$$

(ii) औद्योगिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण : अत्यधिक दाब ताप व उत्प्रेरक की उपस्थिति में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन व हाइड्रोजन संयोग कर अमोनिया का निर्माण करती है। अमोनिया का उपयोग रासायनिक उर्वरक के रूप में किया जाता है।

(2) जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण : सूक्ष्म जीवों के द्वारा होने वाला स्थिरीकरण जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहलाता है।

(3) असहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण : कुछ सूक्ष्म जीव स्वतंत्र रूप से मृदा में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं ये तीन प्रकार के होते हैं–

(i) वायुवीय जीवाणु

(ii) अवायवीय जीवाणु

(iii) नीलरहित शैवाल

(4) सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण : यह विशेष प्रकार के जीवाणुओं (राइजोबियम, ब्रेडीराइजोबियम, एजोराइजोबियम) द्वारा कुछ पादपों की जड़ों व तनों में गुलिकाओं के द्वारा किया जाता है।

- **नाइट्रीकरण (Nitrification)**

यह एक जैव रासायनिक क्रिया है, इसमें अमोनिया के ऑक्सीकरण से नाइट्रोबैक्टर नाइट्राइट का परिवर्तन नाइट्रेट में करते हैं। यह नाइट्रेट फिर पादपों द्वारा भूमि से जड़ों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है और नाइट्रोजन आहार शृंखला में प्रवेश करता है।

यह कुछ जीवों के लिए अत्यन्त जहरीला होता है। इस प्रक्रिया को नाइट्रीकरण कहा जाता है और इन बैक्टीरिया को नाइट्रोफाइंग बैक्टीरिया के रूप में जाना जाता है।

- **आत्मसात्करण (Assimilation)**

विभिन्न रूपों में नाइट्रोजन यौगिक (नाइट्रेट, नाइट्राइट, अमोनिया और अमोनियम) पौधों द्वारा मिट्टी से उठाये जाते हैं जिन्हें तब पौधों और पशु प्रोटीन के गठन में उपयोग किया जाता है।

• **अमोनीकरण (Ammonification)**

नाइट्रोजन स्थिरीकरण के परिणामस्वरूप बनी अमोनिया को समस्त पादप स्वांगीकृत नहीं कर पाते, क्योंकि यह विषाक्त होती है। अतः अमोनिया को अमोनियम आयन व अमोनियम आयन को अमोनी अम्लों में परिवर्तित किया जाता है, यह प्रक्रिया अमोनीकरण कहलाती है।

इसकी दो क्रियाएँ होती हैं–

(i) अपचयित एमीनिकरण : इसमें अमोनियम किटोग्लूटेरीक अम्ल से क्रिया करके ग्लूटामेट अम्ल बनाते हैं।

(ii) पार एमिनन या विपक्ष एमीनन : इसमें अमोनी अम्ल से एमीनो समूह का कीटो अम्ल के कीटो समूह में रूपांतरण होता है।

पौधों में एस्पेरजिन व ग्लूटेमिन दो मुख्य एमाइड पाए जाते हैं, इसमें एस्पाराटिक अम्ल व ग्लूटेनिक अम्ल एमीनो अम्ल होते हैं, जो जाइलम वाहिकाओं द्वारा पौधों के अन्य भागों में स्थानांतरित कर दिये जाते हैं। कुछ पौधों में नाइट्रोजन को यूरीड्स के रूप में संचित किया जाता है।

• **डीनाइट्रीकरण (Denitrification)**

नाइट्रोजन वाष्पीकरण नामक प्रक्रिया के माध्यम से वायुमण्डल में वापस आ जाता है, जिससे नाइट्रेट (NO_3) को गैसी नाइट्रोजन (N_2) में परिवर्तित कर दिया जाता है।

डीनाइट्रीकरण मुख्य रूप से गीली मृदा में होता है जहाँ पानी में सूक्ष्मजीवों को ऑक्सीजन प्राप्त करना दुर्लभ होता है।

कुछ परिस्थितियों में, कुछ जीवों को डीनाइट्रिफाइंग बैक्टीरिया के रूप में जाना जाता है, जो एक नाइट्रोजन गैस को उपज के रूप में छोड़कर, ऑक्सीजन प्राप्त करने के लिए नाइट्रेट को संसाधित करते हैं।

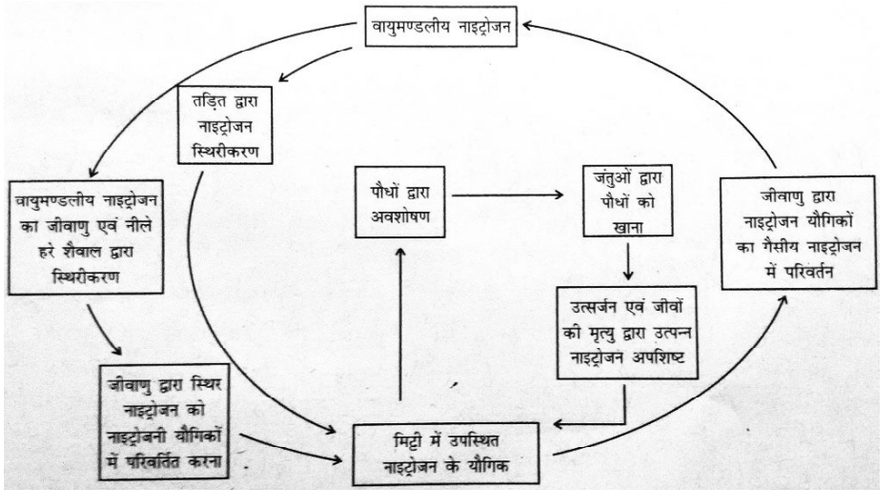

फास्फोरस चक्र (Phosphorus Cycle): प्रकृति में फास्फोरस चक्र एक अद्भुत चक्र है। फिर भी पशु–पक्षियों तथा जीव–जंतुओं हेतु बहुत महत्वपूर्ण है। मिट्टी में पाए जाने वाले फास्फोरस को जैविक पदार्थ अपनी प्रोटीन की आवश्यकता की पूर्ति हेतु उपयोग करते हैं।

टिप्पणी

फास्फोरस चक्र वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा फास्फोरस चट्टानों, पानी, जीवों और मिट्टी के माध्यम से आगे बढ़ता है। यह चक्र, अन्य जैव रासायनिक चक्रों के विपरीत, वायु से होकर नहीं गुजरता है क्योंकि फास्फोरस पर आधारित कई गैसीय यौगिक नहीं होते हैं।

मुख्य फास्फोरस रिजर्व नदियों, झीलों और महासागरों के जल में पाया जाता है। लेकिन तलछट और चट्टानों में भी पाया जाता है। फास्फोरस पौधों, जानवरों व मृदा हेतु आवश्यक है। फास्फोरस का मुख्य जैविक कार्य न्यूक्लिक अम्ल (DNA व RNA), कुछ प्रोटीन और लिपिड का हिस्सा होना है। कैल्शियम स्तनधारी हड्डियों और दांतों के निर्माण के लिए फास्फोरस भी एक महत्वपूर्ण घटक है। इसी तरह कीटों के एक्सोस्केलेटन संरचना का अंग है, कोशिकाओं के फास्फोलिपिड्स की झिल्ली और अनेक महत्वपूर्ण मेटाबोलाइट्स का हिस्सा है।

फास्फोरस चक्र एक अत्यन्त धीमी प्रक्रिया है क्योंकि फॉस्फोरस लंबे समय तक चट्टानों में रहता है। वर्षा और क्षरण फॉस्फोरस को चट्टानों से धोने में सहायक होती है, जबकि मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ फॉस्फोरस को विभिन्न जैविक प्रक्रियाओं के उपयोग हेतु अवशोषित करता है।

समस्त जैव रासायनिक चक्रों की भाँति फॉस्फोरस चक्र का कोई आरम्भ या अंत नहीं होता और न ही कोई दिशा होती है। यह एक जटिल चक्र है जहाँ संसाधन अनेक दिशाओं में चलते हैं।

फास्फोरस चक्र

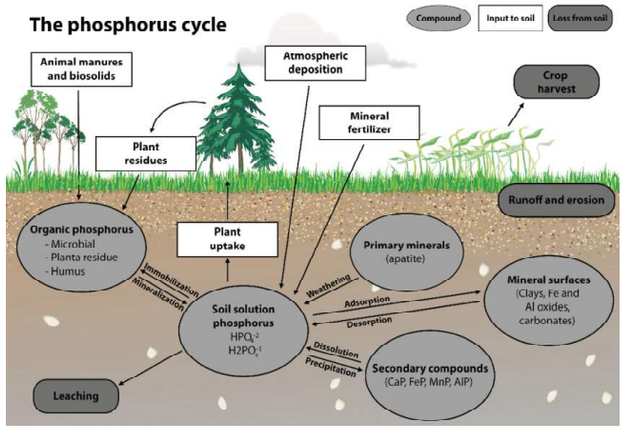

सल्फर चक्र (Sulphur Cycle): सल्फर चक्र प्रक्रियाओं का संग्रह है जिसके द्वारा सल्फर चट्टानों, जलमार्ग और जीवन प्रणालियों के मध्य चलता रहता है। इस प्रकार के जैव–रासायनिक चक्र भूविज्ञान में महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि वे अनेक खनिजों को प्रभावित करते हैं।

सल्फर चक्र एक अवसादी चक्र है जो प्रोटीन, अमीनो अम्ल और विटामिन जैसे पदार्थों का एक मुख्य अवयव है। सल्फर धातु सल्फेटों के रूप में चट्टानों व मृदा में पायी जाती है। पादप मृदा से सल्फेटों के रूप में सल्फर का अवशोषण करते हैं। मृत जीवांशों के अपघटन के उपरान्त हाइड्रोजन सल्फाइट (H_2S) गैस के रोगाणु ऑक्सीकरण से मृदा में सल्फेटों का निर्माण होता रहता है, वहाँ से पुनः पौधों द्वारा अवशोषण होता है। इस प्रकार सल्फर चक्र पूर्ण होता है।

टिप्पणी

सल्फर चक्र

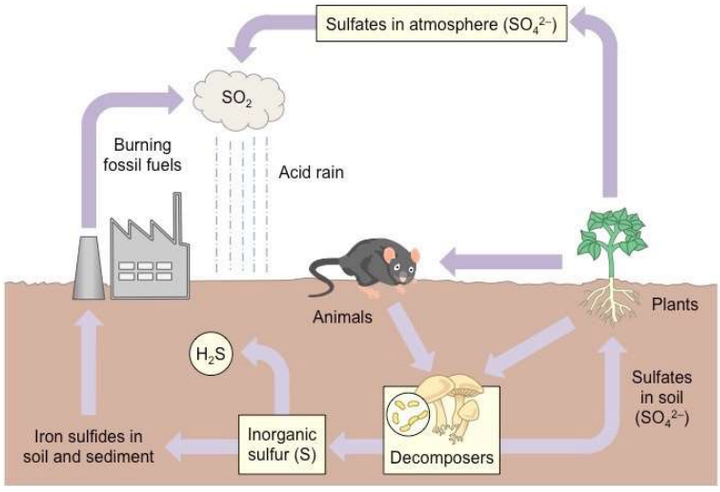

मानवीय गतिविधियों का विभिन्न चक्रों पर प्रभाव (Effect of Human Activities as various cycles)

पर्यावरणीय चक्रों पर मानवीय प्रभावों में भूमण्डलीय ऊष्मीकरण, पर्यावरणीय गिरावट, सागर अम्लीकरण, जैव विविधता, मानव द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से होने वाले जैव–वैज्ञानिक वातावरण तथा प्राकृतिक संसाधनों में परिवर्तन सम्मिलित है। पारिस्थितिकीय संकट, पारिस्थितिकीय पतन व आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए पर्यावरण को संशोधित करना, गंभीर प्रभाव उत्पन्न कर रहे हैं। कुछ मानवीय गतिविधियाँ (मानव प्रजनन, अतिसंवेदनशीलता, अतिवृद्धि, प्रदूषण व वनों की कटाई) वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के लिए क्षति पहुँचाती हैं।

मानवजनित गतिविधियों ने विभिन्न पर्यावरणीय चक्रों को अव्यवस्थित कर दिया है जो निम्नलिखित हैं–

- जीवाश्म ईंधनों ने अनेक वर्षों से कार्बन को संग्रहीत किया हुआ है किन्तु इनके वहन की दर पर्यावरण की इन्हें पुनः अवशोषित करने की क्षमता की तुलना में बहुत अधिक है। परिणामस्वरूप हरित गृह प्रभाव उत्पन्न हुआ है और वैश्विक तापन में वृद्धि हो रही है।
- निर्वनीकरण के कारण पौधों में संग्रहित कार्बन निर्मुक्त हो रहा है और इसे पुनः संग्रहित करने वाले पौधों की संख्या में कमी आ रही है।
- कृत्रिम नाइट्रेट उर्वरकों को जब जल स्रोतों में प्रवाहित किया जाता है तो 'रेड टाइड', 'ब्राउन टाइड' और फिएस्टेरिया बैक्टीरिया की वृद्धि हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ बनती हैं। ये सभी विषाक्त पदार्थ उत्पन्न करते हैं जिससे मानव व जीव–जंतु रोग ग्रस्त हो जाते हैं या उनकी मृत्यु हो जाती है।
- नाइट्रोजन चक्र पर अनेक महत्वपूर्ण गतिविधियों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। नाइट्रोजन आधारित उर्वरकों का प्रयोग, जीवाश्म ईंधन जलाना और अन्य गतिविधियाँ एक जैविक पारिस्थितिकी तंत्र में जैविक रूप से उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि कर सकती हैं और नाइट्रोजन उपलब्धता अधिकांशतः अनेक

टिप्पणी

पारिस्थितिकी प्रणालियों की प्राथमिक उत्पादकता को सीमित करती है। नाइट्रोजन की उपलब्धता में बड़े परिवर्तनों से जलीय और स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र दोनों में नाइट्रोजन चक्र में गंभीर परिवर्तन हो सकते हैं। औद्योगिक नाइट्रोजन निर्धारण 1940 के दशक से तीव्रता से वृद्धिशील है, और मानव गतिविधियों ने वैश्विक नाइट्रोजन निर्धारण की मात्रा को दोगुना कर दिया है।

- स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में, नाइट्रोजन के अतिरिक्त पादपों में पोषक तत्व असंतुलन, वन स्वास्थ्य में परिवर्तन और जैव विविधता में गिरावट का कारण बन सकता है। नाइट्रोजन उपलब्धता में वृद्धि के साथ अधिकांशतः कार्बन भंडारण में परिवर्तन होता है। कृषि प्रणालियों में, पौधों के उत्पादन में वृद्धि के लिए उर्वरकों को व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। लेकिन सामान्यतः नाइट्रोजन के रूप में अप्रयुक्त नाइट्रोजन, मिट्टी से बाहर निकलकर नदियों व धाराओं में प्रवेश कर अंततः हमारे पीने के पानी में मिश्रित हो जाते हैं जो कि अत्यन्त अस्वास्थ्यकर होता है।
- कृषि तथा नगरों में प्रयुक्त अधिकांश नाइट्रोजन अंत में नदियों और निकटवर्ती तटीय प्रणालियों में प्रवेश करते हैं। निकटवर्ती समुद्री प्रणालियों में, नाइट्रोजन में वृद्धि अधिकतर एनोक्सिया (ऑक्सीजन का न होना) या हाइपोक्सिया (कम ऑक्सीजन), जैव विविधता का परिवर्तित होना, खाद्य जाल संरचना में परिवर्तन और सामान्य आवास अवक्रमण का कारण हो सकता है। नाइट्रोजन में वृद्धि का एक साधारण हानिकारक प्रभाव अल्गाला ब्लूम में वृद्धि है। आर्थिक रूप से विनाशकारी प्रभावों के बावजूद, नाइट्रोजन के अतिरिक्त जैव विविधता और प्रजातियों की संरचना में परिवर्तन हो सकता है जो समग्र पारिस्थितिक तंत्र समूह में परिवर्तन कर सकता है। इसके अतिरिक्त, जलीय प्रणालियों में नाइट्रोजन में वृद्धि से ताजे जल के पारिस्थितिक तंत्र में अम्लीकरण में वृद्धि हो सकती है।

भूमण्डलीय ऊष्मीकरण–कारण और प्रभाव (Global Warming - Causes and Consequences)

भूमण्डलीय ऊष्मीकरण (Global Warming) का अर्थ पृथ्वी के वायुमंडल और महासागर के औसत तापमान में 20वीं शताब्दी से हो रही वृद्धि और उसकी अनुमानित निरन्तरता है। पृथ्वी के वायुमंडल के औसत तापमान में 2005 तक 100 वर्षों के दौरान $0.74 \pm 0.18^{\circ}C$ ($1.33 \pm 0.32^{\circ}F$) की वृद्धि हुई है। निष्कर्षतः यह कहा गया है कि 20वीं शताब्दी के मध्य से विश्व के औसत तापमान में जो वृद्धि हुई है उसका मुख्य कारण मनुष्य द्वारा निर्मित हरित गृह गैसें हैं।

वातावरण में हरित गृह गैसों की वृद्धि से पृथ्वी पर सूर्य से आने वाली ऊष्मा का विसर्जन पूर्ण रूप से नहीं हो पा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी के तापमान में निरन्तर वृद्धि हो रही है। पृथ्वी के तापक्रम में इस प्रकार की वृद्धि भूमण्डलीय ऊष्मीकरण कहलाती है। यह एक जटिल समस्या है जिसका समस्त देशों पर हानिकारक प्रभाव होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने पर्यावरण कार्यक्रम में इसके दुष्प्रभावों का उल्लेख किया है तथा संपूर्ण मानव जाति के लिए इसे भयावह खतरा माना है। भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के लिए मुख्य रूप से हमारी आर्थिक गतिविधियाँ उत्तरदायी

हैं, जिनका प्रभाव संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ेगा। इसके परिणामस्वरूप समुद्र का जल स्तर बढ़ जाएगा, स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न हो जाएंगी। इसके अतिरिक्त जलवायु में विभिन्न परिवर्तन होंगे, जिससे सामाजिक कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी।

टिप्पणी

भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के कारण (Causes of Global Warming)

भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के प्रमुख कारणों का विवरण निम्नलिखित प्रकार से है–

- औद्योगिक क्रांति से पूर्व वायुमण्डल मानवीय गतिविधियों से बहुत कम प्रभावित होता था, परन्तु औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात वातावरण में अत्यधिक गति से परिवर्तन हुआ है। औद्योगीकरण के विकास से जहाँ एक ओर मनुष्य के क्रियाकलापों में परिवर्तन हुआ है वहीं दूसरी ओर हमारे वातावरण व जलवायु में भी अनिश्चित परिवर्तन हो रहे हैं।
- औद्योगीकरण के विकास से वायुमण्डल में हानिकारक गैसों की मात्रा में वृद्धि हुई है। इन हानिकारक गैसों में मुख्य रूप से कार्बन डाई ऑक्साइड 30%, मीथेन 100%, नाइट्रस ऑक्साइड 1.5% वृद्धि हुई है। इन गैसों की मात्रा में वृद्धि से वायुमण्डल की ताप अवशोषण क्षमता में भी वृद्धि हुई है।
- हरित गृह गैसों के कारण हमारी पृथ्वी में ऊर्जा संतुलन बिगड़ रहा है। यह संतुलन पृथ्वी पर आने वाले प्रकाश के एक प्रतिशत के समान है। यह एक प्रतिशत प्रकाश विश्व के कुल व्यावसायिक रूप में प्रयुक्त होने वाली ऊर्जा के 100 गुने से भी अधिक है जिससे पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है।
- हरित गृह गैसों का उत्सर्जन मुख्य रूप से प्रयुक्त किये जाने वाले जीवाश्म ईंधन (कोयला, खनिज, पेट्रोल) से होता है। इन गैसों की बढ़ती हुई मात्रा वायुमण्डल में पिछले चार लाख वर्षों के उच्चतम बिंदु तक पहुंच चुकी है। वैज्ञानिकों के अनुसार ये गैसें हमारे जलवायु तंत्र को प्रभावित करने का कार्य करती हैं। इन गैसों के उत्सर्जन में विकसित देशों का योगदान अधिक है। अमेरिका जैसे विश्व के सबसे बड़े राष्ट्र द्वारा दुनिया के कुल हरित गृह का 25% उत्सर्जित किया जाता है। 80% हरित गृह गैसें विद्युत उत्पादन संयंत्रों तथा वाहनों द्वारा उत्सर्जित होती हैं, जबकि 20% गैसों का उत्सर्जन जीवाश्म ईंधन, रसायनों तथा अनुपयुक्त बीजों के सड़ने से निकलने वाली मीथेन गैस से होता है।

भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के प्रभाव (Consequences of Global Warming)

भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के परिणामस्वरूप तटीय क्षेत्रों में बाढ़ आने की आशंका में वृद्धि हो जाती है। मौसमी परिवर्तनों से वर्षा के तरीकों में भी परिवर्तन आया है, जिसका हानिकारक प्रभाव हमारे स्रोतों पर पड़ रहा है। मृदु जल के स्रोतों में कठोर/खारा जल मिल रहा है। खेतिहर भूमि मरुस्थल में परिवर्तित हो रही है। गंदे जल एवं प्रदूषण के कारण विभिन्न रोग बढ़ रहे हैं। इन समस्त परिवर्तनों से आर्थिक गतिविधियों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है जो निम्न है–

- समुद्र में पायी जाने वाली समुद्री घास/सागरीय घास की मात्रा में कमी आ रही है। परिणामस्वरूप मछलियों का उत्पादन भी कम हो रहा है।
- निरंतर तापवृद्धि और मानसून की अनिश्चितता से मैदानी क्षेत्रों की फसलों के उत्पादन में कमी आ सकती है।

टिप्पणी

- वर्तमान समय में विश्व की कुल जनसंख्या का एक विशाल भाग समुद्री तट से 100 किलोमीटर के क्षेत्र में रहते हैं, जिन पर समुद्री तूफान और बाढ़ का खतरा बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त करोड़ों लोग पहाड़ी क्षेत्रों तथा अर्द्ध–मरुस्थलीय स्थानों पर निवास करते हैं। इन क्षेत्रों में वर्षा न होने से फसलों को क्षति पहुँचती है।
- तुबालु तथा किरिबती जैसे द्वीपों में बढ़ते समुद्र जल–स्तर के कारण तटवर्ती सड़कों और फसलों को हानि हो रही है जिससे वहाँ के निवासियों का जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। इसी कारण से वहाँ के निवासी अपने मूल देश से पलायन करते हैं।
- भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के कारण अफ्रीका के किलीमंजारों के हिमखण्ड पूर्णरूप से शीघ्रता से पिघल जाएंगे, जिसके परिणाम मानव जाति व अन्य जीव–जंतु के लिए अत्यंत भयंकर सिद्ध होंगे।

लाभ : भूमण्डलीय ऊष्मीकरण से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन से वर्षा की दर में वृद्धि होती है और फसल उत्पादन में भी वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त कार्बन डाई ऑक्साइड की बढ़ती मात्रा से पौधों की वृद्धि शीघ्र हो रही है तथा प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में भी तेजी आती है।

वैज्ञानिकों के अनुसार वायुमण्डल में से यदि कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा घटा दी जाए तो भी जलवायु को पूर्णरूप से भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के प्रभाव से मुक्त नहीं कर सकते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि यह एक जटिल समस्या है, जो समस्त प्राणियों व वातावरण के लिए हानिकारक है।

भूमण्डलीय ऊष्मीकरण रोकने के उपाय (Remedies to Control Global Warming)

भूमण्डलीय ऊष्मीकरण को कम करने के संभावित उपाय निम्नलिखित हैं–

- जन सामान्य को औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा द्वारा भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के द्वारा होने वाले तापमान में वृद्धि तथा उसके दुष्परिणामों से अवगत कराकर, समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सचेत व जागरूक बनाया जाए।
- भूमण्डलीय ऊष्मीकरण को कम करने का सबसे प्रभावी उपाय वृक्षारोपण है। एक सर्वेक्षण के अनुसार, यदि विश्व की भूमि का 80 प्रतिशत क्षेत्रफल वन आच्छादित कर दिया जाए तो भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के प्रभाव को 60 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। इसके लिए व्यापक जन सहयोग आवश्यक है।
- जीवाश्म ईंधन की कम खपत द्वारा।
- सौर ऊर्जा तथा गोबर गैस अभिक्रम आदि ऊर्जा उत्पादन के वैकल्पिक साधनों को जन–सामान्य तक पहुँचाने के सार्थक प्रयास किये जाने चाहिए तथा उन्हें सस्ता व लोकप्रिय बनाया जाना चाहिए।
- स्वचालित वाहनों में पेट्रोल व डीजल के स्थान पर विकल्प के रूप में मेथेनोल के प्रयोग को व्यावहारिक तथा व्यापक बनाया जाए। इसके लिए विकसित देशों को तकनीकी ज्ञान द्वारा स्वचालित वाहनों के इंजनों में आवश्यक परिवर्तन किये जाने चाहिए।

टिप्पणी

- सप्ताह में एक दिन स्वचालित वाहनों को प्रतिबंधित कर प्रदूषण पर कुछ नियंत्रण किया जा सकता है।
- कृषि में उत्पादन वृद्धि हेतु गोबर व कम्पोस्ट खाद के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- पशु–पालन प्रोत्साहित करना चाहिए।
- सी.एफ.सी. गैसों को उत्पन्न करने वाले उद्योगों को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए। दुनिया में सी.एफ.सी. गैसों के उत्पादन हेतु मुख्यतः विकसित देश उत्तरदायी हैं। अतः सम्पन्न व समृद्ध राष्ट्रों को सी.एफ.सी. के विकल्पों के प्रयोग पर अधिक धन व्यय कर इनकी बढ़ती हुई मात्रा पर नियन्त्रण करना चाहिए।
- उपभोक्ता संस्कृति के प्रसार को रोकने का प्रयास विश्व स्तर पर किया जाना आवश्यक है। प्राकृतिक व साधारण जीवनयापन के लिए विश्वव्यापी जन आंदोलन चलाने की आवश्यकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. परिवर्तन की प्रक्रिया किस तंत्र की संरचना और उपस्थिति को परिभाषित करती है?

   (क) पारिस्थितिकी (ख) गतिशीलता

   (ग) ऊर्जा (घ) पर्यावरण

4. खाद्य शृंखला पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न जीवों की किस निर्भरता को प्रदर्शित करती है?

   (क) परस्पर संवाद (ख) परस्पर गमन

   (ग) परस्पर विवाद (घ) परस्पर भोज्य

1.4 विकास का पर्यावरण पर प्रभाव

विकास एक निरंतर चलने वाली सतत प्रक्रिया है। इसी पर एक राष्ट्र की खुशहाली में विकास की गति की एक अहम भूमिका होती है। प्रत्येक विकास प्रक्रिया के नकारात्मक तथा सकारात्मक परिणाम होते हैं। एक आदर्श विकास वही कहलाता है जिसमें कम से कम प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हो। पर्यावरण किसी देश की आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक राष्ट्र के विकास का एक बड़ा हिस्सा विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन से संबंधित होता है। प्राकृतिक संसाधनों (जल, जीवाश्म, ईंधन व मिट्टी इत्यादि) की उत्पादन क्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यकता होती है। हालांकि, उत्पादन के परिणामस्वरूप पर्यावरण द्वारा प्रदूषण का भी अवशोषण होता है। इसके अतिरिक्त उत्पादन हेतु प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक प्रयोग से पर्यावरण में संसाधनों की कमी की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है। तीव्र गति से बढ़ती हुई विकास प्रक्रियाएँ, औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा प्रौद्योगिकीकरण के कारण विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई है। इनमें पर्यावरणीय प्रदूषण वातावरण को अत्यधिक दूषित कर रहा है तथा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है।

टिप्पणी

केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि जीव एक भौगोलिक प्राणी है, अतः संसार के प्रत्येक जीव को अपने विकास एवं जीवन–क्रम को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए संतुलित पर्यावरण की आवश्यकता होती है। यदि कभी पर्यावरण में किसी विशेष घटक (Component) की निश्चित अनुपात में कमी या वृद्धि हो जाती है, तो ऐसी स्थिति में वातावरण दूषित हो जाता है। वातावरण का दूषित होना 'पर्यावरण असंतुलन' उत्पन्न कर देता है।

1.4.1 प्रदूषण का अर्थ

प्रदूषण लैटिन भाषा के शब्द Pollution का हिन्दी रूपांतर है। जिसका अर्थ है दूषित करना या भ्रष्ट करना। Pollution अँग्रेजी भाषा के Pollute शब्द से बना है, जिसका तात्पर्य शुद्धता नष्ट करना है। अतः प्रदूषण जल, वायु, मृदा, ध्वनि व रेडियोधर्मी तत्वों की शुद्धता को नष्ट करने वाली संज्ञा है। प्रदूषण, तत्वों या प्रदूषकों के वातावरण में मिश्रण को कहा जाता है। जब यह प्रदूषक हमारे प्राकृतिक संसाधनों में मिल जाते हैं तो इसके अनेक प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न होते हैं। प्रदूषण मुख्यतः मानवीय गतिविधियों द्वारा उत्पन्न होता है और यह हमारे संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करता है। प्रदूषण के कारण मानव अस्तित्व पर संकट उत्पन्न हो गया है। प्रदूषण का शाब्दिक अर्थ है– 'गंदा या अस्वच्छ करना।' साधारण शब्दों में प्रदूषण पर्यावरण के जैविक तथा अजैविक तत्वों के रासायनिक, भौतिक तथा जैविक गुणों में होने वाला वह अवांछनीय परिवर्तन है जो कि मानवीय क्रिया–कलापों के कारण होता है।

पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाले कारकों में प्रदूषण का प्रमुख योगदान है। पर्यावरण के विभिन्न अवयवों की निश्चित संरचना होती है। इन अवयवों में अन्य दूसरे प्रकार के पदार्थ जब मिल जाते हैं, तब उनकी मौलिक संरचना बदल जाती है। यही प्रदूषण कहलाता है। पर्यावरणीय प्रदूषण का अर्थ है, पर्यावरण की भौतिक, रासायनिक अथवा जैविक गुणवत्ता में प्राकृतिक अथवा मानवकृत अवांछित परिवर्तन। इन अवांछित परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी ऐसे ठोस, द्रव या गैसीय पदार्थ जो कि ऐसी सांद्रता में विद्यमान रहते हैं जो पर्यावरण के लिए क्षतिकर हो सकते हैं या क्षतिकर होना संभाव्य है, पर्यावरण प्रदूषण कहलाते हैं।

अधिकांशतः प्रदूषण मानवीय क्रिया कलापों के कारण है पर कुछ प्राकृतिक क्रियाएँ भी प्रदूषण फैलाती हैं। ज्वालामुखी का फटना, दावानल, चक्रवात, भूकम्प और भू–अपरदन आदि ऐसी प्राकृतिक क्रियाएँ हैं जिनसे प्रदूषण होता है। प्राकृतिक कारकों द्वारा उत्पन्न प्रदूषण स्वयं ही संतुलित हो जाता है परन्तु औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् मानवीय क्रियाओं के कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या गंभीर हो गई है।

इसका प्रभाव भूमि, जल, हवा तथा महासागरों में भी हो चुका है। प्रत्येक देश इसकी चपेट में है। प्रदूषण का सर्वाधिक गंभीर प्रभाव मानव–स्वास्थ्य तथा जैव–विविधता पर पड़ता है।

प्रदूषण की परिभाषा

प्रदूषण की विभिन्न परिभाषाएँ निम्नानुसार हैं–

- अमेरिका की विज्ञान सलाहकार समिति के अनुसार–'वातावरण प्रदूषण मनुष्यों की गतिविधियों द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उत्पन्न उप–उपवाद है जो

टिप्पणी

वातावरण में पूर्ण रूप से अथवा अधिकतम प्रतिकूल परिवर्तन उत्पन्न करता है, ऊर्जा स्वरूपों, विकिरण स्तरों, रासायनिक तथा भौतिक संघटन, जैविक की संख्या में परिवर्तन को प्रभावित करता है।'

- डा. वीरबाला रस्तोगी के शब्दों में–'मृदा, वायु व जल के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में होने वाले ऐसे परिवर्तनों को जो मनुष्य के जीवन, उसके रहन–सहन और उसके महत्व के अन्य जीवों को प्रभावित करते हैं, प्रदूषण कहते हैं।'
- बी.एल. शर्मा के विचारानुसार– 'प्रदूषण, वायु, जल एवं स्थल के भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं का वह अवांछनीय परिवर्तन है, जो मनुष्य तथा उसके लिए लाभदायक जन्तुओं, पौधों तथा अन्य जीवों को किसी न किसी रूप में हानि पहुँचाता है।'
- ओडम के अनुसार– 'प्रदूषण हवा, जल एवं मिट्टी के भौतिक रासायनिक एवं जैविकीय गुणों में एक ऐसा अवांछनीय परिवर्तन है जिसमें मानव जीवन, औद्योगिकी प्रक्रियाएँ, जीवन दशाएँ तथा सांस्कृतिक तत्वों की हानि होती है। उन समस्त तत्वों तथा पदार्थों को जिनकी उपस्थिति से प्रदूषण उत्पन्न होता है, प्रदूषक कहते हैं।'
- लार्ड केनेट के शब्दों में– 'पर्यावरण में उन तत्वों या ऊर्जा की उपस्थिति को प्रदूषण कहते हैं, जो मनुष्य द्वारा अनचाहे उत्पादित किये गए हों।'
- राष्ट्रीय पर्यावरण अनुसंधान परिषद के अनुसार– 'मानवीय क्रियाकलापों से उत्पन्न अपशिष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थों एवं ऊर्जा के विमोचन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकारक परिवर्तनों को प्रदूषण कहते हैं।'

प्रदूषण हमारे चारों ओर स्थित वायु, भूमि और जल के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक विशेषताओं में अनावश्यक परिवर्तन है, जो मानव की दशाओं और सांस्कृतिक संपदा पर हानिकारक प्रभाव डालता है।

समस्त जीव अपनी वृद्धि व विकास तथा अपने जीवन चक्र को चलाने के लिए संतुलित पर्यावरण पर निर्भर करते हैं। संतुलित पर्यावरण से तात्पर्य एक ऐसे पर्यावरण से है, जिसमें प्रत्येक घटक एक निश्चित मात्रा एवं अनुपात में उपस्थित होता है। परन्तु कभी–कभी मानवीय या अन्य कारणों से पर्यावरण में एक अथवा अनेक घटकों की मात्रा आवश्यकता से बहुत अधिक बढ़ जाती है अथवा पर्यावरण में हानिकारक घटकों का प्रवेश हो जाता है। इस स्थिति में पर्यावरण दूषित हो जाता है तथा जीव समुदाय के लिए किसी न किसी रूप में हानिकारक सिद्ध होता है। पर्यावरण में इस अवांछनीय परिवर्तन को ही 'पर्यावरणीय प्रदूषण' कहते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण के स्रोत

उत्पत्ति एवं स्रोत के आधार पर–

- प्राकृतिक प्रदूषक
- मानवनिर्मित प्रदूषक

टिप्पणी

दृश्यता के आधार पर–

- दृष्टिगत प्रदूषक
- धुआं, धूल, सीवर जल, कचरा
- अदृश्य प्रदूषक – अनेक जीवाणु जल व मृदा में मिश्रित रसायन

प्रदूषकों की प्रकृति के आधार पर–

- ठोस अपशिष्ट
- द्रव अपशिष्ट
- गैसीय अपशिष्ट
- भारहीन अपशिष्ट
- ध्वनि अपशिष्ट

पारिस्थितिक दृष्टिकोण से ओडम ने प्रदूषकों को दो वर्गों में विभक्त किया है–

- **अविघटनीय प्रदूषक** : ऐसे औद्योगिक पदार्थ जो प्राकृतिक, भौतिक, रासायनिक व जैवरासायनिक क्रियाओं द्वारा विघटित नहीं होते। परिणामस्वरूप इनका पुनःचक्रीकरण नहीं होता तथा ये खाद श्रृंखला में प्रविष्ट होकर हानिकारक प्रभाव प्रकट करते हैं। उदाहरणार्थ– फिलोलिक यौगिक, डी.डी.टी., बी.एच.सी, एल्ड्रिन तथा टोक्साफिन।
- **जैव विघटनीय प्रदूषक** : ये प्रदूषक अधिकांशतः जीव–जंतुओं और वनस्पतियों की जैविक क्रियाओं से उत्पन्न होते हैं। इनमें घरेलू अपशिष्ट (मलमूत्र, अन्न, शाक व फलों के अंश) सम्मिलित हैं। इनका अनुपात विघटन दर से अधिक होने पर वे प्रदूषण का कार्य करने लग जाते हैं।

प्रदूषण के प्रकार (Type of Pollution)

प्रदूषण वायु, जल, मिट्टी एवं रेडियोधर्मी पदार्थों में पाया जाता है। प्रदूषण के मुख्य प्रकार हैं–

1. **वायु प्रदूषण (Air Pollution)**: फैक्ट्री तथा कारखानों का धुआं, हवाई जहाजों, पानी के जहाजों, रेल मोटरगाड़ी की बढ़ती हुई संख्या से दिन–प्रतिदिन का बढ़ता हुआ धुआं ही वायु में मिश्रित होकर भारी मात्रा में कार्बन सल्फर व नाइट्रोजन के ऑक्साइड, धूल, धुआं, विषैले कार्बनिक पदार्थ वायुमंडल में मिलकर तेजी से वायु प्रदूषण फैला रहे हैं।
2. **जल प्रदूषण (Water Pollution)** : पहाड़ों व मैदानों से जैसे–जैसे पानी समुद्र की ओर बहता जाता है, वैसे–वैसे पानी को दूषित करने वाले प्रदूषण (Pollution Sewage) आदि इसमें मिश्रित होते जाते हैं। भारत में प्रति 1,00,000 व्यक्तियों में से 360 व्यक्तियों की मृत्यु आँत संबंधी रोगों जैसे– टाइफाइड व पेचिस आदि से होती है। जो जल प्रदूषण के ही शिकार होते हैं। कारखानों से निकलने वाले पदार्थ (Effects) कागजों की मिलों से निकले सल्फाइड व सिग्नाइट विशाल भट्टियों (Vast Furnaces) से निकले साइनाइड्स, रेयन व अन्य कारखानों के अपशिष्ट पदार्थों के मिलने से जल इतना प्रदूषित हो जाता है कि न तो वह पीने

टिप्पणी

के लायक होता है और न ही खेतों के। इसमें मछलियाँ मर जाती हैं। हमें 70 प्रतिशत से अधिक ऑक्सीजन समुद्रों में आने वाली हरियाली से प्राप्त होती है। जल में बड़े–बड़े तेलवाहक भी चलते हैं। समुद्र के प्रदूषण के कारण अब तक लगभग 1000 प्रकार के समुद्री जन्तु नष्ट हो जाते हैं।

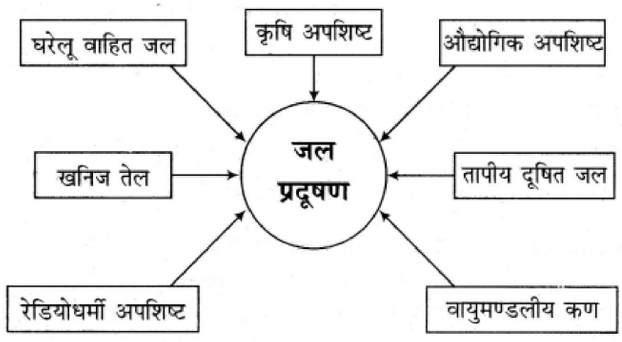

चित्र - जल प्रदूषण के स्रोत

3. **मृदा प्रदूषण (Soil Pollution):** फल–फूलों के लगातार उगाने से मिट्टी की उर्वरता कम हो जाती है। जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्य पदार्थों की अधिक आवश्यकता होती है। अधिक उपज के लिये किसान, अपने खेतों में रासायनिक खाद मिलाते हैं। पौधों को कीटाणु, जीवाणु, परजीवी आदि से बचाने हेतु कीटाणुनाशक दवाओं का छिड़काव भी करते हैं। प्रदूषित जल और वायु के कारण मिट्टी एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाती है जिससे मिट्टी दूषित हो जाती है। वायु में SO_2 वर्षा के जल के साथ मिलकर H_2SO^4 अम्ल बना लेती है। विभिन्न प्रकार के कीटाणुनाशक पदार्थ (Pesticides) फसलों पर छिड़के जाते हैं।

4. **ध्वनि प्रदूषण (Sound and Noise Pollution):** ध्वनि भी वातावरण को दूषित करती है। शहरों में अधिक भीड़ के कारण ध्वनि द्वारा प्रदूषण की समस्या और भी गम्भीर हो गई है। ध्वनि से भी तेज गति से चलने वाले विमानों की उड़ान, कारखानों व मशीनों की आवाज, शहरी सड़कों पर मोटरगाड़ियों का शोर–गुल व रेडियो आदि ध्वनि प्रदूषण के स्रोत हैं। डॉक्टरों के अनुसार लम्बे समय तक शोर व तीव्र गति से यातायात वाले स्थानों पर ध्वनि प्रदूषण होता है।

5. **रेडियोएक्टिव प्रदूषण (Radioactive Pollution):** रेडियोएक्टिव प्रदूषण तत्वों के बढ़ते हुए प्रकार वातावरण में रेडियोएक्टिव का विघटन (Dissolution) का मुख्य कारण, परमाणु वायुमण्डल में परमाणु हथियारों के परीक्षण, परमाणु हथियार उत्पादन, रेडियोधर्मी अयस्कों के खनन, हैंडलिंग और निपटने के दौरान पर्यावरण में, रेडियोधर्मी पदार्थों की रिहाई के परिणामस्वरूप होता है। परमाणु ऊर्जा उत्पादन संयंत्रों से आधुनिक दुनिया में, ऊर्जा के विभिन्न रूपों की खोज की जा रही है। इनमें परमाणु ऊर्जा है, जो इसकी उच्च शक्ति के कारण का सबसे शक्तिशाली स्रोत है। रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि उच्च शक्ति अपने उच्च स्तर के विकिरण के कारण है। परमाणु आपदा, चेरनोबिल आपदा, माइल द्वीप दुर्घटना जैसी परमाणु ऊर्जा संयंत्र दुर्घटनाएँ, जारी किए गए कई लोगों की मौत और यहाँ तक कि कई और अधिक प्रभावित हुए हैं।

6. **ताप प्रदूषण (Thermal Pollution):** गर्म बहते हुए पानी एवं गर्म हवा के रूप में गर्मी का निकलना ताप प्रदूषण बनाता है। हवा तथा पानी के एक निश्चित ताप

टिप्पणी

से अधिक गर्म हो जाने से जीव–जन्तु मर जाते हैं। गर्मियों में लू का चलना, तेज धूप का होना मनुष्य से सहन नहीं हो पाता है।

7. **पेस्टीसाइड और हरबीसाइड प्रदूषण (Pesticide and Herbicide Pollution):** पेस्टीसाइड और हरबीसाइड वे रासायनिक मिश्रण (Compounds) हैं जो घास–पात नष्ट करते हैं। जीव वैज्ञानिकी गति से यहाँ दो समस्याएँ पहले से ही उत्पन्न हो जाती हैं। पहली, उनमें बहुत सी ऐसी हैं जो वातावरण में पशु एवं पौधों को हानि पहुँचाकर नष्ट करती हैं और उनमें से दूसरी समस्याएँ ऐसी हैं जो मानवीय स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। सामान्यतः प्रयोग की जाने वाली पेस्टीसाइड डी.डी.टी (D.D.T.), डील्डरिन (Dieldrin), हैप्टाक्लोर (Heptachlor) और थियोडैन (Thiodan) होती हैं। वैसे ही आवश्यक हरबीसाइड–2, 4-D, 4.C 5 -T, डैओक्जेन है, जो वीड्स पेस्ट्स (Weeds Pests) और वीड्स (Weeds) को रोकने के लिए विस्तृत रूप से प्रयोग किये जाते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण के मूल कारण

पर्यावरण प्रदूषण के मूल कारण मानव के अवांछनीय क्रिया–कलाप हैं। बिना सोचे–समझे, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके पारिस्थितिक–तंत्र के संतुलन को बिगाड़ना, पर्यावरण प्रदूषण का मूल कारण है। पर्यावरण प्रदूषण के मूल कारण निम्नलिखित हैं–

- नगरों, महानगरों में परिवहन के विभिन्न साधन (बस, कार, मोटर–साइकिल, स्कूटर, वायुयान, रेल, मोटर–बोट) इत्यादि में डालने वाले ईंधन से वायु प्रदूषण होता है।
- कल–कारखानों, मिलों, फैक्ट्रियों एवं अन्य औद्योगिक संसाधनों से प्रवाहित होने वाले रासायनिक पदार्थ, जल स्रोतों में निष्कासित ठोस अपशिष्ट पदार्थ, वायुमण्डल में विसर्जित होने वाले गैसीय पदार्थ पर्यावरण प्रदूषण के कारण हैं।
- गाँवों, नगरों, महानगरों की मलिन बस्तियों के कारण वहाँ पर अपशिष्ट पदार्थों, गंदे जल, गैसीय पदार्थों को उपयुक्त स्थान पर विसर्जित करने के स्थान का अभाव होता है, पर्यावरण प्रदूषण का कारण बनता है।
- अनेक प्रकार के पालतू पशुओं एवं कृषि के कार्यों द्वारा पर्यावरण प्रदूषण होता है।
- सघन कृषि के अंतर्गत प्रयोग किये जाने वाले अनेक प्रकार के पेस्टीसाइड्स, विषैले रासायनिक एवं अनेक प्रकार के उर्वरक इत्यादि परोक्ष रूप से पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख कारणों में शामिल हैं।
- मनुष्यों, पशुओं के मृतक शरीर का जल स्रोतों में विसर्जन अथवा खुले में दहन अथवा धरती पर भी सड़ने–गलने से पर्यावरण प्रदूषित होता है।
- विद्युत शक्ति उत्पादन, अणुशक्ति प्लाण्टों के कारण प्रदूषण फैलता है। इस प्रकार का प्रदूषण विकसित देशों एवं औद्योगिक प्रदेशों में अधिक पाया जाता है।
- अणु बम विस्फोट एवं परीक्षणों में जल, मृदा, वायु तथा ध्वनि का भयंकर रूप से प्रदूषण होता है।
- तैलीय पदार्थों के समुद्री जल एवं अन्य जल स्रोतों में मिलने से भी जल प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है।

टिप्पणी

- विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में सस्ती, गन्दी तथा निम्न गुणवत्ता के अपमिश्रण द्वारा भी प्रदूषण होता है।
- आँधी–तूफान, तापमान में अत्यधिक परिवर्तन, भीषण वर्षा, जलवायु आर्द्रता, सूर्य के प्रकाश की स्थिति इत्यादि भी अनेक प्रकार के प्रदूषण के कारण हैं।
- मनुष्यों, पशुओं व पक्षियों द्वारा खुले में मल–मूत्र त्यागने से विभिन्न प्रकार के प्रदूषण फैलते हैं।
- गाँवों एवं कस्बों में पाए जाने वाले गड्ढे एवं पोखरों का रुका हुआ जल जो कपड़े धोने, पीने, पशुओं को नहलाने, शौच करने, मनुष्यों के स्नान करने एवं प्रत्येक प्रकार की जल आपूर्ति हेतु प्रयोग किये जाते हैं, प्रदूषण के कारण हैं।
- अत्यधिक उपज प्राप्त करने के लिए मृदा में रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग, खेतों को कभी खाली न छोड़ना, मृदा प्रकृति के विपरीत फसलों को उगाना भी प्रदूषण का कारण है।
- निरंतर जनसंख्या विस्फोट तथा उनकी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्राकृतिक संसाधनों का दोहन प्रदूषण का कारण है।
- कृषि क्षेत्रों का सीमान्त एवं ढालू क्षेत्र में खाद्यान्न पूर्ति के लिए विकास भी वातावरण को प्रदूषित करता है।
- अर्द्धशुष्क प्रदेशों में अधिक चराई, मरुस्थलीकरण एवं अत्यधिक वृक्षों की कटाई प्रदूषण फैलाती है।
- औद्योगिकीकरण, नगरीकरण तथा प्रौद्योगिकी विकास के कारण वनों की कटाई एवं उनके दोहन के कारण भी पर्यावरण प्रदूषण की समस्या और भी गंभीर होती जा रही है।
- विकास की दौड़ में खनिज पदार्थों की प्राप्ति के लिए खानों को खोदने से भी पर्यावरणीय प्रदूषण होता है।

पर्यावरण की प्रमुख समस्याएँ

पर्यावरण की प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अनेक समस्याएँ हैं, इनमें से कुछ ज्ञात प्रमुख समस्याएँ, कारण और प्रभाव निम्न हैं–

क्र.सं.	समस्याएँ	कारण	प्रभाव
1.	वायुमंडल में कार्बन डाई ऑक्साइड की बढ़ती सान्द्रता	जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक प्रभाव	वायुमण्डल के औसत तापमान में वृद्धि
2.	हरित गृह प्रभाव और वायुमंडल के तापमान में वृद्धि	वायुमंडल में बढ़ती कार्बन डाई ऑक्साइड मीथेन और नाइट्रोजन के ऑक्साइड	औसत समुद्र में वृद्धि के कारण सागर तटीय शहरों के डूबने का खतरा। जलवायु में सांद्रता परिवर्तन
3.	वायुमंडल के ऊपरी सतह में स्थित ओजोन परत का क्षरण	सी.एफ.सी. वर्ग के रसायनों का उपयोग	सूर्य की किरणों के साथ पराबैगनी किरणों के कारण चर्म कैंसर में वृद्धि

टिप्पणी

4. अम्लीय वर्षा	जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक प्रयोग	कृषि, वन संपदा, प्राचीन इमारतों, मृदा और जलीय संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव
5. समुद्री प्रदूषण	सभी मानवीय क्रियाएँ तथा जल पोतों से तेल का रिसाव	समुद्री जैविक संपदा का विनाश
6. जल प्रदूषण	समस्त मानवीय क्रियाएँ, बढ़ता शहरीकरण, उद्योगों का कचरा, जलीय स्रोतों के अत्यधिक दोहन के कारण नदी में कम पानी का बहाव तथा वनों की कटाई आदि	दूषित जल से होने वाले अनेक रोग, जैविक संपदा का नाश, पीने योग्य जल की कमी तथा भू–जल की कमी
7. वायु प्रदूषण	वाहनों का उज्सर्जन, जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक प्रयोग और औद्योगिक उत्सर्जन	शुद्ध वायु का अभाव तथा अनेक भयंकर बीमारियाँ
8. ध्वनि प्रदूषण	विभिन्न प्रकार की अवांछित ध्वनियाँ	बहरापन और किसी कार्य में ध्यानकेन्द्रित नहीं कर पाना।
9. मृदा प्रदूषण	कीटनाशकों तथा रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग और विभिन्न प्रकार के कचरों का भूमि पर संचय	भू–जल का प्रदूषित होना तथा भूमि की जैविक संपदा का ह्रास
10. जैविक विविधता में कमी	विभिन्न क्रियाएँ तथा विभिन्न प्रकार के प्रदूषण	जल, चारा और ईंधन की कमी तथा जन्तुओं एवं वनस्पतियों का विलुप्तीकरण

जल प्रदूषण

जल प्रदूषण का अर्थ है, उसके भौतिक, रासायनिक अथवा जैविकीय गुणों में इस प्रकार का परिवर्तन, जो जल–मल के विसर्जन अथवा औद्योगिक अपशिष्टों के बहिस्राव अथवा अन्य किसी ठोस, द्रव या गैसीय पदार्थ के उसमें मिलने से वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो या घरेलू, व्यावसायिक, औद्योगिक तथा कृषि के कार्यों में उपयोग न किया जा सके या उसका जन–जीवन, पेड़–पौधों तथा जीव–जन्तुओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

जल में अनेक खनिज तत्व, कार्बनिक–अकार्बनिक पदार्थ एवं गैसें एक निश्चित मात्रा में उपस्थित होती हैं, परन्तु जब जल में घुले हुए इन पदार्थों की मात्रा कम या

टिप्पणी

अधिक हो जाती है तो यह जल उपयोगी नहीं रहता है, अर्थात् स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाता है। इसे जल प्रदूषण कहा जाता है।

यद्यपि जल पृथ्वी का सर्वाधिक उपलब्ध संसाधन है तथापि मानव उपयोग के लिए यह तेजी से दुर्लभ होता जा रहा है। पृथ्वी का दो तिहाई भाग जल व एक तिहाई भाग थल है। इस अपार जल संसाधन का लगभग 97.5 प्रतिशत भाग खारा है और शेष 2.5 प्रतिशत भाग मीठा है। इस मीठे जल का 75 प्रतिशत भाग हिमखण्डों के रूप में, 24.5 प्रतिशत भाग भू–जल, 0.03 प्रतिशत नदियों, 0.3 झीलों एवं 0.067 प्रतिशत वायुमंडल में विद्यमान है। पृथ्वी पर उपलब्ध जल का 0.3 प्रतिशत भाग ही स्वच्छ व शुद्ध है।

इस संसार की कल्पना जल के बिना संभव नहीं है। किसी जीव या वनस्पति के लिए वायु के पश्चात् जल जीवन की रक्षा के रूप में सबसे आवश्यक है। हमारे शरीर में 60 प्रतिशत एवं वनस्पतियों में 95 प्रतिशत जल पाया जाता है। लगभग 5700 लाख वर्ष पूर्व पृथ्वी पर जल की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद में भी लिखा है 'सलिलं सर्वमाइदम्' अर्थात् जल सृष्टि के आरम्भ से ही है। जब से पृथ्वी बनी है जल का उपयोग हो रहा है। ज्यों ज्यों पृथ्वी की जनसंख्या में वृद्धि एवं सभ्यता का विकास होता जा रहा है। जल का उपयोग बढ़ता जा रहा है। आधुनिक शहरी परिवार प्राचीन खेतिहर परिवार की तुलना में 6 गुना अधिक जल प्रयुक्त करते हैं। भारत जैसे विकासशील देश में जल प्रदूषण की समस्या अत्यंत गंभीर है। नीरी संस्थान, नागपुर के अनुसार, भारत में उपलब्ध कुल जल का लगभग 70 प्रतिशत भाग प्रदूषित है। संसार में पच्चीस हजार लोग प्रतिदिन या तो पानी की कमी से या दूषित जल से मर जाते हैं। विकासशील देशों में पाँच में से चार बच्चे प्रदूषित जल जनित रोग (पेचिश, हैजा, पोलियो, मलेरिया, गेस्ट्रोएस्ट्राइटिस एवं पेट के कीड़े) के कारण मरते हैं। संयुक्त राष्ट्र संगठन का मानना है कि विश्व के 20 प्रतिशत लोगों को पानी उपलब्ध नहीं है तथा लगभग 50 प्रतिशत लोगों को स्वच्छ जल उपलब्ध नहीं है। मानव जिस तीव्र गति से जल स्रोतों का अनुचित शैली में दोहन कर रहा है। यह भविष्य के लिए अत्यंत चिन्ता का विषय है।

इसलिए मानव जाति को वर्तमान एवं भावी पीढ़ी के स्वस्थ एवं सुखी जीवन के लिए पानी को लेकर तीन प्रमुख समस्याओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है–

- पानी को नष्ट होने से बचाना
- पानी को प्रदूषित होने से बचाना
- प्रदूषित तथा प्रयुक्त का शुद्धिकरण कर उसे पुनः उपयोग के योग्य बनाना।

साफ सुथरा जल, स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है, पर यह अत्यंत दुर्लभ हो गया है। उद्योगों का कचरा और घरेलू गन्दा जल प्रदूषण का मुख्य कारण है। खेतों में सिंचाई के बाद निकला जल तथा भूमि का कटाव भी जल को प्रदूषित करते हैं। घरों और उद्योगों में जल की आवश्यकता और वास्तविक खपत में बहुत अन्तर होता है। अनुमान है कि जितने जल का उपयोग किया जाता है, उसका 20 प्रतिशत भाग ही खपत होता है और शेष 80 प्रतिशत भाग समस्त कचरा समेटे हुए निष्कासित हो जाता है। इसे ही अपशिष्ट या मल–जल कहा जाता है।

उस जल को उपचारित कर अपेक्षाकृत साफ किया जा सकता है और फिर सिंचाई के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। इस जल को जब बिना उपचारित किये नदियों में मिलाया जाता है, तब उनका जल प्रदूषित हो जाता है।

टिप्पणी

समुद्रीय प्रदूषण

पृथ्वी का दो तिहाई भाग सागरों और महासागरों से घिरा है जबकि शेष एक तिहाई भू–खण्ड के थोड़े से हिस्से में ही मनुष्य निवास करते हैं। कुछ वर्ष पहले तक यह समझा जाता था कि समुद्र की अथाह जलराशि को प्रदूषित करना असंभव है परंतु अब यह धारणा बदल रही है। समुद्री तट तो निर्जीव और प्रदूषित होते ही जा रहे हैं। साथ ही सागरों के बीच का हिस्सा भी विभिन्न प्रकार के विषैले रसायनों और कच्चे तेल की चपेट में है।

हमारे देश में 7516.6 किलोमीटर लंबा समुद्र तट है। समुद्र के किनारे 9 राज्य (गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, गोवा, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल) तथा 3 केन्द्र शासित प्रदेश (पांडिचेरी, लक्षद्वीप और अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह) स्थित हैं। देश के चार प्रमुख महानगरों में से दो का विकास सागर तट पर हुआ है। हमारे सागर तटों के प्रदूषित होने का मुख्य कारण शहरों का कचरा, उद्योगों का कचरा, बंदरगाह, शिपयार्ड, पर्यटन और नौसेना केन्द्र हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 100 नदियाँ अपने विभिन्न प्रदूषण भार के साथ सीधे समुद्र में मिलती हैं।

समुद्री प्रदूषण ने उसमें बसने वाले जीवों के अस्तित्व के लिए संकट उत्पन्न कर दिया है। समुद्रों में जीवन की उत्पत्ति हुई थी और आज भी इसकी जैविक–विविधता अतुलनीय है। जानवरों के मुख्य 33 वर्ग पृथ्वी पर निवास करते हैं। इनमें से 32 समुद्र में ही पाए जाते हैं और 15 वर्ग ऐसे हैं जिनका कोई प्रतिनिधि भूमि पर है ही नहीं। हाल ही के वर्षों में समुद्री जीवों से दवाइयाँ बनाने और खाद्य पदार्थ के रूप में इनके उपयोग में वृद्धि हुई है। परन्तु यदि सागरों और महासागरों में इसी प्रकार प्रदूषण बढ़ता रहा तो संभव है कि कई जानवरों की प्रजाति विलुप्त हो जाए।

नदी प्रदूषण

हमारे देश में नदियों का जाल बिछा हुआ है। यहाँ 113 स्वतंत्र नदियाँ और हजारों सहायक नदियाँ हैं। नदियों के किनारे बड़े–बड़े शहर बसे हैं। गंगा और सिन्धु नदी के उपजाऊ मैदान पर ही सिन्धु घाटी की सभ्यता का विकास हुआ। नदियाँ हमारी संस्कृति और परम्परा में भी रची बसी हैं। विभिन्न पर्व–त्यौहारों पर नदियों में नहाने की परम्परा हमारे देश की विशेषता है।

आज भी नदियों को श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखा जाता है, पर यह एक दुखद सत्य है कि अधिकांशतः नदियाँ अपने किसी न किसी हिस्से में प्रदूषित हो गई हैं। इसका मुख्य कारण है– बढ़ता शहरीकरण, उद्योग धंधे, भू–अपरदन, नदी तट पर कृषि का विस्तार और नदियों में पानी की कमी।

प्रत्येक नदी के जल में स्वयं शुद्धिकरण की क्षमता होती है। इसी कारण किसी भी नदी में आरम्भ से अंत तक प्रदूषण भार समान नहीं रहता। प्रायः तट पर स्थित उद्योगों के किनारे की नदी का हिस्सा अत्यधिक प्रदूषित रहता है। इसका कारण स्पष्ट है कि शहरों और उद्योगों के कचरे और गन्दे जल को बिना उपचारित किये नदियों में प्रवाहित कर दिया जाता है। यदि नदी में पर्याप्त जल हो तो प्रदूषण की समस्या अधिक नहीं होती, क्योंकि प्रदूषण फैलाने वाले तत्वों की सान्द्रता कम हो जाती है। हमारे देश की अधिकतर नदियाँ वर्षा के जल पर ही निर्भर करती हैं और वर्षा वर्ष में केवल तीन महीने होती है। बड़े बाँधों से पानी नहीं छोड़ा जाता, जिससे आगे जाकर

नदी सूख जाती है। कहीं–कहीं तो गर्मी के दिनों में नदियों में अच्छा पानी नहीं होता और इनमें केवल शहरों और उद्योगों का गन्दा पानी ही बहता है।

टिप्पणी

नदी के किनारे ककड़ी, खीरा, खरबूजा, तरबूज और करेला जैसी फसलों की खेती का विस्तार हो रहा है। इनमें प्रयुक्त विषैले कीटनाशक सुगमता से नदी के जल को दूषित कर देते हैं।

हमारी नदियों में भू–अपरदन की दर अन्य देशों की तुलना में अधिक है। विश्व की समस्त नदियों में जितना जल बहता है, उसका 4 प्रतिशत भारतीय नदियों में बहता है। जबकि संपूर्ण विश्व में नदियों द्वारा जितना तलछट समुद्र में मिलता है, उनमें से 20 प्रतिशत से अधिक भारतीय नदियों की देन है। तलछट भी नदी के जल को प्रदूषित करते हैं और नदी जल में जमा हो जाने पर बाढ़ का मुख्य कारण बनते हैं।

भूगर्भ जल

सामान्यतः भूमि के नीचे का जल मीठा और साफ–सुथरा होता है। हैण्डपम्प और गहरे कुओं का पानी सीधे–सीधे, बिना शुद्धीकरण के ही प्रयोग किया जाता है। मिट्टी और चट्टानों की कई मीटर गहरी पर्त के बाद ही साफ–सुथरा जल मिलता है। इतनी गहराई तक प्रदूषण तत्वों का पहुँचना कठिन है, क्योंकि मिट्टी की ऊपरी परत में अनेक प्रकार के अच्छे बैक्टीरिया होते हैं जो प्रदूषणकारी तत्वों को विखंडित कर डालते हैं। दूसरे, प्रदूषणकारी तत्व मिट्टी से अनेक प्रकार की प्रतिक्रिया के पश्चात् प्रभावहीन हो जाते हैं। परन्तु आज के समय में बहुत से स्थिर रसायनों और भारी धातुओं के यौगिकों का प्रयोग बढ़ रहा है। ये रसायन व धातु न तो बैक्टीरिया से प्रभावित होते हैं और न ही मिट्टी से प्रतिक्रिया करते हैं। ऐसे पदार्थ भूमि में पानी के रिसाव के साथ भू–जल तक पहुँच जाते हैं और उसे प्रदूषित करते हैं।

जल प्रदूषण के स्रोत (Source of Water Pollution)

जल प्रदूषण के स्रोत निम्न हैं–

1. **प्राकृतिक** : यह प्रदूषण अचानक हो जाता है। हवा में गैसों या धूल के कणों का वर्षा के पानी में मिल जाना, जमीन पर गिरे पानी में सिल्ट का मिल जाना, बर्फ के पिघलने पर उसमें मिल जाना, जमीन पर मिट्टी के पानी में घुल जाना। सब प्राकृतिक जल प्रदूषण के स्रोत हैं।
2. **वाहित जल** : नगरों व कस्बों के मकानों से निकला मल–मूत्र, कूड़ा, कचरा, नालों व नदियों के द्वारा तालाबों व झीलों में पहुँचा दिया जाता है। इससे जल प्रदूषण होता है।
3. **घरेलू अपमार्जक** : निवास स्थानों या अन्य स्थानों में बर्तन साफ करने में प्रयुक्त विम, नहाने तथा कपड़े धोने में प्रयुक्त साबुन अपमार्जक जल के साथ नदियों व नालों से होते हुए, तालाबों, झीलों में जल प्रदूषण हो जाता है।
4. **उद्योगों से अपशिष्ट रासायनिक पदार्थ** : विभिन्न प्रकार के उद्योगों से जिनकी संख्या सभ्यता के साथ–साथ बढ़ रही है, का निकाय हो जाता है। सीसा, पारा इत्यादि के अकार्बनिक व कार्बनिक आदि रासायनिक पदार्थ अपशिष्ट के रूप में जल को प्रदूषित करते हैं।
5. **कृषि उपयोगी पदार्थों का जल में मिलना** : अब अधिक उपज लेने के लिए खेतों में कीटनाशक, जीवाणुनाशक, कवकनाशी, खरपतवारनाशी का प्रयोग करने

टिप्पणी

से इन पदार्थों का अधिकांश भाग मिट्टी में मिल जाता है जो कि बाहर नदी–नालों में पहुँच जाता है। इस प्रकार जल प्रदूषित हो जाता है।

6. **सीवेज** : नगरों में मकानों से निकला मल–मूत्र तथा कूड़ा–करकट, भूमिगत नालियों द्वारा नदियों व झीलों में गिराया जाता है। इसी प्रकार कारखानों द्वारा विसर्जित पदार्थ नदियों के जल में मिलते रहते हैं। इस प्रकार नदियों का जल प्रदूषित होता रहता है। यूरीन (Urine) में यूरिया होता है, जो जल के साथ मिश्रित होकर NH_3 उत्पन्न करता है। अन्य पदार्थों के अपघटन से नाइट्रोजनी पदार्थ बनते हैं, जिससे जल प्रदूषित हो जाता है और ऐसा जल पीने योग्य नहीं होता है, क्योंकि इससे अनेकानेक रोगों के प्रसारित होने का भय रहता है। सीवेज में कार्बनिक पदार्थों की प्रचुर मात्रा होती है। जीवाणुओं द्वारा कार्बनिक पदार्थों का अपघटन हो जाता है, जिससे B.O.D. बढ़ जाती है।

   प्रायः घरों से निकले गन्दे पदार्थों वाले जल की जैविक ऑक्सीजन मांग (Biological Oxygen Demand/B.O.D.) 200.–400 P.P.M. होती है, जबकि स्वच्छ जल के लिए बी.ओ.डी. काफी कम होती है। जब सीवेज की मात्रा जलाशय में मिश्रित हो जाती है, तो जल में O_2 की कमी हो जाती है, क्योंकि जीवाणु वांछित मात्रा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों का ऑक्सीकरण करते हैं, जिसमें ऑक्सीजन उपयोगी होती है और जल दुर्गन्धपूर्ण हो जाता है, जिससे संक्रामक रोग प्रसारित होने की संभावना बढ़ जाती है, साथ ही जल में रहने वाले जीव भी नष्ट हो जाते हैं।

7. **कीटाणुनाशक एवं अपतृणनाशक** : अनेक प्रकार के अवांछनीय जीवों को नष्ट करने के लिए विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थ काम में लाये जाते हैं जैसे– डी.डी.टी. (D.D.T.) फीनॉल (Phenol), मिथोक्सीक्लोर (Methoxychlor), गंधक चूर्ण (Sulphure Powder), क्लोरीन (Chlorine), सल्फर डाई ऑक्साइड (Sulphure di Oxide), फॉर्मेल्डीहाइड (Formaldehyde), कपूर (Cauphor), टॉक्साफीन (Toxaphene), हेप्टाक्लोर (Heptachlor) आदि। ये पदार्थ जिस प्रकार के जीवों को नष्ट करने के काम में लाये जाते हैं, उसी के अनुसार इनका नाम होता है। जैसे–कीटों को नष्ट करने के लिए इन्हें कीटनाशी (Insecticides), कवकों को नष्ट करने के लिए इन्हें कवकनाशी (Fungicides), खरपतवारों (Weeds) को नष्ट करने के लिए अपतृणनाशी (Weedicides) आदि कहते हैं तथा ये सभी उस प्रकार के रासायनिक पदार्थ होते हैं। ये पदार्थ जल को पौधों आदि में पहुँचाकर जन्तुओं तथा मनुष्यों के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। ये पदार्थ अपघटनकर्ताओं (Decomposes) को नष्ट करके भूमि की उर्वरता को घटाते हैं।

8. **रेडियोधर्मी पदार्थ** : परमाणु बमों के विस्फोटों तथा उसी प्रकार के अन्य परीक्षणों से उत्पन्न रेडियोएक्टिव पदार्थ वातावरण में मिलकर इसे प्रदूषित करते हैं। यहाँ से पौधों में, जन्तुओं के दूध व माँस में, फिर मनुष्य के शरीर में पहुँच जाते हैं। ये अनेक प्रकार के रोग विशेषकर कैंसर व त्वचा रोग उत्पन्न करते हैं। जीन्स (Genes) का उत्परिवर्तन हो जाने से संतानें भी रोगग्रस्त अपंग जन्म लेती हैं।

जल प्रदूषण के प्रकार

टिप्पणी

जल प्रदूषण को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. भौतिक प्रदूषण
2. रासायनिक प्रदूषण
3. जैविक प्रदूषण

1. भौतिक प्रदूषण : भौतिक प्रदूषण निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

- **तापीय प्रदूषण** : बिजलीघरों तथा औद्योगिक संयंत्रों को ठंडा करने के लिए जल का उपयोग किया जाता है, जो कि गर्म जल के रूप में बाहर आता है। इस तापमान वृद्धि के परिणामस्वरूप उनकी जैविक सक्रियता एवं जैव रासायनिक ऑक्सीजन की आवश्यकता बढ़ सकती है। स्पष्ट है कि जल की ताप वृद्धि के कारण उसमें घुली ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। जिसके कारण यह जल मछली तथा अन्य उपयोगी जलीय जन्तुओं के लिए उपयोगी नहीं रहता है।
- **रंग** : प्राकृतिक जल विभिन्न स्थानों एवं पेड़ पौधों से होता हुआ आता है, अतः इसमें हल्के भूरे रंग की झलक मिलती है, परन्तु विभिन्न प्रकार के कल–कारखानों से निकलने वाले रंगीन जल में अनेक अशुद्धियाँ होती हैं। इस कृत्रिम एवं प्राकृतिक रंगीन पदार्थों को पृथक करने के लिए जल को सक्रियता चारकोल की मोटी सतह से गुजारा जाता है।
- **स्वाद एवं गंध** : सार्वजनिक स्वास्थ्य के अनुसार यदि जल अप्रिय गंध या स्वाद का हो, तो उसे पेयजल के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। अनेक मनुष्य जल में विद्यमान 0.1 मिग्रा./लीटर क्लोरीन, 0.1 मिग्रा/लीटर अपमार्जक तथा 0.0002 मिग्रा/लीटर फीनॉल की मात्रा को स्वाद से ही जान पाते हैं। कुछ शैवाल भी जल के स्वाद एवं गंध को अप्रिय बनाते हैं, अतः इस प्रकार के जल को खाद्य–पदार्थों में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। यदि अप्रिय गंध एवं स्वाद युक्त जल को सक्रिय चारकोल में से प्रवाहित किया जाए तो वह पेय जल के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।
- **आग** : अपमार्जक एवं अन्य पदार्थ, जिनका पृष्ठ तनाव जल से कम होता है, आग उत्पन्न करते हैं। कागज बनाने वाले कारखानों से निकलने वाला जल, संश्लेषित अपमार्जकों के उपयोग आदि से आग की समस्या उत्पन्न होती है। झागयुक्त जल में ठोस निलंबित पदार्थ, जीवाणु आदि विद्यमान होते हैं, जिनसे जल विषैला हो जाता है।
- **निलंबित पदार्थ** : जल में विद्यमान गंदगी भी जल को प्रदूषित करती है। यह गंदगी जल में विद्यमान निलंबित पदार्थों के कारण होती है। इस प्रकार के जल में सूर्य का प्रकाश पूर्ण रूप से न पहुँच पाने के कारण जलीय–जीवाणुओं की सामान्य वृद्धि कम हो जाती है। इस प्रकार के जल को पर्याप्त समय के लिए एक ही स्थान पर एकत्रित रखा जाए तो निलंबित पदार्थ पात्र की सतह में बैठ जाते हैं।

टिप्पणी

2. **रासायनिक प्रदूषण** : जल में अनेक स्रोतों से विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थ मिल जाते हैं जो कि जल को प्रदूषित करते हैं। ये रासायनिक पदार्थ अकार्बनिक या कार्बनिक हो सकते हैं जो निम्नांकित हैं–

- **अकार्बनिक प्रदूषण** : जल में विद्यमान अम्ल, क्षार, घुलनशील एवं अघुलनशील लवणों के कारण हुए प्रदूषण को अकार्बनिक प्रदूषण कहते हैं जो इस प्रकार हैं–

  (a) अम्ल एवं क्षार– विभिन्न कल–कारखानों से गंधक का अम्ल जल में मिलता है तथा कपड़ा उद्योग एवं चर्म शोधन कारखानों से क्षार जल में मिल जाते हैं, जिसके कारण जलीय जीव–जन्तु समाप्त होने लगते हैं तथा धातु के पात्रों का संरक्षण होने लगता है। अम्ल युक्त जल से सड़े हुए अंडों जैसी गंध आती है।

  (b) घुलनशील लवण : सामान्यतया जल में घुलनशील लवण (सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, मैंगनीज एवं लोहे के क्लोराइड, नाइट्रेट, नाइट्राइट, बाइकार्बोनेट, सल्फेट तथा फॉस्फेट) विद्यमान होते हैं। जब ये लवण एक निश्चित सीमा से अधिक मात्रा में विद्यमान होते हैं, तो यह प्रदूषित जल कहलाता है। यदि जल में कैल्शियम तथा मैग्नीशियम के लवण अधिक मात्रा में हों तो इसे कठोर जल कहा जाता है। यह जल कारखानों विशेषकर बॉयलर में भी प्रयुक्त नहीं हो सकता है। यदि जल में सल्फेट या सल्फाइडों की मात्रा अधिक हो तो वह धातुओं का संरक्षण तीव्रता से करता है तथा सान्द्रण पर गंधक का अम्ल बनाता है।

  (c) अघुलनशील लवण : अनेक कारखानों की मिट्टी में कैल्शियम कार्बोनेट, सल्फेट आदि के महीन कण निकलते हैं, जो जल को प्रदूषित करते हैं।

- **कार्बनिक प्रदूषण** : अनेक कार्बनिक यौगिक जैसे– कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, वसीय अम्ल, अपमार्जक, पीड़कनाशी आदि कार्बनिक प्रदूषण कहलाते हैं, क्योंकि जब ये यौगिक जल में विद्यमान होते हैं तो मृदा, जल तथा सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा विघटन होता है, जिसमें ऑक्सीजन प्रयुक्त होती है। अर्थात् इस प्रक्रम के परिणामस्वरूप जल में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। अतः ऐसा जल जलीय–जन्तुओं के लिए उपयुक्त नहीं रह जाता। सामान्यतः ऐसे प्रदूषक खाद्य–पदार्थ, शराब, चीनी, घरेलू सामान बनाने वाले कारखानों से अपशिष्ट पदार्थ के रूप में निकलते हैं। कोयले की भट्टियों से निकलने वाले विषैले रासायनिक पदार्थ जैसे–फीनॉल, कार्बन मोनोऑक्साइड आदि सभी प्रकार के जीव–जन्तुओं के लिए घातक हैं।

3. **जैविक प्रदूषण** : जल में बैक्टीरिया, वायरस, शैवाल, फफूंद, परजीवी आदि की उपस्थिति से भी जल प्रदूषित हो जाता है। इसके साथ–साथ जल में अवांछित पौधे या जीव–जन्तु भी जल को प्रदूषित करते हैं। इस प्रकार का प्रदूषण औद्योगिक अपशिष्ट, कृषि रसायन, वांछित मल की उपस्थिति के कारण होता

टिप्पणी

है। इस प्रकार के प्रदूषित जल का भोजन के साथ सेवन करने से अनेक प्रकार की बीमारियों हेतु उत्तरदायी जैविक प्रदूषणों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

- **वायरस** : वाहित मल, प्रदूषित जल में वायरस पाए जाते हैं। जो अनेकानेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।
- **अपतृण** : जब खेतों से खाद बहकर जल में मिलती है तो विभिन्न प्रकार के अपतृण उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे कि जल में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। कुछ शैवाल तो पशुओं के लिए विषैले होते हैं। भारतवर्ष में अनेक भागों में अपतृण की गंभीर समस्या बनी हुई है।
- **परजीवी** : परजीवी युक्त जल के सेवन से मनुष्य में अनेक प्रकार के रोग (यकृत विकृति, पेचिश, चर्म रोग) हो जाते हैं। कृत्रिम झीलों, पानी के टैंकों आदि में परजीवी तीव्र गति से वृद्धि करते हैं। इस प्रकार के जल से पेट में कीड़े हो जाते हैं।
- **रोग वाहक कीड़े** : जिस स्थान पर जल रुका हुआ रहता है तथा प्रदूषित होता है। वहाँ अनेक प्रकार के कीड़े, मच्छर, मक्खी आदि उत्पन्न होते हैं, जिससे अनेक गंभीर रोग होते हैं।

अनुमान है कि विकासशील देश अपनी आबादी व जल प्रदूषण के कारण अनेक रोगों की चपेट में हैं। ऐसे जल में कृमि, अमीबा, बैक्टीरिया और वायरस बड़ी मात्रा में निवास करते हैं तथा उपयोग करने वाली जनसंख्या को अपना शिकार बना लेते हैं। संक्रमित व्यक्ति के मलमूत्र के साथ ये जल में पहुँच जाते हैं तथा अन्य लोगों तक संक्रमण पहुँचाते हैं। इस प्रकार रोगों का चक्र चलता रहता है। विश्व में प्रतिवर्ष 150 करोड़ बच्चों को डायरिया होता है और 40 लाख बच्चों की मृत्यु हो जाती है।

प्रदूषित जल के कारण होने वाले रोगों से प्रभावित विकासशील देशों की आबादी

क्र.सं.	रोग	प्रभावित आबादी (प्रतिवर्ष)	मृत्यु प्रतिवर्ष
1.	हैजा	100 करोड़	20 लाख
2.	डायरिया	150 करोड़	40 लाख
3.	टाइफाइड	5 लाख़	25 हजार
4.	पोलियोमाईटिस	2.5 लाख़	25 हजार
5.	राउंडवर्ग	100 करोड़	20 हजार
6.	ट्राकोमा	90 लाख	–
7.	लीश्मानियासिस	1.2 करोड़	–
8.	शिस्टोसोनियासिसि	20 करोड़	2 लाख
9.	गीनिया वर्ग	1 करोड़	–
10.	स्लीपिंग सिकनेस	20 हजाऱ	–

टिप्पणी

11.	फाइलेरिया	90 करोड़	—
12.	मलेरिया	27 करोड़	20 लाख
13.	फीवर ब्लाइंडनेस	2 करोड़	50 हजार
14.	यलो फीवर	25 हजार	—
15.	डेंगू फीवर	6 करोड़	—

स्रोत– विश्व स्वास्थ्य संगठन

औद्योगिक कचरे और अनुपचारित बहिस्राव में सामान्य प्रदूषक तत्वों के अतिरिक्त भारी धातुएँ और जहरीले रसायन भी हो सकते हैं, जिससे जल जहरीला होने के साथ ही प्रदूषित भी हो जाता है। विभिन्न रसायनों का स्वास्थ्य तथा जलीय जीव पर प्रभाव भी भिन्न–भिन्न पड़ता है।

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा ताजे पानी के विभिन्न उपयोगों के लिए निर्धारित प्राथमिक जल गुणवत्ता मापदण्ड

क्र.सं.	पैरामीटर	निर्धारित जल प्रयोग				
		क	ख	ग	घ	ङ
1.	पी.एच. मूल्य	6.5–8.5	6.5–8.5	6.0–9.0	6.5–8.5	6.5–8.5
2.	घुलित ऑक्सीजन (मिग्रा./ली.) न्यूनतम	6.0	5.0	4.0	4.0	—
3.	जैव रासायनिक ऑक्सीजन मांग (मिग्रा./ली.) अधिकतम	2.0	3.0	3.0	6.0	—
4.	कुल कोलीफॉर्म (एम.पी.एम. 100 मिली.) अधिकतम	50	500	5000	5000	—
5.	बोरान (मिग्रा./ली.) अधिकतम	—	—	—	—	2.0
6.	मुक्त अमोनिया (एन) (मिग्रा./ली.) अधिकतम	—	—	—	1.2	—

संकेतार्थ :

(क) बिना परम्परागत उपचार के, परंतु रोगाणु विनाश के पश्चात्।

(ख) सीधे (आयोजन) स्नान योग्य।

(ग) पेयजल स्रोत परम्परागत उपचार के पश्चात्।

(घ) मत्सय एवं जलीय जन्तुओं के संवर्धन योग्य।

(ङ) सिंचाई, औद्योगिक प्रशीतन एवं नियंत्रित बेकार पानी।

कुछ औद्योगिक प्रदूषण तत्वों के प्रभाव

क्र.सं.	प्रदूषणकारी अवयव	प्रभाव
1.	अम्ल	• धातु वर्ग वस्तुओं पर प्रभाव • दुर्गन्धपूर्ण हाइड्रोजन सल्फाइड गैस का बनना • सूक्ष्म जीवों का विनाश • मानव तथा मवेशियों के स्वास्थ्य पर प्रभाव

टिप्पणी

2.	क्षार	• सूक्ष्म जीवों और मछलियों का विनाश • मानव तथा मवेशियों के स्वास्थ्य पर प्रभाव
3.	अवलंबित पदार्थ	• प्रकाश संश्लेषण में व्यवधान • मछलियों को हानि • बदबूदार पदार्थों का बनना
4.	विषैली धातु	• प्रजनन क्रिया में व्यवधान • कैंसर व अन्य रोग • सूक्ष्मजीवों और मछलियों का विनाश
5.	कीटनाशक	• बड़ी मात्रा में मछलियों का मरना • पादप प्लवक का नाश • कैंसर व अन्य रोग
6.	रंग	• जल को रंगीन और विषाक्त करना
7.	तंत्र	• जल की स्वयं शुद्धता क्षमता का नाश • मछलियों को हानि • जल मानव उपयोग हेतु स्वास्थ्यकर नहीं रहता

जल प्रदूषण की रोकथाम के उपाय (Remedies to Control the Water Pollution)

जल प्रदूषण आबादी बढ़ने के साथ–साथ प्रतिदिन बढ़ता जाता है। इसको कम करके, रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय अधिक कारगर ढंग से किये जाने चाहिए–

वाहित मल शुद्धीकरण (Sewage treatment) : घरों, कारखानों आदि स्थानों से अपमार्जक पदार्थ, विषैले पदार्थ, मल–मूत्र आदि के द्वारा नदियों, तालाबों या समुद्र के जल में मिलने वाले पहले शुद्ध कर लिये जाएं ताकि ये जल के पारिस्थितिक तन्त्र को नष्ट–भ्रष्ट न कर दें। वाहित मल का शुद्धीकरण प्रमुखतः दो प्रकार से किया जाता है– (क) भौतिक (ख) जैविक शुद्धीकरण।

भौतिक शुद्धीकरण को कई पदों पर किया जाता है–

(i) छानना : विशेष प्रकार के छन्नों के द्वारा गन्दगी को छान लिया जाता है। इस पद द्वारा मोटी गन्दगी छानकर अलग कर ली जाती है।

(ii) स्थिरीकरण : अकार्बनिक गन्दगी वाहित मल को स्थिर करने पर बैठ जाती है। गन्दे जल में वे सभी पदार्थ उपस्थित होते हैं, जिनकी आवश्यकता इन शैवालों के ठीक से पनपने के लिए होती है। इनके प्रयोग के लिए कुछ जीवाणु इन अपेक्षाकृत जटिल पदार्थों को ऑक्सीकृत करने में सहायक होते हैं, जिनको ऑक्सीकरण ताल या स्थिरीकरण ताल कहते हैं।

वाहित मल का विसर्जन : गन्दे जल या वाहित मल आदि नदियों में डालते ही उसको आबादी वाले स्थानों से अलग ले जाकर डालना चाहिए। ऐसी झीलों, तालाबों आदि का जल काम में नहीं लाना चाहिए जिसमें इस प्रकार के पदार्थ मिलते हैं।

टिप्पणी

स्वतः : वाहनों से निकले धुएं से बचने के लिए रहने के मकान सड़कों से कुछ दूरी पर बनाये जाने का विचार उत्तम है। इस प्रकार धूल तथा धुएं से बचा जा सकेगा।

गोबर कूड़ा–करकट कम्पोस्ट : कचरे व गोबर आदि को गड्ढे में एकत्रित किया जा सकता है। इससे अच्छे प्रकार की खाद भी उपलब्ध हो सकेगी।

रेडियोधर्मी विकिरण के प्रभाव : इससे बचने के लिए परमाणु विस्फोटों पर प्रतिबंध लगाया जाता है। रेडियोधर्मी पदार्थों के विसर्जन के लिए कुछ नई युक्तियां निकाली गई हैं। इन पदार्थों से निपटने के लिए समुद्र ही उपयुक्त माना गया है। भूकम्प के झटकों से और कीचड़ आदि के एकत्रित होते रहने से यह भाग पृथ्वी के गर्भ में समाता चला जाता है।

जल प्रदूषण का मानव जीवन, पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं एवं धातुओं पर प्रभाव (Effectss of Water Pollution on Human Life, Animal, Plants and Metals)

जल प्रदूषण से मानव, जीव–जन्तु एवं वनस्पति आदि का क्षय धीरे–धीरे होता रहता है। मानव स्वास्थ्य के लिये प्रदूषित जल में पाए जाने वाले (पैथोजनिक) जो घरेलू सीवेज में होते हैं। पेड़–पौधों को प्रदूषित जल मिलने से उनकी प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया रुक जाती है। साथ–साथ पेड़–पौधों को प्रदूषित जल मिलने से उनकी प्रकाश प्रक्रिया रुक जाती है। वृक्षों का विकास रुक जाता है। साथ–साथ नदियों, तालाबों का दूषित जल ग्रहण करने से उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रदूषित जल सम्पत्ति को भी नुकसान पहुँचाता है। वर्षा समय पर न होना, अधिक गर्मी या सर्दी का होना आदि का पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त नगरपालिका या उद्योग जिसमें प्राकृतिक पानी का उपयोग हो रहा है, यदि जल प्रदूषित है तो उसके उपचार पर काफी व्यय हो जाता है। ऐसे जल से ठोस, कुस्वाद रंग, गंध, कठोरता तथा अन्य रसायन दूर किये जाते हैं।

घरेलू मल–जल में कार्बनिक पदार्थों और कोलीफॉर्म बैक्टीरिया की मात्रा अधिक होती है। जब ऐसा मल–जल बिना उपचारित हुए नदी में प्रवाहित होता है, तो कार्बनिक पदार्थों का तेजी से ऑक्सीकरण होता है। ऑक्सीकरण का कार्य अनेक प्रकार के बैक्टीरिया ऑक्सीजन की उपस्थिति में करते हैं। जल में ऑक्सीजन सुगमता से नहीं घुलती है, पर यह समस्त जलीय जीवों के लिए आवश्यक है। कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति में बैक्टीरिया सक्रिय हो जाते हैं और ऑक्सीकरण की प्रक्रिया में जल में उपस्थित ऑक्सीजन की खपत कर डालते हैं। यदि जल में कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में होते हैं तो जल में ऑक्सीजन की मात्रा इस सीमा तक हो जाती है कि जलीय जीव नष्ट हो जाते हैं। दूसरी ओर कोलीफार्म बैक्टीरिया स्वयं तो अधिक नुकसान नहीं पहुँचाते हैं, पर इनके साथ–साथ रोगों के बैक्टीरिया भी रहते हैं। ऐसे पानी के सीधे सेवन से असंख्य रोग हो सकते हैं। मानव और जानवरों के मल नदी तक पहुँचने से उनमें बैक्टीरिया की संख्या अधिक हो जाती है और रोग फैलने का खतरा बढ़ जाता है। प्रदूषित जल से होने वाले अधिकतर रोग संचारी होते हैं। इन रोगों का सामान्य वर्गीकरण इस प्रकार है–

- **पानी से जनित रोग** : मानव या पशु मल–मूत्र से प्रदूषित पानी का खाना बनाने में उपयोग पर होने वाले रोग हैं–डायरिया, हैजा, टाइफाइड और आँत शोध।

टिप्पणी

- **पानी के प्रयोग से होने वाले रोग** : प्रदूषित जल से नहाने से चर्म रोग, बालों के रोग तथा आँखों के रोग हो जाते हैं।
- **पानी पर आधारित रोग** : प्रदूषित जल के एक स्थान पर एकत्रित होने के कारण मच्छरों, मक्खियों और कीड़ों की संख्या बढ़ने से मलेरिया, फाइलेरिया, डेंगू, यलो फीवर तथा इंसेफलाइटिस रोग हो जाते हैं।

जल प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

- जल स्रोतों के आस–पास गन्दगी करने, उसमें नहाने, कपड़े धोने तथा जानवरों को नहलाने आदि को रोका जाना चाहिए।
- घरेलू प्रयोजनों में से निकलने वाले मल–जल आदि को एकत्रित कर शुद्धीकरण संयंत्रों से पूर्ण शोधित करने के पश्चात् ही जल स्रोतों में मानकों के अनुरूप डाला जाना चाहिए।
- जल को उबालकर छानने के पश्चात् तथा कुओं में लाल दवा (पोटेशियम परमैंगनेट) या क्लोरीन टिकिया डालकर ही प्रयोग में लाना चाहिए।
- नदियों में शवों व अधजले शवों को न बहाया जाए। इसके लिए बिजली व विकसित लकड़ी निर्मित शवदाह गृहों का उपयोग करना चाहिए।
- स्वच्छ प्रौद्योगिकी को अपनाकर घरेलू औद्योगिक कचरे का उपयोग बायोगैस ऊर्जा, खाद, बिजली एवं अन्य वस्तुओं के निर्माण में किया जाना चाहिए।
- औद्योगिक उत्प्रवाह के शुद्धीकरण हेतु जल प्रदूषण नियंत्रण संयंत्र स्थापित कर प्रभावी तरीके से नियमित संचालन के पश्चात् मानकों के अनुरूप निस्तारित किया जाना चाहिए।
- उद्योगों की स्थापना के लिए स्थान के विवेकपूर्ण चयन से प्रदूषण नियंत्रण की आवश्यकताओं में कमी लाई जानी चाहिए।
- कृषि तथा उद्योगों में बेकार पानी के पुनरुपयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- जल संरक्षण के उद्देश्य से पानी के प्रयोग और दूषित जल की निकासी के संबंध में कठोर अनुशासन लागू किया जाना चाहिए।

वायु प्रदूषण (Air Pollution)

वायु प्रदूषण का अर्थ है, बाह्य वातावरण में किसी एक अथवा अधिक संदूषकों (धूल, धुआं, गैस, कोहरा, दुर्गन्ध अथवा वाष्प) की उपस्थिति जो मानव, पेड़–पौधों अथवा जीव–जन्तुओं के जीवन एवं सम्पदा के लिए हानिकारक हो।

वायु के अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए शुद्ध व स्वच्छ वायु की आवश्यकता होती है, परंतु आज के समय में यह दुर्लभ होती जा रही है। पृथ्वी के वायुमंडल में 6 लाख अरब टन वायु उपस्थित है। एक सामान्य स्वस्थ व्यक्ति एक दिन में बाईस हजार बार सांस लेता है अर्थात् 35 पाउंड हवा प्रतिदिन प्रयोग करता है। जितना खाना या जल प्रतिदिन उसे चाहिए उससे यह मात्रा कहीं अधिक है। एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति 50 लाख लीटर हवा प्रतिवर्ष सांस लेकर अपने फेफड़ों से निष्कासित करता है। प्रत्येक मानव यही कार्य करता है– सांस लेना और हवा को दूषित करना। जीवाश्म ईंधनों के अत्यधिक प्रयोग विभिन्न प्रकार के वाहनों

टिप्पणी

का उत्सर्जन और उद्योगों की चिमनी से निकलता धुआं इत्यादि वायु प्रदूषण के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं। वायु–प्रदूषण समस्त प्रकार के प्रदूषणों में सर्वाधिक हानिकारक है, क्योंकि सामान्य व्यक्ति प्रतिदिन भोजन, जल इत्यादि से कई गुना अधिक वायु का प्रयोग करता है। अतः यदि वायु प्रदूषित होती है तो प्रदूषकों की मनुष्य के शरीर में पहुँचने वाली मात्रा दूसरे प्रकार के प्रदूषकों से बहुत अधिक होती है। यह प्रभाव बच्चों के स्वास्थ्य पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव डालता है क्योंकि उनका वायु उपयोग वयस्कों के मुकाबले अधिक होता है। यद्यपि कुछ प्राकृतिक क्रियाएँ (आँधी, जंगली आग, ज्वालामुखी इत्यादि) वायु प्रदूषण को बढ़ाती हैं परन्तु ये कभी–कभी ही होती हैं और क्षेत्र विशेष तक ही सीमित रहती हैं। वैसे इन आपदाओं के प्रभावों को संतुलित करने की क्षमता स्वयं वायुमंडल में होती है।

वायु में O_2, CO_2, Ar, Ne, H_2, He मीथेन (Methane) आदि की मात्रा निश्चित होती है, जो मनुष्य जीवन के लिए उपयोगी होती है। यदि किन्हीं कारणों से उनकी निश्चित मात्राओं में परिवर्तन हो जाए तब ये हानिकारक प्रभाव डालते हैं। यह वायु प्रदूषण कहलाता है। वायुमण्डल में जीवधारी ऑक्सीजन तथा कार्बन–डाई ऑक्साइड की मात्रा सन्तुलित रखते हैं। श्वसन में सभी जीव कार्बन डाई ऑक्साइड निकालते हैं। किन्तु हरे पेड़–पौधे सूर्य के प्रकाश से कार्बन डाई ऑक्साइड का उपयोग कर ऑक्सीजन वायु में डालते हैं।

वायु प्रदूषण के कारण (Causes of Air Pollution)

1. **धुआं तथा ग्रिट के कारण** (Stroke and Grit) : ताप बिजलीघर, कारखानों की चिमनियाँ और घरेलू ईंधन को जलाने से धुआं निकलता है। घरों से मुक्त रूप से बिना जला हुआ कार्बन, डाइड्रोकार्बन, CO_2, CO आदि निकलते हैं जो वायु में मिलकर वायु को दूषित करते हैं।
2. **कृषि कार्यों के कारण** : फसलों को कीट–पतंगों आदि से बचाने के लिए कीटनाशक दवाइयों का छिड़काव किया जाता है। इस छिड़काव से विषैले रसायन, वाष्प और सूक्ष्म कणों के रूप में वायुमण्डल के विस्तृत क्षेत्र में फैलकर वातावरण को दूषित करते हैं।
3. **प्रॉटोमोबाइल और मशीनों के कारण** : स्वचालित गाड़ियाँ, जैसे– बस, ट्रक, मोटर, तथा अनेक प्रकार की मशीनों आदि के चलाने में पेट्रोल, डीजल तथा मिट्टी का तेज ईंधन के रूप में प्रयोग होता है, जिनके जलाने में CO_2, CO, SO_2 तथा नाइट्रोजन के ऑक्साइड, सीसा और अन्य विषैली गैस उत्पन्न होती हैं।
4. **मृत जीव–जन्तुओं और मलमूत्र के कारण** : मृत जीव–जन्तुओं को यदि सही समय पर सही रूप से नष्ट न किया जाए तो इनके द्वारा ओजोन CO, SO_2, तथा क्लोराइड मुख्य रूप से उत्सर्जित होते हैं।
5. **धूल के कण** : लौह अयस्क और कोयले की खानों से उड़ती हुई धूल में कई विषैले खनिज होते हैं जिनसे अनेक प्रकार के रोग बढ़ते हैं।
6. **विलायकों के प्रयोग से** : फर्नीचर पॉलिश, स्प्रे, पेन्ट आदि के बनाने और प्रयोग करने में कई प्रकार के विलायकों का प्रयोग किया जाता है। जिनसे अधिकांश विलायकों में उड़नशील हाइड्रोकार्बनिक पदार्थ होते हैं, जोकि वाष्प

अथवा सूक्ष्म कणों के रूप में वायु में मिलकर वायु के मिश्रण में अवयवों की मात्रा में परिवर्तन करते हैं। जिससे वातावरण प्रदूषित होता है।

टिप्पणी

वायु प्रदूषकों के प्रकार (Types of Air Pollutants)

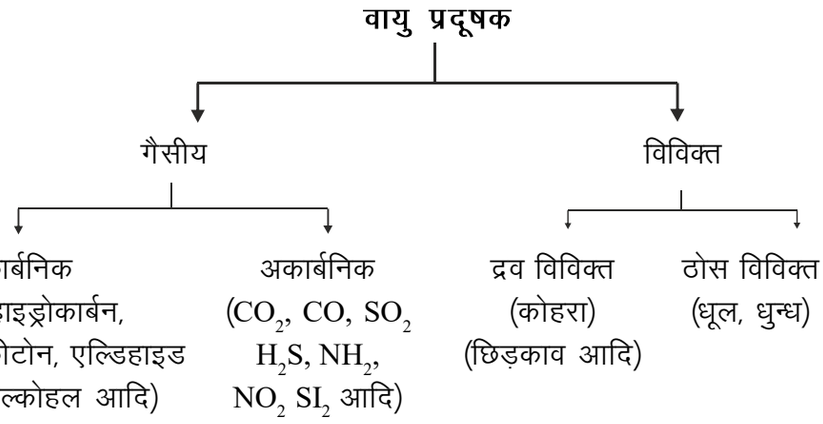

प्रकृति में वायु के अवयवों की संतुलित अवस्था में कोई भी अवांछनीय परिवर्तन हो जाए तथा इसके फलस्वरूप जीव–जन्तुओं, पेड़–पौधों, भवनों तथा अन्य वस्तुओं पर हानिकारक प्रभाव हो तो यह वायु प्रदूषण कहलाता है।

1. **गैसीय प्रदूषक (Air Pollutants)** : वायु में मिश्रित वे प्रदूषक हैं जो कि गैसीय अवस्था में होते हैं। नीचे नहीं बैठते हैं। उन्हें गैसीय प्रदूषक कहा जाता है।
2. **विविक्त प्रदूषक (Particulate Pollutants)** : वायु में मिश्रित वे प्रदूषक हैं जोकि द्रव अथवा ठोस अवस्था में होते हैं तथा कुछ समय बाद पृथ्वी की सतह पर आ जाते हैं।
   - **(क) धूल (Dust)** : जब कल–कारखानों, घरों, खेतों तथा प्रकृति आदि से ठोस कण वायु मिश्रित हो जाते हैं तो धूल बनती है। वायु मिश्रित इन ठोस कणों की प्रकृति स्रोत पर निर्भर करती है। जब तेज हवाएँ चलती हैं तो मिट्टी के महीन कण वायु में मिलते हैं।
   - **(ख) धुआं (Smoke)** : कार्बन, राख, तेल आदि के महीन कणों से धुआं बनता है। ईंधन का पूर्ण दहन नहीं होता है अर्थात् दहन प्रक्रम में वायु (ऑक्सीजन) की कमी होती है, तो धुआं बनता है। धुएं की मात्रा ईंधन की प्रकृति पर निर्भर करती है।
   - **(ग) धूम (Fumes)** : विभिन्न रासायनिक एवं धातुकर्मी प्रक्रम जैसे ऊर्ध्वपातन (Sublimation), आवसन (Distillation), निस्तापन (Calcination) आदि से वाष्प के संघन के फलस्वरूप ठोस कण बनते हैं जो कि धूम बनाते हैं।
   - **(घ) धुन्ध (Smog)** : धुएं तथा कोहरे के संयोग से स्मोग बनता है। हम जानते हैं कि कोहरे का बनना एक प्राकृतिक परिवर्तन है, जिसमें जल के महीन कण वायु में निलम्बित रहते हैं।
   - **(ङ) ऐरोसॉल (Aerosols)** : जब वायु में विविध कण निलम्बित होते हैं तो ऐरोसॉल बनाते हैं। ये वायु में विद्यमान विषैली गैस को अवशोषित करते हैं, परन्तु वर्षा के समय ये कण भारी हो जाते हैं, जिससे मृदा प्रदूषण होता है।

टिप्पणी

वायु प्रदूषकों के स्रोत (Sources of Air Pollution)

वायु प्रदूषकों के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं–

1. **दहन प्रचालन** (Combustion Operation)
2. **औद्योगिक उत्सर्जन** (Industrial Emissions)
3. **सामाजिक क्रिया–कलाप** (Community Activities)

1. दहन प्रचालन : दहन प्रचालन से हमारा तात्पर्य कोयले, लकड़ी, तेल तथा विभिन्न पेट्रोलियम प्रभाव जैसे–डीजल, पेट्रोल, मिट्टी का तेल, मोम आदि के दहन (Combustion) से है। विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार का ईंधन प्रयुक्त किया जाता है। दहन प्रचालन शक्ति (Power) तथा गैस उत्पाद का प्रयोग घरेलू काम–काज, वाहनों को चलाने में तथा उद्योगों में किया जाता है। दहन प्रचालनों का वर्णन–

(i) तापीय बिजलीघर (Thermal Power Stations) : तापीय बिजलीघरों से मुख्यतः सल्फर डाइ ऑक्साइड (SO_2) गैस निकलती है। सौभाग्य से यह गैस क्रियाशील होने के कारण वायुमण्डल में कम समय तक ही रह पाती है। जिन बड़े नगरों में बड़े–बड़े तापीय बिजलीघर हैं। ये सब पेड़–पौधों के लिए हानिकारक हैं।

(ii) वायुयान (Aeroplanes) : वायुयानों में जलने वाला ईंधन भी सल्फर डाइ ऑक्साइड गैस देता है चूँकि यह गैस वायुमंडल के ऊपरी भाग से बनती है। यह जलवाष्प से अभिक्रमित करके सल्फ्यूरस अम्ल (H_2SO_3) बनाती है।

(iii) स्वचालित वाहन (Automobile Vehicles) : मोटर, स्कूटर आदि में पेट्रोल या डीजल का दहन किया जाता है। इन वाहनों से निकलने वाले धुएं में कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) की प्रतिशत मात्रा काफी अधिक होती है। जब श्वसन प्रक्रिया में यह गैस हमारे शरीर में प्रवेश करती है, तो रक्त के हीमोग्लोबिन (Hemoglobin) से संयोग करती है।

(iv) कोयले का दहन (Combustion of Cool) : घरेलू कार्य हेतु तथा भाप के इंजन में कोयला जलाया जाता है जिससे कार्बन मोनोऑक्साइड CO, नाइट्रोजन के आक्साइड NO, सल्फर डाइऑक्साइड SO_2 है।

2. औद्योगिक उत्सर्जन : विभिन्न प्रकार के कारखानों से विभिन्न प्रकार के प्रदूषक पदार्थ उत्सर्जित होते रहते हैं जो कि वायु को प्रदूषित करते हैं। यहाँ प्रमुख प्रकार के उद्योगों का वर्णन किया गया है–

(i) खाद (Fertilizer) : खाद बनाने वाले कारखाने नाइट्रोजन के ऑक्साइड तथा धूल के कण उत्सर्जित करते हैं। धूल के कण विभिन्न क्रमों जैसे अवयवों को पीसना, मिलाना, सुखाना, बोरे में भरना तथा ढोना, दहन, निष्पादन आदि के फलस्वरूप उत्सर्जित होते हैं। स्पष्ट है कि यूरिया बनाने वाले कारखानों से उत्सर्जित धूल के कणों में यूरिया होगा।

(ii) सीमेन्ट (Cement) : सीमेन्ट बनाने वाले कारखाने धूल के कण उत्सर्जित करते हैं जो कि मुख्यतया एल्युमीनियम, कैल्शियम, सोडियम, पोटेशियम सिलिकन के ऑक्साइड होते हैं।

टिप्पणी

(iii) खनिज अम्ल (Mineral Acids) : गंधक का अम्ल (सल्फ्यूरिक अम्ल H_2SO_4) शोरे का अम्ल (नाइट्रिक अम्ल = HNO_3) नमक का अम्ल (हाइड्रोक्लोरिक अम्ल = HC) तथा फास्फोरिक अम्ल (H_3PO_4) खनिज अम्ल कहलाते हैं।

3. सामाजिक क्रिया–कलाप : औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण के तेजी से विकास के कारण महानगरों में निवास की सुविधा बहुत कम है तथा उनकी दयनीय स्थिति हो गयी है। इसके परिणामस्वरूप निम्नलिखित प्रकार से प्रदूषण होता है–

(i) कम स्थान में अधिक परिवारों के रहने के कारण वायु प्रदूषण बहुत अधिक होता है, चूँकि ईंधन के रूप में प्रयुक्त होने वाली लकड़ी, गोबर के उपले, कोयला, गैस आदि के जलने से घरों के अंदर तथा बाहर की वायु में कार्बनमोनो ऑक्साइड, सल्फर डाइ ऑक्साइड, धूल के कण आदि मिल जाते हैं।

(ii) उपर्युक्त अभाव के कारण मल–मूत्र एवं घर के कूड़े–करकट के निपटाने (disposal) की भी समुचित व्यवस्था नहीं होती।

(iii) जब कम स्थान में अधिक व्यक्ति रहते हैं तो वहाँ पर ध्वनि (या शोर) प्रदूषण (Noise Pollution) भी अधिक होता है।

(iv) कम स्थान के कारण घरों में तथा घरों के निकटवर्ती स्थानों में पेड़–पौधे नहीं लगाए जाते जबकि मनुष्य के जीवन में पेड़–पौधे कार्बन डाई ऑक्साइड गैस का उपयोग नहीं कर पाते हैं।

(v) जिन स्थानों पर अधिक वाहन चलते हों तथा अधिक लीड पेंट (Lead Paints) का प्रयोग हो वहाँ तो वायु में भी प्रदूषण होता है।

वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव

स्वास्थ्य के अतिरिक्त वायु–प्रदूषण के अन्य जटिल दुष्प्रभाव हैं। सी.एफ.सी. वर्ग के रसायन वायुमंडल की ऊपरी पर्त में उपस्थित ओजोन गैस को क्षति पहुंचाते हैं, इससे पृथ्वी पर पराबैगनी किरणों का पहुंचना प्रारम्भ हो गया है। इन किरणों से कृषि और वनस्पति जगत पर अति दुष्कर प्रभाव पड़ने के साथ ही त्वचा के कैंसर में भी वृद्धि हो गई है।

सल्फर डाई–ऑक्साइड और नाइट्रोजन के ऑक्साइड वर्षा की बूंदों के साथ प्रतिक्रिया कर अम्लीय वर्षा कराने में सक्षम हैं। कार्बन डाई ऑक्साइड को प्रदूषणकारी गैस तो नहीं माना जाता, परन्तु इसकी सांद्रता अधिक होने पर वायुमंडल का औसत तापमान बढ़ सकता है। तापमान वृद्धि से हिमखंडों और पहाड़ों की चोटियों पर जमी बर्फ तेजी से पिघलती है, परिणामस्वरूप सागर तल में वृद्धि होने से विभिन्न प्रकार की तबाही आती है, इससे जलवायु और मौसम परिवर्तन की संभावना बढ़ जाती है।

वायु–प्रदूषण के दुष्परिणाम निम्नानुसार हैं–

(क) क्षेत्रीय प्रभाव : वायु–प्रदूषण से पर्यावरण तथा संपूर्ण जीव जगत विविध प्रकार से कुप्रभावित होता है। वायु–प्रदूषण का प्रभाव स्थानीय, क्षेत्रीय तथा विश्वव्यापी होता है। स्थानीय तथा प्रादेशिक मौसम पर इसका प्रभाव चार प्रकार से पड़ता है–

- द्रष्टव्यता पर प्रभाव
- सूर्य प्रकाश की सघनता पर प्रभाव
- जल वर्षा की मात्रा पर प्रभाव
- अम्ल वर्षा

टिप्पणी

(ख) विश्वव्यापी प्रभाव : वायु प्रदूषण के विश्वव्यापी प्रभावों (Global Effects) के अन्तर्गत प्रमुख प्रभाव निम्नलिखित होते हैं–

- प्राकृतिक जलवायु में परिवर्तन
- कार्बन डाई ऑक्साइड में वृद्धि
- विभिन्न प्रदूषक कणिकाओं में वृद्धि
- ओजोन परत का विरल और विघटन होना

वास्तव में वायु प्रदूषण आधुनिक युग की औद्योगिक तथा तकनीकी सम्पन्नता की एक ऐसी विशेष देन है जो न केवल पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी तंत्र को असंतुलित बनाती है, बल्कि अन्य अनेक हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करने के साथ ही मानव तथा अन्य जीवों तथा वनस्पति आदि के लिए भी संकट का कारण बनती जा रही है।

वायु प्रदूषण के प्रमुख प्रभाव

वायु प्रदूषण द्वारा होने वाले प्रमुख प्रभाव निम्नलिखित हैं–

- **मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव** : मानव अपने जीवन धारण के लिए वायु ग्रहण करता है और बाहर निकालता है। इसलिए यदि वायु में अशुद्धि है तथा इसमें प्रदूषक तत्वों का समावेश है तो वह शरीर में पहुंचकर विभिन्न प्रकार के भयंकर रोगों का कारण बनती है तथा मानव स्वास्थ्य को कुप्रभावित कर उसे विकृत करती है। ए.जे. डे विलियर्स के अनुसार, 'इसके पर्याप्त प्रमाण हैं कि स्वास्थ्य को वायुमण्डलीय प्रदूषण विविध मात्रा में विपरीत रूप से प्रभावित करता है। इससे मृत्यु दर में वृद्धि होती है, रोगों की संभावना अधिक होती है तथा अत्यधिक श्वास सम्बन्धी बीमारियां होने लगती हैं।

  'Sufficient evidences are available to indicate that atmospheric pollution in varying degrees does affect health adversely. It contributes to excess death, increased morbidity and the earlier onset of chronic respiratory diseases.)

  वायु–प्रदूषण सर्वाधिक मनुष्य के श्वसन तंत्र को प्रभावित करता है। इसमें दमा, श्वसनी, शोध, निमोनिया, आंखों में जलन, सिरदर्द और खांसी आदि बीमारियां हो जाती हैं। वायु में कार्बन मोनो ऑक्साइड की मात्रा अधिक होने पर यह रक्त के हीमोग्लोबिन में घुलकर कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन बना देती है, जिससे रक्त में ऑक्सीजन की कमी होने से मृत्यु तक की संभावना हो जाती है। पेट्रोल वाहनों के धुएं में उपस्थित सीसा, वायु, जल तथा भोजन द्वारा मानव शरीर में प्रवेश कर अनेक हानिकारक बीमारियों जैसे यकृत तथा वृक्क के ऊतकों की क्षति, आहार नाल की क्षति तथा बच्चों में मस्तिष्क और अस्थियों में अल्प विकास तथा प्रजनन की क्षमता पर विपरीत प्रभाव डालता है। वायु में सल्फर डाई ऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड तथा बहुकेन्द्रित हाइड्रोकार्बन, फुस्फुस, कैंसर, हृदय रोग, मधुमेह जैसी बीमारियों को बढ़ा देते हैं। सल्फर डाई ऑक्साइड से एम्फोटासीमा नामक प्राणलेवा बीमारी हो जाती

टिप्पणी

है जिससे अमेरिका में हजारों लोगों की अकाल मृत्यु हो जाती है। वायु में उपस्थित धूल तथा कोहरे के कारण सैकड़ों लोगों की मृत्यु हो जाती है।

प्रदूषित वायु के सेवन से मनुष्य तथा पशुओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, कुछ प्रमुख प्रदूषणकारी तत्वों के स्वास्थ्य पर प्रभाव निम्नलिखित हैं–

प्रदूषणकारी तत्व प्रभाव	स्वास्थ्य पर अल्पकालिक प्रभाव	संभावित दीर्घकालिक
कार्बन मोनो ऑक्साइड ऑक्सीजन ले जाने की	शरीर के तंतुओं पर प्रतिकूल प्रभाव, स्नायु दुर्बलता क्षमता तथा रक्त में उपस्थित हीमोग्लोबिन की क्षमता घट जाती है।	केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र पर दृष्टि शक्ति क्षीण होना, फुस्फुस के कार्य में परिवर्तन
नाइट्रोजन के ऑक्साइड	दर्द, खांसी	श्वास सम्बन्धी रोग, फुस्फुस की दीवार की कोशिकाओं में परिवर्तन
सल्फर डाई ऑक्साइड	दमा का आक्रमण	फुस्फुस की कार्य क्षमता घट जाती है।
धूल कण	अनेक रोगों से घिरने का खतरा	कैंसर
हाइड्रोकार्बन	दर्द, खांसी और आंखों में जलन	अनेक रोग
सीसा	शरीर पर जटिल प्रतिकूल प्रतिक्रिया बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव	लीवर और किडनी की क्षति प्रजनन क्षमता की हानि, शिशु को क्षति।

आंखों में मोतियाबिंद उत्पन्न कर अंधेपन को बढ़ाता है और जन्म जीवों तथा फसलों पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ता है।

- **हरित गृह प्रभाव** : वायुमण्डल के प्रदूषित होने और उसमें कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ने से यह सूर्य की किरणों को अवशोषित करती है तथा इस कारण से वायुमण्डल गर्म हो जाता है। यही हरित गृह प्रभाव कहलाता है। इससे तापमान में वृद्धि होती है तथा विगत पचास वर्षों में औसत तापमान एक डिग्री सेल्सियस बढ़ा है। यदि तापमान की वृद्धि दर यही रही तो हिमखण्ड पिघलकर समुद्र के जल–स्तर में वृद्धि करते हैं तथा समुद्र तट के निकटवर्ती द्वीपों और शहरों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है तथा अनेक स्थानों पर सूखे और अभाव की स्थितियां भी उत्पन्न हो जाती हैं।
- **क्षेत्रीय व स्थानीय मौसम पर प्रभाव** : क्षेत्रीय व स्थानीय मौसम पर वायु–प्रदूषण का अधिक प्रभाव पड़ता है। इससे बादलों का तापमान तथा वर्षा भी प्रभावित होती है। कोहरे के गुम्बदों के बनने से अनेक कुप्रभाव पड़ते हैं। रासायनिक औषधियां भी स्थानीय मौसम को प्रभावित करती हैं। धूप व कोहरे का प्रभाव स्थानीय तापीय विकिरण पर भी पड़ता है।

टिप्पणी

- **अन्य प्रभाव** : वायु प्रदूषण का एक दुष्प्रभाव अम्लीय वर्षा है जिससे धातु, कागज कपड़ा, संगमरमर आदि कुप्रभावित होते हैं और चांदी की चमक कम हो जाती है तथा सीसे की वस्तुएं काली हो जाती हैं। इससे ओजोन परत में दरारें तथा छिद्र बन जाते हैं।

वायु प्रदूषण एक क्रमिक रूप से घुलता हुआ जहर है, जो मनुष्यों में ही नहीं, अपितु समस्त जीव जगत व पर्यावरण को प्रभावित कर रहा है। वायु–प्रदूषण का प्रभाव सीमित हो सकता है, परन्तु इस दिशा में निरन्तर व्यक्तिगत स्तर पर, सामाजिक स्तर पर, सरकारी स्तर पर तथा गैर सरकारी स्तर पर प्रयास करने की नितान्त आवश्यकता है, तभी वायु–प्रदूषण नामक विनाश रूपी राक्षस के चंगुल से बचना संभव हो पाएगा।

वायु–प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

- घरों में धुआंरहित ईंधनों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। लकड़ी व कोयले के स्थान पर हीटर, कुकिंग गैस आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- स्वचालित वाहनों के उत्पन्न धुएं की निर्वात नली (Vaccum tube) पर आवरण (Screen) तथा ज्वालक (Burner) लगाए जाने चाहिए।
- डीजल ईंधन में संयोजी पदार्थों को मिलाकर तथा पेट्रोल से सीसा (Pb) व सल्फर को निकालकर प्रयोग करना चाहिए।
- स्वचालित वाहनों से उत्पन्न उत्सर्जन को कम करने के लिए वाहनों का कम से कम प्रयोग करना चाहिए तथा उचित रखरखाव के साथ केटेलिटिक कनर्वटर का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- अत्यधिक प्रदूषणकारी पुराने वाहनों के मार्गों पर चलने पर पूर्ण प्रतिबंध लगा देना चाहिए।
- वाहनों के I.C. ईंजन की संरचना में निर्माताओं को कुछ ऐसे सुधार करने चाहिए ताकि ईंधन का पूर्ण दहन हो तथा प्रदूषण पदार्थ कम मात्रा में उत्पन्न हों।
- स्वचालित वाहनों द्वारा उत्पन्न प्रदूषक पदार्थ, उनकी कार्यहीनता, त्वरण तथा मंदन पर निर्भर करता है। अतः इन सब पर समुचित नियंत्रण किया जाना चाहिए।
- अधिक धुआं फैलाने वाले वाहनों का कानूनी तौर से चालन बंद कर देना चाहिए।
- विद्युत चालित ईंजनों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- उद्योगों की चिमनियां उचित ऊंचाई पर होनी चाहिए जिससे दूषित गैसों से निकटवर्ती वातावरण प्रदूषित न हो।
- चिमनियों पर स्थिर विद्युत अवक्षेपण के प्रयोग द्वारा गैसों से प्रदूषण पदार्थों को पृथक करना चाहिए।
- उद्योगों से उत्सर्जित गैसों के नियंत्रण हेतु वायु प्रदूषण नियंत्रण संयंत्र (साइक्लोन, बेग फिल्टस, सेटलिंग चैम्बर्स, इलैक्ट्रोस्टेटिक प्रिसीपीटेटर्स एवं स्क्रबर्स) की स्थापना की जानी चाहिए।

टिप्पणी

ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण अर्थात् अवांछनीय कर्कश आवाज जो मानव मस्तिष्क को प्रभावित करती है, बेचैनी उत्पन्न करती है। यह असामान्य होती है तथा मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। आधुनिक समय में ध्वनि प्रदूषण शहरी और औद्योगिक जीवन का अंग हो गया है। अनियोजित विकास के कारण अवांछित ध्वनि दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सामान्यतः 55–60 डेसिबल तक की ध्वनि हमारे लिए सहने योग्य होती है। इससे तीव्र ध्वनि विभिन्न तरीकों से मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालती है।

कान ध्वनि की तीव्रता के एक बड़े पैमाने को सुगमता से ग्रहण करते हैं। लेकिन शोर का स्तर न्यूनतम सुनने लायक ध्वनि से एक लाख करोड़ गुना बढ़ जाए तो कष्ट होने लगता है। ध्वनि की माप की इकाई डेसिबल है। 5 डेसिबल की ध्वनि अत्यन्त धीमी, 25 डेसिबल तक साधारण शोर और इससे अधिक डेसिबल की ध्वनि तीव्र शोर कहलाती है।

आवासीय क्षेत्रों में ध्वनि का प्रमुख कारण वाहन, नजदीकी स्थित हवाई अड्डा, रेलवे लाइन तथा उद्योग हैं। दीवाली के समय पटाखों, लाउडस्पीकर, सिनेमाहाल इत्यादि में भी तीव्र शोर रहता है। कार्यालयों में शोर का प्रमुख कारण टाईपराईटर, एयर कूलर, एयर कंडीशनर, पुराने पंखे तथा काल बेल होती है। कुछ विशेष उद्योगों (कागज, छपाई मशीन, कपड़ा, स्टील, ताप बिजलीघर और अभियांत्रिकी उद्योग) से अत्यन्त शोर होता है। ध्वनि प्रदूषण की समस्या का समाधान केवल कानून द्वारा ही संभव नहीं है, अपितु इसमें स्वैच्छिक सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता है। प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह कम से कम ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने में अपना सहयोग प्रदान करे, तभी इस भयंकर, घातक व अदृश्य बीमारी पर नियंत्रण संभव हो सकता है।

ध्वनि अथवा शोर प्रदूषण के स्रोत अग्रलिखित हैं–

प्राकृतिक स्रोत : इसके अंतर्गत तेज हवा, बादलों की गड़गड़ाहट, बिजली की कड़क, भूकम्प, वन्यजीवजंतु आदि आते हैं।

कृत्रिम स्रोत : इस प्रकार का प्रदूषण प्रायः शहरों में अनेक वाहनों (ट्रक, कार, बस, स्कूटर, फायर इंजन, रेलगाड़ी) के हार्न, सायरन, कारखानों, टेलीविजन, रेडियो, ट्रांजिस्टर, लाउडस्पीकर एवं कुत्तों के भूंकने से उत्पन्न होता है। इस तरह का ध्वनि प्रदूषण प्रति 10 वर्षों में दो गुना होता जा रहा है।

प्रमुख स्रोतों से उत्पन्न ध्वनि तीव्रता

क्र.सं.	स्रोत	शोर (डेसिबल)
1.	शांत पार्क	30
2.	दिन में आवासीय क्षेत्र	45
3.	बड़ी दुकान के अंदर	60
4.	10 टाइपराइटर वाला कमरा	65
5.	तीव्र गति में छोटी कार	70
6.	टेलीफोन से 2 मीटर दूर	75

टिप्पणी

7.	समारोह हॉल के भीतर (Concert Hall)	80
8.	प्रिंटिंग प्रेस के अंदर	85
9.	जेट वायुयान के अंदर	85
10.	डीजल गाड़ी से 8 मीटर दूर	90
11.	हार्न से 8 मीटर दूर	95
12.	फाउंड्री के भीतर	100
13.	हार्न से 5 मीटर दूर	100
14.	कपड़ा मिल के अंदर	105
15.	वायुयान से 10 मीटर दूर	130
16.	वायुयान से 3 मीटर दूर	140

ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव

तीव्र ध्वनि से मनुष्य के कार्य करने की क्षमता, आराम, नींद और संवाद में व्यवधान पड़ता है। एक स्वयंसेवी संस्था ने बम्बई में एक सर्वेक्षण के दौरान पाया कि 76 प्रतिशत लोगों को शिकायत है कि कोलाहल के कारण उनका ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता, 69 प्रतिशत व्यक्ति अशांत सोते हैं और 65 प्रतिशत हमेशा बेचैन रहते हैं। वैज्ञानिकों के कथनानुसार कोलाहलपूर्ण वातावरण में रहने वाले व्यक्ति अपेक्षाकृत शीघ्र वृद्ध हो जाते हैं। शोर उच्च रक्तचाप का एक प्रमुख कारण है। शोर के स्तर से सम्बन्धित स्वास्थ्य पर प्रभाव निम्नलिखित हैं–

ध्वनि स्तर (डेसिबल)	प्रभाव
70	बेचैनी, मानसिक तनाव, अनिद्रा
80	सिरदर्द, थकान, तनाव, कार्यक्षमता में कमी
85	बहरापन या श्रवण दोष
90	कान के आंतरिक भाग की क्षति
100	हृदय की धड़कन बढ़ना, रक्त वाहिनियों का सिकुड़ना, रक्त संचार में कमी, थकान, उच्च रक्तचाप, चिड़चिड़ापन, गैस्ट्रिक समस्या, अल्सर
120	केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव, मस्तिष्क एवं तंत्रिका कोशिका पर घातक प्रभाव, स्मृति का घटना, गर्भवती महिलाओं में प्रसव पीड़ा का बढ़ना, गर्भस्थ शिशु पर प्रतिकूल प्रभाव
140	कुछ मिनटों तक सुनने से ही अत्यधिक पीड़ा या अस्थाई बहरापन

टिप्पणी

ध्वनि प्रदूषण स्तर का मानक

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा वर्ष 1989 में जन–स्वास्थ्य हेतु वायुमण्डल में ध्वनि प्रदूषण के स्तर हेतु निम्नलिखित मानक निर्धारित किये गये हैं–

क्षेत्र	ध्वनि स्तर (डेसिबल में)	
	दिन में (सुबह 6 बजे से सांय 9 बजे तक)	रात्रि में (सांय 9 बजे से सुबह 6 बजे तक)
औद्योगिक क्षेत्र	75	70
व्यापारिक क्षेत्र	65	55
आवासीय क्षेत्र	55	45
शांत क्षेत्र	50	40

ध्वनि प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय

(1) स्रोत पर शोर का नियन्त्रण : यह ध्वनि प्रदूषण रोकने का अच्छा उपाय है, परन्तु इसे लागू करने से पूर्व सम्बन्धित इन्जन का ज्ञान इन्जन की संरचना, डिजाइन प्रक्रिया आदि का ज्ञान आवश्यक है।

(2) माध्यम पर शोर नियन्त्रण : अगर ध्वनि संचरण का माध्यम दिया जाए तो शोर नियन्त्रित किया जा सकता है। इसे निम्नलिखित विधियों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

(क) भवन विन्यास परिवर्तन करके : ध्वनि स्रोत एवं माध्यम को ध्यान में रखते हुए भवन का एक कमरा ऐसे स्थान पर बनाया जाए जो ध्वनि को बाहर जाने से व फैलने से रोके।

(ख) अवशोषण : इस तकनीक में शोर पैदा करने वाली मशीनें एक कमरे में रखकर, उस कमरे की दीवारें, फर्श तथा छत ध्वनि सोखने वाले पदार्थों की बनायी जाती हैं। ये पदार्थ ध्वनि अवशोषित कर लेते हैं तथा बाहर कार्य कर रहे श्रमिकों के शोर से कोई व्यवधान नहीं होता। ध्वनि निरोधक कालीनें भी फर्श, छत व दीवारों पर प्रयोग की जा सकती हैं।

(ग) मफलरों का प्रयोग करके : यदि ध्वनि स्रोतों को अपनी मफलरों से ढक दिया जाए तो ध्वनि का संचरण काफी मात्रा में रुक सकता है। स्थिति निर्धारण– इसमें स्रोत व प्राप्तकर्ता के मध्य की दूरी को बढ़ा देते हैं। चूंकि सभी स्रोत सभी दिशाओं में समान रूप से ऊर्जा का विकिरण नहीं करते हैं।

(3) प्राप्तकर्ता पर ध्वनि नियन्त्रण (Control of Noise at Receiver) : किसी हद तक प्राप्तकर्ता चाहे तो स्वयं ध्वनि को कम मात्रा में ग्रहण कर ध्वनि नियन्त्रण कर सकता है। यह प्रभाव निम्नलिखित उपायों से कम किया जा सकता है–

(क) ध्वनि अवधि में अधिक समय न रहना : भिन्न–भिन्न ध्वनि स्तर के भिन्न–भिन्न प्रभाव होते हैं लेकिन ध्वनि स्तर बढ़ने पर यदि उसकी अवधि

टिप्पणी

कम समय के लिये कर दी जाए तो ध्वनि प्रदूषण से मानव अपने को अलग रख सकता है।

(क) लोगों को शिक्षित करना : बड़े–बड़े औद्योगिक नगरों जैसे– मुम्बई, कोलकाता, दिल्ली, चेन्नई, कानपुर आदि जहां ध्वनि प्रदूषण की समस्या काफी गम्भीर है, वहां पर रेडियो, टी.वी., अखबार आदि के माध्यम से शोर रोकने एवं कम उत्पन्न करने हेतु लोगों को जागरूक करें।

(ग) व्यक्तिगत रक्षा यंत्रों का उपयोग करके कान में लगाए जाने वाले कान के प्लग, मफलर, ध्वनिरोधी हेलमेट तथा रुई आदि का प्रयोग कर ध्वनि को कम किया जा सकता है।

इस दिशा में निम्नलिखित कार्य किये जा सकते हैं–

- नगरपालिका व महापालिका भारी ट्रकों एवं वाहनों को आवासीय क्षेत्रों में से गुजरने पर प्रतिबंध लगाए।
- रेलवे लाइन, राजमार्ग तथा अन्य सड़कें आवासीय एवं व्यापारिक क्षेत्रों से दूरी बनानी चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो इन्हें लिंक रोड से जोड़ा जाना चाहिए।
- नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग द्वारा प्रत्येक नगर में एक 'मॉनीटर स्टेशन' स्थापित किया जाना चाहिए जो ध्वनि के आंकड़े प्रतिदिन मॉनीटर करें तथा उस पर नियंत्रण करें।
- भवन के सामने वृक्ष व झाड़ियां लगाने का प्रावधान अवश्य किया जाना चाहिए।
- भवन में शौचालय, स्टोर, सीढ़ी, कक्ष व स्नानागार अधिक ध्वनि वाले हिस्से की ओर बनाये जाने चाहिए।
- सरकार को ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण एक्ट बनाना चाहिए तथा प्रत्येक नगर की ध्वनि नियंत्रण आचार संहिता होनी चाहिए। आवश्यक एवं गैर कानूनी ध्वनि को दण्डनीय अपराध घोषित किया जाना चाहिए।
- नवीन हवाई अड्डा नगर से पर्याप्त दूरी पर बनाना चाहिए।
- सड़कों एवं रेलवे ट्रैकों के साथ लाइनों में दोनों ओर वृक्ष लगाए जाने चाहिए।
- वाहनों में बहु ध्वनि वाले हॉर्न, प्रेशर हॉर्न का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- ध्वनि विस्तारक यंत्र (लाउडस्पीकर) एवं पटाखों आदि का प्रयोग कम से कम किया जाना चाहिए।
- कार्यालयों, पुस्तकालयों, चिकित्सालयों, विद्यालयों, न्यायालयों, एवं आवास गृहों आदि में निर्माण सामग्री तथा उपयुक्त बनावट द्वारा शोर नियंत्रण किया जा सकता है।
- गाड़ियों की गति कम रखनी चाहिए न अधिक ब्रेक लगाएं और न ही अधिक एक्सीलेटर दबायें।
- सड़कों की उचित मरम्मत की जानी चाहिए।
- उद्योगों से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को नियंत्रित किया जाना चाहिए।
- आवासीय व औद्योगिक क्षेत्रों में हरित पट्टिका को विकसित कर शोर नियंत्रण हो सकता है।

उद्योगों से उत्पन्न ध्वनि पर नियंत्रण

टिप्पणी

उद्योगों से उत्पन्न होने वाली ध्वनि कारीगरों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। अतः इसे नियन्त्रित करना आवश्यक है। इसका नियंत्रण निम्नलिखित सुझावों द्वारा किया जा सकता है–

नियोजक व पर्यावरण प्राधिकरण के मध्य आपसी सहयोग द्वारा : प्रत्येक शहर में पर्यावरणीय प्राधिकरण होते हैं, जिसमें पारिस्थितिकी व सम्बद्ध विज्ञान के विशेषज्ञ होते हैं। इन विशेषज्ञों व नगर नियोजक के मध्य अच्छा सहयोग हो तो ध्वनि की सीमा को अधिक सीमा तक नियन्त्रित किया जा सकता है। जब भी शहर का विकास नियोजक को करना हो तो उसके द्वारा विकसित योजनाओं को लागू करने के लिए पूर्व पर्यावरण प्राधिकरण से अनुमोदन करा लेना चाहिए, क्योंकि नियोजक रेलवे लाइनों व ठोस अवशेषों के निपटारों के लिए स्थानों आदि की स्थितियां, शहर के क्षेत्र में निश्चित करेगा, ताकि शहर की बाध्य योजना अच्छी हो, परन्तु पर्यावरण प्राधिकरण, पर्यावरण को स्वच्छ रखने की दृष्टि से इसकी स्थितियों को थोड़ा इधर–उधर परिवर्तन कर सही स्थिति का अनुमोदन करता है।

ध्वनि रोधन अभिकल्पना : उद्योगों में ध्वनि को नियन्त्रित करने के लिए ध्वनि निरोधक अभिकल्पन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। उद्योगों में प्रबन्धकों व अन्य अधिकारियों के कक्षों को खोखली दीवार से बनाना चाहिए। खिड़कियों व दरवाजों की दरारों से निकलकर आने वाली ध्वनि को कम करने के लिए दरारों को बहुत ही कम चौड़ा या बिल्कुल बंद कर देना चाहिए। फर्श, रबर का, P.V.C. का या लिनोलियम शीट का होना चाहिए। कक्षों में अच्छी ध्वनि निरोधी सामग्री का प्रयोग करना चाहिए। यह सामग्री रेशेदार व सरन्ध्र होनी चाहिए। Glan Wool से 80% वायु उत्पन्न ध्वनि ऊर्जा को रोका जा सकता है।

ध्वनि युक्त क्षेत्र व ध्वनि को कम करने के क्षेत्र : ध्वनि को सरलता व सुगमता से नियन्त्रित करने के लिए ध्वनि मुक्त क्षेत्र बनाये जाने चाहिए। ऐसे क्षेत्रों में किसी प्रकार की ध्वनि, जो यातायात, निर्माण कार्य, लाउडस्पीकर या मनोरंजन के साधनों से फैले, को रोकने के प्रयत्न करने चाहिए।

- **वनस्पति पर प्रभाव** : वायु प्रदूषण की अम्लीय वर्षा, धूल, कोहरा, ओजोन, कार्बन मोनो–ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड, फ्लोराइड आदि का वनस्पति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। वायु प्रदूषण के कारण पौधों को प्रकाश कम प्राप्त होता है तथा उनकी प्रकाश संश्लेषण क्रिया पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। धूल व कोहरे के क्षेत्रों में पनपने वाले पौधों के विकास में कमी आ जाती है। ओजोन एवं नाइट्रेट ऑक्साइड से पौधों की पत्तियां विकृत तथा सफेद होकर गिरने लगती हैं। सौन्दर्यवर्धक फूल एवं भक्ष्य फल समाप्त हो जाते हैं। औद्योगिक क्षेत्रों में वायु–प्रदूषण के कारण अनेक पादपों के पत्ते तथा तने काले पड़ जाते हैं तथा सूख जाते हैं। सल्फर डाई ऑक्साइड की अधिकता से पौधों के पर्णरन्ध्र प्रभावित होते हैं और पत्तियां रंगहीन हो जाती हैं तथा नष्ट हो जाती हैं और उत्पादन भी कम होने लगता है।
- **जीव–जंतुओं पर प्रभाव** : वायु प्रदूषण का हानिकारक प्रभाव मानव व वनस्पतियों के साथ ही अन्य जीवों पर भी पड़ता है। जीव वायु ग्रहण करते हैं तथा प्रदूषण से विषाक्त पदार्थ शरीर में पहुंचकर हानि पहुंचाते हैं। पशुओं द्वारा खाये जाने

वाले चारे में क्लोराइड यौगिक मिलकर उनके शरीर में पहुंचकर दांतों तथा अस्थियों में फ्लूओरोसिस रोग उत्पन्न कर देते हैं। मधुमक्खी, शलभ आदि अनेक प्रकार के कीट वायु प्रदूषण से मर जाते हैं तथा पक्षियों पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

टिप्पणी

- **वायुमण्डल एवं जलवायु पर प्रभाव** : ओजोन परत का छिद्र, हरित गृह प्रभाव, स्थानीय तथा क्षेत्रीय मौसम पर प्रभाव और अम्लीय वर्षा आदि वायु–प्रदूषण के परिणाम हैं–

  ओजोन परत पर प्रभाव : वायुमण्डल में स्थित ओजोन मण्डल में उपस्थित ओजोन परत मानव का रक्षा कवच होने से मानव–जीवन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह सूर्य से आने वाली हानिकारक पराबैगनी किरणों को ढाल की तरह रोक कर जन–जीवन की रक्षा करती है। ये हानिकारक किरणें भूमण्डल पर आकर शरीर में त्वचा कैंसर, लिए भीड़ से उत्पन्न हों, इनको रोकना चाहिए। ऐसे क्षेत्रों में विद्यालय, महाविद्यालय, अस्पताल तथा पूजा स्थलों को बनाया जाना चाहिए।

  ध्वनि मुख्यतः दो माध्यमों से उत्पन्न होती है–

  (क) वायु द्वारा उत्पन्न– ऐसी ध्वनि हवा में होती है, यही ध्वनि शोर का मुख्य रूप है।

  (ख) प्रभाव ध्वनि– यह ध्वनि पदार्थ पर खुरचने या चलने से होती है। इस ध्वनि को कम करने के लिए ध्वनि निरोधक सामग्री की परत लगा दी जाती है।

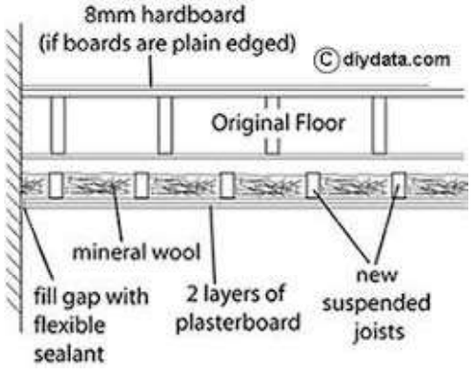

मृदा प्रदूषण

भूमि का प्राकृतिक संसाधनों में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न प्रकार के रासायनिक प्रदूषकों तथा अन्य अपशिष्ट पदार्थों का विलय भूमि में होता है। मृदा प्रदूषण या भू–प्रदूषण वायु, जल उर्वरकों एवं कीटनाशकों द्वारा होता है। वायु में उपस्थित SO_2 गैस वर्षा के समय H_2SO_4 के रूप में वर्षण कर, मृदा से मिलकर मृदा प्रदूषण को बढ़ावा देती है। इसी प्रकार अनेक प्रकार के रसायन, मृदा से मिलकर हानिकारक प्रभाव देते हैं एवं मृदा प्रदूषित करते हैं। इसके अतिरिक्त मृदा में ईंट के, पत्थर के, कोयले के टुकड़े मिल जाने से, लकड़ी, कागज, लोहे के समान, प्लास्टिक के समान, सीमेन्ट, कंक्रीट के व्यर्थ छिलके आदि मिलने से मृदा प्रदूषित हो जाती है। भूमि अथवा मृदा की उपयोगिता में कमी हो जाती है या उसके उपयोगी गुणों में परिवर्तन हो जाए तो वह मृदा, भूमि प्रदूषण कहलाता है।

टिप्पणी

मृदा प्रदूषण के स्रोत (Sources of Soilor Land Pollution)

मृदा प्रदूषण मुख्यतः दो ही स्रोतों के कारणों से माना जा सकता है–

(क) भौतिक स्रोत या ठोस अपशिष्ट पदार्थों वाला स्रोत (Physical Source or Solid waste Material) : समुदायों की सामान्य क्रियाओं से उत्पन्न होने वाले अवांछनीय एवं परित्यक्त ठोस पदार्थ जिसके अन्तर्गत कूड़ा–करकट निस्सार पदार्थ, सड़कों का कूड़ा, राख तथा अन्य औद्योगिक अपशिष्ट सम्मिलित हैं।

प्रकार	अपशिष्ट	स्रोत
कूड़ा–करकट	बाजार के अपशिष्ट भोज्य पदार्थ, कूड़ा, दफ्ती, लकड़ी, डिब्बे, प्लास्टिक, कम्बल, चमड़ा, रबड़, शीशी आदि	घर, संस्थाएं, व्यापारिक संस्थान, स्टोर, होटल आदि
निस्सार (Rabbish)	धातुएं, टिन के डिब्बे, बोतल, चादरें, धातु या चीनी–मिट्टी के बर्तन	उपरोक्त
निर्माण एवं भवनों के गिराने पर अपशिष्ट राख	ईंट, पत्थर, धूल, कोयला, लकड़ी आदि की राख	पुराने मकान, घर एवं उद्योग
मृत पशु	बिल्ली, कुत्ता, मुर्गा, गाय, भैंस, भेड़, बकरी	पार्क या खुले क्षेत्र
पशु एवं कृषि अपशिष्ट सड़क का कूड़ा	खाद एवं फसल क्रिया से उत्पन्न गन्दगी एवं पत्तियां	खेत एवं खलिहान
विशेष अपशिष्ट संस्थाएं	चिकित्सा सम्बन्धी, रेडियोधर्मी सम्बन्धी अपशिष्ट	घर, अस्पताल आदि से

(ख) रासायनिक पदार्थ स्रोत (Chemical Substance Sources): आजकल मृदा से अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिये अनके प्रकार के उर्वरक कीटनाशी, कवकनाशी तथा पादप हॉमोर्न का प्रयोग किया जाता है। उद्योगी द्वारा अनेक प्रकार का रासायनिक ठोस अथवा द्रव व्यर्थ के रूप में मृदा पर बिना किसी पूर्व उपचार के छोड़ दिया जाता है। जिसके कारण रासायनिक रूप से मृदा का प्रदूषण हो जाता है।

उर्वरक के रूप में प्रायः कैल्शियम सुपर फास्फेट, यूरिया (NH_2), अमोनिया फास्फेट आदि का प्रयोग किया जाता है। देश के विभिन्न भागों में व विभिन्न फसलों के अनुरूप तथा मृदा की उपजाऊ क्षमता के आधार पर उर्वरक का चुनाव किया जाता है, जिससे कुछ क्षेत्रों की मृदा में नाइट्रोजन या फॉस्फोरस या अमोनिया या सल्फेट आदि की अधिकता या कमी पायी जाती है।

उर्वरकों का कृषि उत्पादन में सराहनीय योगदान सर्वविदित है। दूसरी ओर भूमि की किस्म, भौगोलिक परिस्थितियों तथा फसलों की जातियों के अनुसार उर्वरकों की

टिप्पणी

उपयुक्तता निर्धारित किये बिना कुछ तत्वों की अधिकता तथा विषैलापन हो जाता है। कुछ तत्वों की कमी हो जाती है तथा भूमि में लाभकारी जीवाणुओं पर प्रतिकूल प्रभाव के कारण भूमि उत्पादन क्षमता में कमी आ जाती है। भूमि के पर्यावरण सुधार की दृष्टि से रासायनिक खादों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण के आधार पर फसलों की किस्म, भूमि की किस्म, भौगोलिक परिस्थितियों आदि को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। नाइट्रोजन धारी उर्वरकों की क्षमता में वृद्धि की जाए। फलीदार फसलों को बड़े पैमाने पर उगाया जाए तो वायुमण्डल से नाइट्रोजन खींचकर खाद के रूप में बदलती है। ऐसे जीवों तथा अन्य सूक्ष्मजीवों का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाए तो अनाज वाली फसलों के लिए वायुमण्डल में उपलब्ध नाइट्रोजन का प्रयोग करना चाहिए। गोबर तथा कम्पोट खादों का प्रयोग उर्वरकों के साथ अवश्य होना चाहिए।

जीव रसायनों में, 1. कीड़े मकोड़े नाशक, 2. फफूंदी नाशक, 3. खरपतवार नाशक, 4. मूषक नाशक, 5. सूत्र कृमि नाशक आते हैं। एक ओर कृषि उत्पादन में सराहनीय वृद्धि तथा घातक रोगों से मुक्ति दिलाने में इन रसायनों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वहीं दूसरी ओर समुचित ज्ञान के अभाव में इनके असंतुलित तथा अवांछित उपयोग से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जाता है। इन रसायनों के प्रयोग से हानिकारक कीड़ों/ जीवाणुओं के अतिरिक्त अनेक लाभकारी कीड़ों, पक्षियों, मछलियों आदि पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

इनके लाभकारी जीवाणुओं पर प्रतिकूल प्रभाव के कारण कृषि उत्पादन क्षमता में कमी आ जाती है। कीटनाशक रसायनों के प्रयोग के पश्चात् ये शीघ्र विघटित नहीं होते और 20–25 वर्षों तक पर्यावरण में उपस्थित रहते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र में बहुत दिनों तक विद्यमान रसायनों के अवशेषों के कारण मनुष्य अधिक संख्या में बीमार होते हैं। जबकि इनके सीधे प्रभाव से कम संख्या में लोगों को हानि होती है।

रसायनों के हानिकारक प्रभावों तथा इनसे प्राप्त लाभों के मूल्यांकन के आधार पर इनके सुरक्षित उपयोग की आवश्यकता है। इसके लिए कृषकों तथा कर्मचारियों में जागरूकता उत्पन्न करने, सुरक्षात्मक तरीके अपनाने, रसायनों के हानिकारक प्रभावों, अवशेषों, अपघटन आदि की जांच करने, कृत्रिम रसायन के स्थान पर जैव नियंत्रण की ओर ध्यान देने, लम्बी अवधि तक विघटित न होने वाले रसायनों पर प्रतिबंध लगाने, रसायनों की निर्धारित मान्य समयानुसार उपयोग में लाने, नये लेकिन कम हानिकारक रसायनों की खोज की आवश्यकता है। कृषि में कीट नियंत्रण का सघन उपयोग करना फसलों की कीटरोधी किस्मों को उगाना, कीड़ों को धोखे में डालने वाले विशिष्ट गंधयुक्त फेरामोन रसायनों का इस्तेमाल करना, मुख्य फसल के साथ दूसरी फसलों को उगाना, कीड़ों को नुकसान पहुंचाने वाले परजीवी छोड़ना आदि कुछ ऐसे तरीके हैं जिनको अपनाकर कीटनाशक रसायनों का प्रयोग करके मृदा प्रदूषण को कम किया जा सकता है।

कीट तथा रोगाणुनाशक अनेक प्रकार के विषैले रसायनों से निर्मित होते हैं। जब किसी कीटाणुनाशक रसायन का प्रयोग फसल पर किया जाता है, तो उसका कुछ अंग मिट्टी में मिल जाता है, जो कुछ अवधि तक मिट्टी में रहता है। कीटनाशक पौधों की

टिप्पणी

पत्तियों एवं जड़ों पर हानिकारक प्रभाव तो डालते हैं, साथ ही ऐसी पत्तियों को जब जीव–जंतु खा लेते हैं तो उनको भी अनेक भयंकर बीमारियां हो जाती हैं। कीटनाशक के रूप में बी.एच.सी. का प्रयोग अधिक होता है। अन्य कीटनाशक जैसे– एल्ड्रिन, एन्ड्रिन, हेप्टाक्लोर, डाइएल्ड्रिन, डी.डी.टी. एवं टॉक्साफोन का प्रयोग होता है। कीटनाशकों द्वारा मृदा के जीवाणु भी प्रभावित होते हैं। कीटनाशकों का प्रयोग करने से मिट्टी में क्लोराइड की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

मृदा प्रदूषण के कारण

मृदा प्रदूषण के मुख्य कारण निम्न हैं–

- **भू–क्षरण द्वारा मृदा प्रदूषण** : भू–क्षरण मृदा का भयानक शत्रु है, क्योंकि गौरी के अनुसार, 'भू–क्षरण मृदा की रेंगती हुई मृत्यु है।' भू–क्षरण द्वारा कृषि क्षेत्र की ऊपरी सतह की मिट्टी कुछ ही वर्षों में समाप्त हो जाती है, जबकि 6 से.मी. गहरी मृदा की परत के निर्माण में लगभग 2,400 वर्ष लगते हैं।
- **कृषि द्वारा मृदा प्रदूषण** : जनसंख्या वृद्धि की खाद्यान्न संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से गहन कृषि द्वारा अन्न उत्पादन पर बल दिया जाता है, अत्यधिक उपयोग के कारण भूमि की उर्वरक क्षमता क्षीण हो जाती है।
- **कीटनाशक और कृत्रिम उर्वरकों के द्वारा मृदा प्रदूषण** : यद्यपि कीटनाशक तथा रासायनिक खाद फसल उत्पादन वृद्धि में सहयोग देते हैं, परन्तु धीरे–धीरे मृदा में जमाव से इनकी वृद्धि होने लगती है, जिससे सूक्ष्म जीवों का विनाश होता है तथा मृदा तापमान में वृद्धि से मृदा की गुणवत्ता नष्ट होने लगती है।
- **घरेलू तथा औद्योगिक अपशिष्ट** : घरेलू तथा औद्योगिक संस्थानों से निकले अपशिष्ट पदार्थ, जैसे– सीसा, तांबा, पारा, प्लास्टिक, कागज आदि मृदा से मिलकर इसे दूषित करते हैं।
- **वनोन्मूलन द्वारा मृदा प्रदूषण** : वन मृदा निर्माण में जैविक तत्व प्रदान करते हैं और भू–क्षरण को नियंत्रित करते हैं। जिन क्षेत्रों में वनों का विनाश बड़े स्तर पर हुआ है, वहां की मृदा के जैविकीय गुण समाप्त होते जा रहे हैं।
- **अधिक सिंचाई द्वारा मृदा प्रदूषण** : कृषि में सिंचाई की नहरों का अधिक महत्व है, लेकिन कृषि के लिए वरदान देने वाली नदियाँ व नहरें ही अभिशाप सिद्ध हो रही हैं।
- **मरुस्थलीयकरण** : मरुस्थलों की रेत हवा के साथ उड़ जाती है और दूर तक उर्वरक भूमि पर बिछ जाता है। इस प्रकार बलुई धूल के फैलाव से मरुस्थलों का विस्तार होता है। इस प्रकार धूल उर्वरा भूमि का विनाश कर उसकी उत्पादकता को घटाती है।

इसके अतिरिक्त मृदा अथवा भू–प्रदूषण खनन कार्य, रेडियोएक्टिव पदार्थों से, जल निकासी की उचित व्यवस्था न होने से, मल–मूत्र व गंदे जल से, मृत पशुओं के शवों का निपटारा सही समय पर न करने से, उद्योगों द्वारा अवांछित ठोस पदार्थ से तथा इंजीनियरी संरचनाओं के निर्माण एवं मरम्मत कार्य आदि भी मृदा प्रदूषण का विस्तार करते हैं।

टिप्पणी

मृदा प्रदूषण के प्रभाव

मृदा प्रदूषण के दुष्प्रभाव बहुआयामी हैं। एक ओर इससे पर्यावरण दूषित होता है, तो दूसरी ओर मनुष्य के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता है। मृदा प्रदूषण/भू–प्रदूषण का मानव जीवन पर प्रभाव निम्नलिखित रूपों में पड़ता है–

- मृदा प्रदूषण अन्य प्रकार के प्रदूषकों का कारक है। विशेषकर वायु एवं जल प्रदूषण में इसके द्वारा वृद्धि होती है।
- कूड़े करकट के अनुचित एवं अनियमित निक्षेपण से नाले व नालियां अवरुद्ध हो जाती हैं। इनके सड़ने से अनेक प्रकार की गैसें व दुर्गन्ध उत्पन्न होती हैं, जो चारों ओर के वातावरण को प्रदूषित कर देती हैं। इस गंदगी में यदि रसायन मिश्रित होते हैं, तो उनसे हानिकारक गैसें भी निष्कासित होती हैं।
- चूंकि देश की अधिकतर जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है तथा गांवों में शौचालयों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। खुले में मल त्याग से पेचिश, हैजा, पोलियो, मलेरिया, टी.बी., मोतीक्षय, टाइफाइड आदि बीमारियां फैलती हैं।
- विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट पदार्थ शहर की नालियों से बहकर जल स्रोतों में पहुंच जाते हैं या सीधे ही इनमें डाल दिये जाते हैं, जिससे प्रदूषण फैलता है।
- व्यर्थों एवं मल जल का प्रयोग निरन्तर सिंचाई में करते रहने से मृदा की सरन्ध्रता में कमी आ जाती है, जिससे मृदा में वायु संचार रुक जाता है एवं ऑक्सीजन की कमी से जीवाणुओं से श्वसन क्रिया रुक जाती है, जिससे पौधों का विकास रुक जाता है।
- होटलों, घरों, कल–कारखानों एवं सार्वजनिक इकाइयों से निकलने वाला अपशिष्ट प्रत्यक्ष ही मृदा पर ऐसे ही निष्कासित कर दिया जाता है, जिससे दलदल की स्थिति बन जाती है, जो कि रोगों का केन्द्र बन जाता है।
- इंजीनियरिंग संरचनाओं के निर्माण एवं मरम्मत के पश्चात अधिकतर कंक्रीट, ईंट, रोड़ी एवं पत्थर के टुकड़े आदि भूमि में गड्डा खोदकर दबा दिये जाते हैं, जिससे कि संरचनात्मक गठन प्रदूषित होता है।
- अपशिष्ट एवं व्यर्थ पदार्थ के अनियमित निक्षेपण से वातावरण प्रदूषित होता है, साथ ही मक्खी, मच्छर, चूहे एवं अन्य कीड़े–मकोड़े अधिक संख्या में जन्म लेते हैं, जिससे मानव जीवन कष्ट कर हो जाता है।
- मृदा–प्रदूषण का विपरीत प्रभाव भूमि की उर्वरा शक्ति पर पड़ता है, विशेषकर औद्योगिक अपशिष्टों द्वारा, क्योंकि उनमें अनेक अघुलनशील एवं हानिकारक तत्व उपस्थित होते हैं।

मृदा–प्रदूषण रोकने के साधारण उपाय

मृदा अथवा भू–प्रदूषण रोकने के सामान्य उपाय निम्नलिखित हैं–

- खाद्यानों में कीटनाशकों की सीधे मिलावट न की जाए।
- फसलों पर छिड़कने वाली विषैली दवाओं का प्रयोग प्रतिबंधित किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

- कीटनाशक रसायनों के अंतिम छिड़काव तथा फसल की कटाई में अधिक से अधिक अंतर रखना चाहिए, ताकि फसल का उपयोग करते समय कीटनाशक की उपयोगिता सामग्री पर प्रभाव न्यूनतम हो सके।
- गांव तथा नगरों में मल एवं गंदगी को एकत्रित करने के लिए उचित स्थान होना चाहिए।
- कृत्रिम उर्वरकों के स्थान पर परम्परागत खाद का प्रयोग कृषि भूमि में होना चाहिए।
- नवीन उर्वरकों एवं ऐसे कीटनाशकों का प्रयोग किया जाना चाहिए, जो केवल फसलों को कीटों से बचाये, न कि अन्य जीवधारियों पर हानिकारक प्रभाव आये।
- खेतों में पानी के निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। नहरों व नालियों को पक्का किया जाना चाहिए। नहरों के निर्माण के समय पारिस्थितिक को ध्यान में रखना चाहिए।
- कीटनाशकों एवं खरपतवार नाशकों का प्रयोग करते समय चेहरे पर मास्क तथा हाथ में दस्ताने अवश्य पहनने चाहिए।
- वनों के विनाश पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए, साथ ही वृक्षारोपण को प्रोत्साहित करके मिट्टी निर्माण प्रक्रिया में आये अवरोध को दूर करना चाहिए।
- भू–क्षरण को रोकने के समस्त उपायों पर कार्य होना चाहिए।
- बाढ़ नियंत्रण के लिए उचित योजना की जानी चाहिए।
- प्रदूषित जल का वृहत भूमि पर बहाव नियंत्रित करना चाहिए।
- ढालू भूमि पर सीढ़ीनुमा कृषि पद्धति अपनाने पर बल देना चाहिए।
- उर्वरकों एवं कीटनाशकों/खरपतवार नाशकों का प्रयोग करने का प्रशिक्षण किसानों को टी.वी., समाचार पत्र अथवा रेडियो के माध्यम से देना चाहिए।
- औद्योगिक संस्थानों से व्यर्थ पदार्थों एवं वाहित स्राव का पूर्ण उपचार करके ही निपटारा (Disposal) करना चाहिए।
- खुले स्थानों पर शौच न करने की सलाह देनी चाहिए तथा सुलभ शौचालयों एवं सम्प्रवाहों शौचालयों की व्यवस्था करनी चाहिए।
- मृदा प्रदूषण कम करने के लिए मानवों के अनुपयुक्त क्रियाकलापों पर प्रतिबंध लगा देना चाहिए।
- रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं को नष्ट करने हेतु उत्तम दवाइयों का प्रयोग करना चाहिए।
- बीमार पशुओं की उचित देखभाल करनी चाहिए एवं इलाज करने को प्राथमिकता देनी चाहिए। मृत जीव–जंतुओं का निपटारा जलाकर ही करना चाहिए।
- मृदा के कटाव एवं खनन प्रक्रियाओं को कम करने के उपायों पर जोर देना चाहिए।
- कैल्शियम नाइट्रेट, सोडियम नाइट्रेट, पोटेशियम उर्वरक आदि का प्रयोग कर मृदा की अम्लीयता को कम किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

- मृदा में क्षारीयता प्रभाव को कम करने के लिए लवणों का निक्षालन लवणों को खुरचकर, रासायनों का प्रयोग कर अथवा जैविक सुधार किये जाने चाहिए तथा संबंधित फसलों के उगाने की प्रक्रिया उपयोग में लानी चाहिए।
- अम्लीय मृदा में आलू, धान, शकरकन्द रुई, जौ, शलजम व गेहूँ की फसल उगाई जानी चाहिए।
- मृदा प्रदूषण को रोकने के लिए अनावश्यक जन्म का रुकाव तथा मृदा का संतुलन उपयोग (फसलों का चक्रीय कृम गहरी व उथली जड़ों की फसलों का प्रयोग कर, खेत को कुछ समय के लिए बिना फसल के रखना) करना चाहिए।
- मृदा में ठोस अपशिष्ट पदार्थ को प्रत्यक्ष न डालकर उनका निपटारा, खुला ढेर विधि, भस्मीकरण, स्वच्छता भूमि भरण, खाद बनाकर औद्योगिक अपशिष्ट निपटारा आदि विधियों का प्रयोग करना चाहिए।
- मृदा प्रदूषण को रोकना आज की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, क्योंकि खाद्य, पेय पदार्थ, कच्चा माल, आहार, डाल एवं अन्य समस्त प्रकार की सामग्रियाँ, मृदा की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। संपूर्ण मानव व अन्य जीवों की रक्षा तथा कल्याण हेतु मृदा प्रदूषण पर रोक लगाना अत्यन्त अनिवार्य है।

मृदा संरक्षण की विभिन्न जैविक एवं यौगिक विधियां

मृदा अपरदन को रोकने को मृदा संरक्षण कहते हैं। मृदा अपरदन को रोकने के निम्नांकित उपाय हैं–

- **वृक्षारोपण** : सारी बजट भूमि पर वृक्षारोपण किया जाना चाहिए। प्रत्येक वर्ष अगस्त में वन महोत्सव मनाया जाता है। इस अवसर पर लाखों वृक्ष स्वयं व अन्यों द्वारा लगवाने चाहिए।
- **सीढ़ीदार खेती** : पहाड़ी स्थानों पर पानी के प्रवाह को रोकने के लिए खेत को छोटी–छोटी सीढ़ियों में विभाजित करना चाहिए।
- **रेखीय जुताई** : ढलान वाले खेत में ढलान के विपरीत जुताई करनी चाहिए ताकि जल का प्रवाह कम हो सके।
- **चराई प्रबंध** : चारागाह में अत्यधिक चराई रोकनी चाहिए। पौधों को उखाड़ने से मिट्टी ढीली होती है तथा मृदा अपरदन से ग्रस्त हो जाती है।
- **कल्वर मिट्टी का उपचार** : कल्वर मृदा को खोदकर एक तालाब बनाना चाहिए। एल्गी की वृद्धि को इसमें प्रोत्साहित करना चाहिए। कुछ समय पश्चात् एल्गी समाप्त हो जाती है तथा जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए जैविक तत्व जमा कर जाती है।
- **वायुरोधक** : पवन के मार्ग में हवारोधक विशिष्ट पौधे लगाने चाहिए जैसे– बेर, कनेर, टीक, कांकेर आदि। ये राजस्थान के पूर्व की ओर रेगिस्तान को रोकने में प्रभावी सिद्ध होते हैं।

उपरोक्त प्रभावी उपायों द्वारा मृदा प्रदूषण को काफी सीमा तक नियंत्रित किया जा सकता है, परन्तु इसकी सफलता हेतु व्यक्तिगत प्रयास, क्षेत्रीय प्रयास, सरकारी तथा गैर सरकारी, सभी स्तरों पर प्रयास अपेक्षित है।

प्लास्टिक प्रदूषण

टिप्पणी

विज्ञान ने जीवित जगत के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। प्लास्टिक एवं पॉलीथीन भी विज्ञान की ही देन हैं। घरेलू उपयोग में पॉलीथीन की थैलियों ने पैकिंग के जगत में सुविधा के नये आयाम जोड़ दिये हैं। पॉलीथीन की थैलियाँ प्लास्टिक की ही बनती हैं इसलिए प्लास्टिक का उपयोग वर्तमान में बहुत बढ़ गया है। दूध, घी, मसाले तथा अधिकांशतः उत्पाद पॉलीथीन पैकिंग में आने लगे हैं।

प्लास्टिक व पॉलीथीन के अंधाधुंध प्रयोग ने न केवल कूड़ा निस्तारण के क्षेत्र में जटिल समस्या उत्पन्न की है, अपितु इससे पर्यावरण प्रदूषण का खतरा भी बढ़ा है। आज कूड़े–कचरे में इसकी मात्रा लगभग 20 से 25 प्रतिशत होती है। पॉलीथीन नष्ट न होने से सफाई कार्य में अत्यन्त व्यवधान उत्पन्न होता है। सीवर लाइन जाम होने की 70 प्रतिशत घटनायें पॉलीथीन बैग के कारण होती हैं।

प्लास्टिक एक अत्यन्त जटिल पदार्थ है। इसके निर्माण में मुख्य रूप से ईथेन, विनाइल, क्लोराइड, स्टाईनीन फारमल्डिहाइड, यूरिया, एसिटिलीन तथा बेंजीन का प्रयोग होता है। प्लास्टिक को जैविक क्रिया से नष्ट किया जाना अत्यन्त कठिन है। पूर्ण निर्मित प्लास्टिक तो साधरणतया स्वास्थ्य हेतु हानिकारक नहीं होता है, परन्तु यदि, इसके निर्माण में सही रसायनों का उचित मात्रा में प्रयोग नहीं किया गया तो यह पाया गया है कि प्लास्टिक से कुछ रासायनिक तत्व निर्धारित मात्रा से अधिक तापमान, अम्लीय एवं क्षारीय अवस्था में वस्तुओं से बाहर निकलकर उसमें रखी हुई सामग्री में मिल जाते हैं व स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।

आज प्लास्टिक के कचरे से छोटे–बड़े कस्बे, गाँव, सड़क, जंगल, पर्यटन स्थल एवं समुद्र के किनारे समस्त स्थान प्रभावित हैं। प्लास्टिक को जब धरती पर फेंका जाता है तब वह 200 से 300 वर्षों तक मिट्टी में नहीं मिल पाती है। साधारणतया पुराने प्लास्टिक (सीरिंज, मेडिसिन बोतलें, कीटनाशक पात्र, जूते के सोल, पॉलिथीन बैग आदि) को गलाकर नई प्लास्टिक की वस्तुएं तैयार की जा रही हैं। पुनर्चक्रित प्लास्टिक की वस्तुएँ कम तापमान (लगभग 200° से 250° सेंटीग्रेड) पर गलाकर बनाई जाती हैं। जिससे अधिकांशतः कीटाणु (हपेटाइटिस–बी) एड्स, सालमोनेला कोलाई नष्ट नहीं हो जाते हैं। जो अंततः उपभोक्ता के लिए नये–नये रोगों को जन्म देते हैं। इसके अतिरिक्त प्लास्टिक को कठोर एवं लचीलापन बनाने के लिए थाइलेट के साल्ट के साथ अनेक धातुओं (एन्टीमनी, जिंक, वैन्जामीनियम एवं मैग्नीशियम) को उत्प्रेरक के रूप में तथा रंगों के रूप में हाइड्रोक्यूनोन मिलाया जाता है जो कैंसर सहित अनेक जानलेवा रोगों का कारण बन सकती है।

प्लास्टिक का उपयोग उन पाश्चात्य देशों से हमारे देश में आया है जो इससे पीछा छुड़ाने के लिए प्रयासरत हैं, लेकिन हम लोग प्लास्टिक व पॉलीथीन के अधिकाधिक प्रयोग की दिशा में निरन्तर अग्रसर हैं। इस विपत्तिजनक कूड़े से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है कि इसका प्रयोग कम से कम किया जाए। हिमाचल प्रदेश एवं हरियाणा प्रदेश ने 'गैर–जैवनिम्नीकरणीय कचरए (नियंत्रण) एक्ट' पास करके सार्वजनिक स्थानों पर प्लास्टिक बैग के निस्तारण पर प्रतिबंध लगा दिया है। इस एक्ट की अवमानना करने वालों के लिए एक वर्ष की सजा का प्रावधान है। समाज की महत्वपूर्ण इकाई होने के कारण हमारा यह कर्तव्य बनता है कि इस समस्या का

टिप्पणी

समाधान मिलजुलकर निकालें। प्लास्टिक के मोहजाल से हम जितना जल्दी बाहर आ सकें उतना ही अच्छा होगा, वरना उपयोग के पश्चात् फेंक देने की यह सरलता हमें भविष्य में खतरे में डाल सकती है। स्वस्थ व स्वच्छ पर्यावरण हेतु प्लास्टिक एवं पॉलीथीन का अनियंत्रित प्रयोग कम करना होगा, वरना गंभीर पर्यावरणीय प्रदूषण के दुष्प्रभावों से उबरना सुगम नहीं होगा।

प्लास्टिक प्रदूषण नियंत्रण के नियम

- शादी व पार्टियों के विशेष अवसरों में प्लास्टिक के कप व गिलास का प्रयोग न करके परम्परागत कुल्हड़, पत्तल का प्रयोग करना चाहिए।
- प्लास्टिक के विजिटिंग कार्ड का सर्वथा बहिष्कार कर कागज के विजिटिंग कार्ड बनवाने चाहिए।
- बाजार में सुगमता से उपलब्ध पॉलीथीन बैग में सामान न लेकर कागज के कपड़े अथवा जूट के बैग का प्रयोग करना चाहिए।
- किताब कापियों पर प्लास्टिक के बजाय कागज के कवर चढ़ाने चाहिए।
- प्लास्टिक के पात्रों तथा डिब्बों को पुनः प्रयोग करें अथवा इनमें सुन्दर–सुन्दर पौधे लगाने चाहिए।
- पॉलीथीन बैग को इसके नियत स्थान पर ही डालने की आदत विकसित करें, जिससे उन्हें पुनर्चक्रण हेतु प्रयुक्त किया जा सके।
- पॉलीथीन बैग में छिलके अथवा खाद्य पदार्थ रखकर सड़क के किनारे न फेंकें। क्योंकि गाय या अन्य पशु पॉलीथीन का भी सेवन कर लेते हैं जिनके आँतों में फँस जाने से पशुओं की मृत्यु भी हो जाती है।
- नाली आदि में पॉलीथीन फेंकने से बचना चाहिए अन्यथा सीवर लाइन जाम होने का भय रहता है।

निर्वनीकरण का अर्थ (Meaning of Deforestation)

वाणिज्यिक प्रयोग हेतु वृक्ष काटना तथा उनके बदले में नए वृक्ष न लगाना अवनीकरण कहलाता है। वनों को अधिकतर लकड़ी के लिए काटा जाता है। जिसका प्रयोग रेलवे स्लीपर, फर्नीचर व भवन निर्माण, कागज बनाने व जलाने के लिए लकड़ी में किया जाता है। विकासशील देशों में वन लगातार सिकुड़ते जा रहे हैं। यदि वनों की कटाई की यही रफ्तार चलती है तो अगले सौ वर्षों में वन क्षेत्रों में वन लुप्त हो जाएंगे। वनों का विकास व संरक्षण जितना महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण वनों की देखभाल करना है। यदि वृक्ष लगा दिये जाएं और फिर उनकी देखभाल न की जाए या खेत में बीज डाल दिया जाए फिर उसकी देखभाल न की जाए तो वे नष्ट हो जाते हैं। ठीक यही बात वनों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। यदि वन लगा दिये जाएं और उनकी समुचित देखभाल की जाए तथा वर्तमान में जो वन उपलब्ध हैं उनका भी समुचित प्रबंधन किया जाए तभी वांछित परिणाम प्राप्त हो पाएंगे और तभी वनीकरण के कार्यक्रम सफल होंगे। वनीकरण के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य ध्यातव्य हैं–

1. केन्द्र सरकार कारगर तथा स्पष्ट वन–नीति घोषित करे तथा वन विभाग को व्यापक अधिकार दिया जाए।

टिप्पणी

2. वनों में उपयुक्त स्थानों पर निगरानी चौकियाँ स्थापित की जाएं।
3. वन काटने की ठेकेदारी प्रथा समाप्त की जाए।
4. एक के बदले दस के सिद्धान्त के अनुसार कार्य किया जाए।
5. लकड़ी के स्थान पर वैकल्पिक उपायों की खोज की जाए।
6. पशुओं की वन क्षेत्रों में अवैध व वैध चराई को रोका जाए।
7. वनों की चयनित कटाई व उनके सही रख–रखाव की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।
8. आधुनिक हथियारों से युक्त वन रक्षा दल बनाये जाएं।
9. अग्नि अवरोधक मार्ग निर्मित किये जाने चाहिए।

निर्वनीकरण से होने वाली हानियाँ (Harms of Deforestation)

1. पहाड़ी ढलानों पर पेड़ पानी के प्रवाह को नीचे की तरफ बहाने से रोकते हैं। पेड़ों के बिना पानी शीघ्रता से बहता है जिससे मिट्टी का कटाव होता है।
2. अवनीकरण के कारण, पौधों व पशुओं की अनेक प्रजातियां प्रत्यक्ष दिखाई देने के कारण विलुप्त हो जाती हैं।
3. पेड़ों के बिना, वर्षा की मात्रा कम हो जाती है जो स्थानीय व वैश्विक जलवायु में परिवर्तन का कारण बनती है।
4. अवनीकरण जंगली जीवन व दुर्लभ पौधों तथा पशुओं के विनाश का कारण बनता है।

वन संरक्षण की तकनीकियाँ (Strategies to conserve forestry)

वन के क्षेत्रों के सर्वेक्षण के लिए भारत सरकार द्वारा अनेक उपाय किये जा रहे हैं, जिसमें निम्नलिखित प्रमुख हैं–

(1) वन क्षेत्रों का सर्वेक्षण अब वन क्षेत्रों के सही अनुपात सुदूर संवेदन विधि से किया जाता है।

(2) वन विभाग ने अन्य विभागों, जैसे– मृदा संरक्षण, ग्राम पंचायत आदि से मिलकर सामूहिक योजनाओं का निर्माण किया है।

(3) आर्थिक दृष्टि से उपयोगी वृक्षों को अधिक लगाया जा रहा है।

(4) वनों के नियोजित ढंग से उपयोग करने की योजनाएं चलाई जाती हैं।

(5) वनों की अवैध कटाई कानूनी रूप से रोक दी गयी है।

(6) वनों के विकास हेतु एक महत्वपूर्ण योजना सामाजिक वानिकी के नाम से पुकारी व जानी जाती है। ग्रामवासियों व नागरिकों को रिक्त स्थानों पर खेती के चारों ओर वृक्ष लगाने को प्रेरित किया जा रहा है।

(7) वन क्षेत्रों के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय पार्क एवं अभ्यारण्य बनाये गये हैं।

भारतीय वन अधिनियम, 1929 की आवश्यकता

वनों के दुरुपयोग एवं उन्हें क्षय से बचाने के लिए वन संख्या अति आवश्यक है। वनों के संरक्षण से तात्पर्य समस्त पेड़ पौधों से है। मानव जीवन हेतु वनों के महत्व को ध्यान में रखते हुए हमें समस्त सम्मिलित उपायों के द्वारा इन्हें संरक्षण प्रदान करना चाहिए

टिप्पणी

पर्यावरण तथा परिस्थितिकी–संतुलन बनाये रखने के लिए वन संरक्षण करना विश्व की प्रथम आवश्यकता है, क्योंकि उपजाऊ मिट्टी का कटाव, भयंकर भू–स्खलन, प्रलयकारी बाढ़ें, वर्षा की कमी, पर्यावरण प्रदूषण, पारिस्थितिकी असंतुलन से आज समस्त जीवित जगत त्रस्त है, जो वनोन्मूलन के ही परिणाम हैं। इस प्रयास में सभी देश कार्यरत हैं।

भारत में वन नीति एवं प्रबंधन की नींव ब्रिटिश सरकार द्वारा वन विभाग की स्थापना करके रखी गई थी। ब्रिटिश सरकार ने वन सम्पदा के संरक्षण हेतु 19वीं शताब्दी में अनेक कानून पारित किये। ब्रिटिश सरकार का विचार था कि वनों का संरक्षण एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जिसे कोई असंगठित अथवा स्थानीय समुदाय द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विधिवत् प्रशिक्षित तथा केन्द्रीय रूप से संगठित अधिकारियों एवं कर्मचारियों का होना आवश्यक है। ये प्रशिक्षित अधिकारी के कर्मचारी ही उचित तरीके से वनों का प्रबंधन कर सकते हैं।

वनों का अधिनियम, वन उपज के अभिवहन तथा इमारती लकड़ी एवं अन्य वन उपज पर उद्ग्रहणीय शुल्क से सम्बद्ध विधि के समेकन के उद्देश्य से भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल ने 21 सितम्बर, 1929 को हस्ताक्षरित करके लागू किया। यह केन्द्रीय अधिनियम के रूप में स्वीकृत है।

भारतीय वन अधिनियम, 1927 के उद्देश्य (Objectives of the India Forest Protection Act, 1927)

इस प्रकार भारतीय वन अधिनियम, 1927 के पारित किये जाने का उद्देश्य वनों, वन–उपज इमारती लकड़ी तथा अन्य वन उत्पादों का संरक्षण करना, इन्हें लाने ले जाने के सम्बन्ध में प्रावधान करना तथा वन अधिकारी को वनों के संरक्षण के लिए अधिकार शक्ति देता है।

संक्षिप्त नाम और विस्तार : भारतीय वन अधिनियम 1927 की धारा 1 के अनुसार–

(1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम भारतीय वन अधिनियम 1927 है।

(2) इसका विस्तार उन राज्य क्षेत्रों के अतिरिक्त जो 1 नवम्बर, 1956 से ठीक पूर्व भाग–ख राज्यों में समाविष्ट थे, समस्त भारत पर है।

(3) यह उन राज्य क्षेत्रों पर लागू है जो 1 नवम्बर 1956 से ठीक पूर्व बिहार, मुम्बई, कुर्ग, दिल्ली, मध्य प्रदेश, ओडिशा, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल में समाविष्ट थे, लेकिन कोई भी राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम को उस पूर्ण राज्य में या उसके किसी विशिष्ट भाग में जिस पर यह विस्तारित है तथा जहाँ पर यह प्रवृत्त नहीं है, प्रवर्तन ला सकेगी।

निर्वनीकरण के प्रमुख कारण

वनों को अधिकतर लकड़ी के लिए काटा जाता है जिसका प्रयोग रेलवे स्लीपर, फर्नीचर व भवन निर्माण, कागज बनाने व जलाने के लिए ईंधन के रूप में किया जाता है। इस अवदोहन के परिणामस्वरूप, शिवालिक पहाड़ियों के वन बिल्कुल समाप्त हो चुके हैं। तीव्र नगरीकरण के परिणामस्वरूप, ऊष्ण कटिबंधीय वन विशेषतया भारत जैसे विकासशील देशों में लगातार सिकुड़ते जा रहे हैं। संसार के ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में प्रतिवर्ष कृषि व नगरीकरण के कारण 10 मिलियन हेक्टेयर वनों का क्षेत्र समाप्त होता जा रहा है।

अतएव निष्कर्ष यह है कि भारत सरकार वनों के नियोजित विकास तथा विस्तार द्वारा पर्यावरण संरक्षण के अनेक प्रयत्न करती है यद्यपि इनकी सफलता का मूल्यांकन अपेक्षित है।

टिप्पणी

जन चेतना जागृति के प्रयासों ने वन संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। विश्नोई समाज वन–संरक्षण को अपना धार्मिक उत्तरदायित्व समझता है तथा इस समाज की लगभग 323 स्त्रियों द्वारा जोधपुर महाराजा की आज्ञा के विरोध में पेड़ों की रक्षार्थ अपने प्राणों की बाजी लगा दी गई थी। इसी से प्रेरित होकर अनेक जन आंदोलन वनों की रक्षा हेतु प्रयासरत हैं, जिससे समाजवादी सुन्दरलाल बहुगुणा के प्रयासों से चमोली (उत्तराखंड) का 'चिपको आंदोलन' बहुचर्चित है। इसी प्रकार रेणी गांव की महिलाओं का वन बचाओ आंदोलन, दक्षिणी भारत का 'अप्पिको आंदोलन' महत्वपूर्ण है। ऐसा ही आंदोलन बाबा आम्टे जी ने नर्मदा सागर परियोजना के विरुद्ध चलाया। दून घाटी विवाद भी चूने की खदानों से फैले वायु–प्रदूषण से सुंदर घाटी को बनाने हेतु किया गया था। इसी प्रकार होशंगाबाद, मध्य प्रदेश की मिट्टी बचाओ अभियान, श्यामपुर ऋषिकेश की महिलाओं द्वारा लकड़ी न काटने का संकल्प आदि अनेक आंदोलन जन–जागृति के ही परिणाम हैं। इसलिए वन तथा वन्य जीव संरक्षण हेतु शासकीय प्रयासों के साथ–साथ सामाजिक प्रयास तथा जन–जागृति का होना नितान्त आवश्यक है।

प्रदूषण को कम करने हेतु किये गये प्रयास

भारतवर्ष ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व पर्यावरण प्रदूषण से अत्यधिक प्रभावित है, विकासशील एवं अविकसित देश इस समस्या से अधिक प्रभावित हुए हैं, क्योंकि अत्यधिक जनसंख्या, आर्थिक अभाव तथा अशिक्षा इस संकट से सहज मुक्ति नहीं दिला सकती। इस भयावह समस्या के निपटारे हेतु विद्वान न्यायाधीशों तथा विधिवेत्ताओं ने विभिन्न अधिनियमों तथा कानूनों को बनाया।

पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान करने के लिए ब्रिटिशकाल में ही कुछ कानून बचे थे, किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी 40वां संविधान संशोधन इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। हमारे संविधान में पर्यावरण की सुरक्षा के सम्बन्ध में 1976 में 42वें अनुच्छेद में राज्य एवं नागरिकों के अधिकार राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों के अंतर्गत प्रदान किये गये हैं।

- अनुच्छेद 48 (क) में लिखा गया है कि 'राज्य पर्यावरण की रक्षा करने और उसमें सुधार लाने का प्रयास करेगा और देश के वनों और वन्य जीवन की रक्षा करने का प्रयास करेगा।
- अनुच्छेद 51 (क) (6) में अन्य बातों के साथ यह भी उल्लेख है कि 'भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वनों, झीलों, नदियों तथा वन्य जीवन सहित प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें। उसमें सुधार करें तथा जीवों के प्रति भाव रखें।'
- अनुच्छेद 48(क) हमारे संविधान के राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत आता है, जिसके प्रावधान राज्य के उद्देश्य व प्रयोजन निर्धारित करते हैं। यद्यपि इन प्रावधानों को न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता किन्तु

टिप्पणी

सरकार का यह कर्तव्य है कि समस्त विधायी और प्रशासनिक क्रियाकलापों के कार्यान्वयन में इसको आधार माना जाए।

- अनुच्छेद 51.'क' (छ) संविधान के अन्तर्गत मौलिक कर्तव्यों के शीर्ष में आता है, जो संविधान में पहली बार 1977 में जोड़ा गया है। यह प्रावधान भी न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता है, किन्तु जनमानस में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए मौलिक कर्तव्यों को शिक्षा के एक अंग के रूप में होना चाहिए।

भारत सरकार द्वारा सन् 1980 में पर्यावरण मंत्रालय की स्थापना की गई। जून 1992 में संपन्न मानव पर्यावरण पर संयुक्त राज्य संघ के स्टॉक होम के अधिवेशन के अनुसार, 'मनुष्य अपने पर्यावरण का निर्माता एवं शिल्पकार दोनों ही है, जिससे उसे भौतिक स्थिरता प्राप्त होती है तथा बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास का सुअवसर प्राप्त होता है।' इस ग्रह पर मनुष्य जाति की लंबी तथा पीड़ादायक उत्क्रमण यात्रा में एक ऐसी स्थिति आ गई है, जब विज्ञान और तकनीक के तीव्र विस्तार द्वारा मनुष्य ने एक प्रकार से अपने पर्यावरण की कायाकल्प पलटने की क्षमता प्राप्त कर ली है। पर्यावरण प्रबंधन के लिए अनेक कानूनी प्रावधान बनाये गये हैं, जिनकी मुख्य भूमिकाएं हैं–

- कानून पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाले व्यक्ति को दंडित करता है।
- कानून पीड़ित को क्षतिपूर्ति दिलवाता है।
- कानून व्यक्ति को पर्यावरण पर दबाव बढ़ाने से वर्जित करता है।
- कानून पर्यावरण संरक्षण नीति को कार्य रूप में परिणत करता है।
- कानून विकास नीति को भी कार्य रूप में परिणत करता है।

भारत में पर्यावरण कानून का इतिहास 126 वर्ष पुराना है। प्रथम कानून सन् 1894 में पास हुआ था, जिसमें वायु प्रदूषण नियंत्रणकारी कानून थे। वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण एक जटिल समस्या है, तथा यह संपूर्ण विश्व के लिए चुनौती है। बढ़ता हुआ प्रदूषण संपूर्ण मानव जाति के लिए एक अभिशाप बन गया है। मानव के अतिरिक्त वन एवं वन्य जीव–जंतु, जल एवं जलीय जीव–जन्तु सभी इससे ग्रस्त हैं। इसी कारण संविधान में पर्यावरण संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है तथा इस समस्या के समाधान हेतु समय–समय पर अनेकानेक कानून भी बनाये गये हैं।

कानूनी स्थिति

प्रदूषण मुक्त पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए विश्व के अनेक देशों ने कानून को विनियमित करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रदूषण के साथ ही प्रदूषण के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए कानून बनाए हैं। पर्यावरण कानून का प्रमुख उद्देश्य वातावरण के प्रमुख उपहार को प्रदूषण से सुरक्षित रखना है। भारतीय समाज धार्मिक उपहार को प्रदूषण से सुरक्षित रखता है। भारतीय समाज धार्मिक प्रवृत्ति का होने के कारण यहाँ प्राकृतिक संसाधन (पौधे, जन्तु, नदियाँ) पूजे जाते हैं। इसी कारण से प्राचीन काल में पर्यावरण रक्षा के लिए कानून नहीं बना था, लेकिन पिछली सदी से पर्यावरण की सुरक्षा हेतु बड़ी संख्या में कानून बनाये गए। ये सभी कानून तीन श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं–

टिप्पणी

- सामान्य कानून
- विशेष विधान
- विनियामक कानून

• **सामान्य कानून (Common laws):** सामान्य कानून इंग्लैंड के परम्परागत कानून की व्याख्या है। यह न्यायिक निर्णयों पर आधारित है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 372 सामान्य कानून पर आधारित है। इस कानून के अंतर्गत किसी भी कार्य के विरुद्ध जो किसी की संपत्ति था व्यक्ति की हानि का कारण बना हो, प्रभावित पक्ष क्षतिपूर्ति या निषेधाज्ञा था दोनों का दावा कर सकता है।

पर्यावरण प्रदूषण के लिए निम्न तीन कारक उत्तरदायी हैं–

(क) व्यवधान

(ख) अतिक्रमण

(ग) लापरवाही

• **विशेष विधान (Specific Legislative):** जल एवं वायु प्रदूषण।

संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provision) भारतीय संविधान विश्व का प्रथम संविधान है, जिसमें पर्यावरण के लिए विशिष्ट प्रावधान है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना यह सुनिश्चित करती है कि हमारा देश समाजवादी समाज की अवधारणा पर आधारित है, जहाँ राज्य व्यक्ति की अपेक्षा सामाजिक समस्याओं को प्राथमिकता देता है। समाजवाद का मूल लक्ष्य है, सभी को जीवन का सुखद स्तर उपलब्ध करवाना, जो केवल एक प्रदूषण मुक्त वातावरण में ही संभव है।

1.4.2 विनियामक कानून

• प्रदूषण नियंत्रण से सम्बन्धित कानून/अधिनियम

भारत सरकार ने प्रदूषण के निवारण और नियंत्रण हेतु जो कदम उठाये हैं, उनमें प्रदूषण नियंत्रण से सम्बन्धित अधिनियम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इतने विस्तृत अधिनियम बहुत कम देशों में हैं। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि वर्ष 1974 से पहले प्रदूषण नियंत्रण से सम्बन्धित कोई नियमित अधिनियम नहीं था। अप्रत्यक्ष रूप से फ्रैकी एक्ट 1948, बायलर एक्ट 1923, रीवर बोर्डस एक्ट 1956, इंडियन फिशरीज एक्ट 1887 तथा एटोमिक एनर्जी एक्ट 1962 इत्यादि में अन्य प्रावधानों के साथ प्रदूषण नियंत्रण सम्बन्धी प्रावधान भी किये गये थे।

इन संक्षिप्त प्रावधानों से पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी उद्देश्य पूर्ण नहीं हो पा रहे थे, इसलिए वर्ष 1962 में केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने घरेलू और औद्योगिक बहिस्रावों से प्रदूषण की समस्या के लिए एक समिति का गठन किया। इस समिति के मतानुसार सरकार, केन्द्र तथा राज्य स्तर पर इससे सम्बन्धित पृथक कानून बनाने चाहिए। इस अनुशंसा के आधार पर सरकार ने केन्द्रीय स्तर पर कानून बनाने का निर्णय लिया।

23 मार्च, 1974 को राष्ट्रपति से स्वीकृति मिलने के पश्चात जल (प्रदूषण, निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम 1974 को लागू हुआ। इस अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत प्रत्येक राज्य में राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड तथा केन्द्र स्तर पर केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की गई।

टिप्पणी

राज्य बोर्डों द्वारा अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के कार्यान्वयन हेतु आर्थिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए 1977 में जल (प्रदूषण, निवारण एवं नियंत्रण) उपकर अधिनियम, 1977 पारित किया गया। वायु प्रदूषण नियंत्रण के लिए वर्ष 1981 में वायु (प्रदूषण, निवारण और नियंत्रण) अधिनियम 1981 पारित हुआ। उपरोक्त प्रावधानों को वृहत रूप देने तथा खतरनाक रसायनों एवं अपशिष्टों को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय सरकार ने पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 लागू किया।

19 नवम्बर, 1986 से लागू पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक है और पर्यावरण संरक्षण के समस्त महत्वपूर्ण अंगों को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय सरकार को व्यापक अधिकार प्राप्त है। उदाहरणार्थ पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए उपाय करने की शक्ति, अधिकारियों की नियुक्ति हेतु निर्देश देने की शक्ति, विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय मानक स्थापित करने की शक्ति, खतरनाक रसायनों और कचरे में कार्य करने वाले व्यक्तियों की सुरक्षा हेतु दिशा–निर्देश, पर्यावरण प्रयोगशालाओं की मान्यता इत्यादि इसी अधिनियम के अन्तर्गत हैं।

खतरनाक औद्योगिक प्रक्रियाओं से बढ़ते खतरे एवं दुर्घटनाओं को ध्यान में रखकर लोक दायित्व बीमा अधिनियम 1991 लागू किया गया। 1989 में परिसंकटमय अपशिष्ट प्रबंधन एवं हथालन कानून भी बनाये गये, जिसमें खतरनाक रसायनों और अपशिष्ट के उपयोग तथा विसर्जन से संबंधित निर्देश हैं।

पर्यावरण को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन की अधिसूचना 1994 एवं राष्ट्रीय पर्यावरण प्राधिकरण अधिनियम, 1995 भी बनाए गए हैं। इतने व्यापक और सख्त कानून बहुत से विकसित देशों में भी नहीं है। अब सामान्य जन भी पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले उद्योगों या व्यक्तियों के विरुद्ध मुकदमा कर सकते हैं।

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 : भारत सरकार द्वारा पर्यावरण प्रदूषण रोकने तथा पर्यावरण को अपघटित होने से बचाने हेतु संपूर्ण देश में जल (प्रदूषण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 एवं वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम 1981 प्रख्यापित किये गये हैं। ये अधिनियम प्रदेश के प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के माध्यम से कार्यान्वित किये जाते हैं। भोपाल गैस दुर्घटना के पश्चात् यह अभ्यास हुआ कि औद्योगिक दुर्घटनाओं को रोकने तथा पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित किये जाने हेतु एक व्यापक एवं प्रभावी अधिनियम लाया जाए। इसी उद्देश्य से पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 लाया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत पर्यावरण संरक्षण के अन्य पहलुओं के साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले तत्वों की अधिकतम सीमा निर्धारित करने हेतु केन्द्र सरकार को नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। केन्द्र सरकार द्वारा पारित अधिनियम के प्रावधान निम्न हैं–

- पर्यावरण संरक्षण कार्य में राज्य सरकारों के कार्यों को नियमित करना।
- पर्यावरण संरक्षण के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम का आयोजन एवं निष्पादन करना।
- पर्यावरण गुणवत्ता के मानक निर्धारित करना।
- विभिन्न प्रदूषण स्रोतों से निर्गत होने वाले प्रदूषकों की अधिकतम प्रदूषणकारी सीमा निर्धारित करना।

टिप्पणी

- उन क्षेत्रों का निर्धारण करना, जिनमें सुरक्षा उपायों के साथ विभिन्न औद्योगिक संस्थान स्थापित किये जा सकते हैं।
- पर्यावरण प्रदूषण के कारण होने वाली दुर्घटनाओं से बचाव के कारगर सुरक्षात्मक तरीके निर्धारित करना।
- घातक सामग्री को उठाने–रखने की सुरक्षात्मक कार्यविधि का निर्धारण।
- औद्योगिक प्रक्रियाओं, सामग्री आदि का पर्यावरण प्रदूषण की दृष्टि से निरीक्षण।
- पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम के लिए शोध कार्य करना।
- उद्योग संस्थानों, उपकरणों, मशीनरी, औद्योगिक प्रक्रियाओं का निरीक्षण।
- पर्यावरण प्रदूषण, शोध प्रयोगशालाओं की स्थापना, मान्यता प्रदान करना।
- पर्यावरण प्रदूषण सम्बन्धी सूचना एकत्र करना तथा प्रकाशित करना।
- मैनुअल, गाइड बुक, कोड आदि तैयार करना।
- पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी अन्य समुचित कार्य।
- पर्यावरण प्रदूषक उद्योगों को रोकने का आदेश देना।

  केन्द्र सरकार निम्न मानक स्थापित करने हेतु सक्षम है–

  (i) वायु, जल तथा मृदा के मानक।

  (ii) विभिन्न प्रदूषकों का अधिकतम अनुमन्य सांद्रण।

  (iii) घातक पदार्थों के उठाने, रखने के नियम।

  (iv) विभिन्न स्थानों पर घातक पदार्थों के प्रयोग पर रोक।

  (v) विभिन्न स्थानों पर उद्योग–धंधे लगाने पर प्रतिबंध।

  (vi) दुर्घटना की रोकथाम की कार्यविधि।
- कोई भी व्यक्ति कोई ऐसा कार्य या उद्योग स्थापित नहीं कर सकता, जिससे निर्गत होने वाला प्रदूषक अनुमन्य से अधिक हो।
- सरकारी संस्थानों का निरीक्षण करने, नमूने लेने तथा उद्योग कार्य रोकने के लिए सक्षम है।
- नियमों का उल्लंघन करने पर एक लाख रुपये तक जुर्माना तथा 5 वर्षों की कैद का प्रावधान है।
- कंपनियों तथा सरकारी संस्थानों द्वारा नियमों का उल्लंघन करने पर दंड का प्रावधान है।

जल प्रदूषण अधिनियम : यह अधिनियम जल प्रदूषण की रोकथाम एवं नियंत्रण के लिए बनाया गया है। उसके माध्यम से बोर्डों का गठन किया गया है, जो जल प्रदूषण की रोकथाम व नियंत्रण करते हैं। अधिनियम द्वारा बोर्डों का अधिकार एवं कर्तव्य प्रदत्त किये गये हैं।

जल प्रदूषण से तात्पर्य जल का अशुद्धिकरण अथवा उसमें भौतिक, रासायनिक या जीव विज्ञानी परिवर्तन करना है अथवा सीवेज या कोई अन्य औद्योगिक, कृषि या किसी अन्य न्यायसंगत कार्य के लिए अयोग्य या पशु–पक्षी अथवा जलीय वनस्पति के

टिप्पणी

लिये अयोग्य कर दें।

(1) केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड में एक पूर्वकालिक सभापति, 5 नामित अधिकारी, 5 नामित राज्य बोर्ड अधिकारी 3 नामित गैर–सरकारी व्यक्ति, 2 नामित औद्योगिक इकाई प्रतिनिधि तथा 1 पूर्णकालिक सचिव होता है।

(2) राज्य बोर्ड में एक पूर्णकालिक सभापति, 5 राज्य सरकार नामित अधिकारी, 5 नामित राज्य बोर्ड अधिकारी, 3 नामित गैर–सरकारी व्यक्ति, 2 नामित औद्योगिक इकाई प्रतिनिधि तथा 1 पूर्णकालिक सचिव होता है।

(3) सदस्यों का कार्यकाल 3 वर्ष का होता है।

(4) बोर्ड की मीटिंग 3 मास में कम से कम एक बार होती है।

(5) केंद्र विशेष कार्यों के लिए कमेटी बना सकता है, जिसमें बोर्ड तथा बाह्य दोनों प्रकार के सदस्य हो सकते हैं।

केन्द्रीय बोर्ड के कार्य

- केन्द्र सरकार को जल प्रदूषण सम्बन्धी सलाह देना।
- राज्य बोर्डों के कार्यों का एकीकरण।
- राज्य बोर्डों को जल प्रदूषण जाँच और शोधकार्य में सहायता प्रदान करना।
- जल प्रदूषण विशेषज्ञों का प्रशिक्षण।
- जल प्रदूषण सम्बन्धी जानकारी, जन संचार माध्यमों द्वारा जन साधारण को प्रदान करना।
- सम्बन्धित तकनीकी व सांख्यिकी सूचना एकत्र, एकीकृत एवं प्रकाशित करना।
- सरकार की सहायता से जल में मानक करना तथा समय–समय पर उन्हें पुनरीक्षित करना।
- जल प्रदूषण रोकने के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम चलाना।

राज्य बोर्ड के कार्य

- राज्य सरकार के जल प्रदूषण रोकने के कार्यक्रम का संचालन।
- राज्य सरकार को जल प्रदूषण सम्बन्धी सलाह प्रदान करना।
- जल प्रदूषण संबंधी राज्य सरकार पर सूचनाएँ एकत्र करना, एकीकृत करना तथा प्रकाशित करना।
- जल प्रदूषण नियंत्रण हेतु अनुसंधान कराना।
- विशेषज्ञों के प्रशिक्षण में केन्द्रीय बोर्ड की सहायता करना।
- सीवेज तथा उत्सर्गों का उपचार की दृष्टि से निरीक्षण करना।
- जल प्रदूषण के मानक स्थापित करना एवं पुनरीक्षित करना।
- जल उपचार के कारगर व सस्ते तरीके निकालना।
- सीवेज व उत्सर्ग के उपयोग प्रयोग ज्ञात करना।

टिप्पणी

- सीवेज व उत्सर्ग हटाने के उचित तरीके निकालना।
- उपचार के मानक स्थापित करना।
- सरकार को उन उद्योगों की जानकारी देना, जो हानिकारक उत्सर्ग बाहर छोड़ रहे हों।
- बोर्ड के सदस्य, अधिकारी या अधिकृत व्यक्ति किसी भी उद्योग से उत्सर्ग जिले का नमूना ले सकते हैं।
- बोर्ड के सदस्य, अधिकारी या अधिकृत व्यक्ति किसी भी उद्योग का निरीक्षण कर सकते हैं।
- किसी व्यक्ति को जानबूझकर कोई विषाक्त नशीला पदार्थ किसी भी जल धारा में निर्गत करने का अधिकार नहीं है।
- नियमों का उल्लंघन करने पर तीन महीने की कैद तथा जुर्माने का प्रावधान है।

भारतीय वन अधिनियम, 1927

भारतीय वन अधिनियम सन् 1927 में पारित किया गया था। भारतीय वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 तथा वन संरक्षण नियम, 1981 में पारित हुआ। इसके नियम इस प्रकार हैं–

- सन् 1927 में पारित मूल अधिनियम में वन–पशु अधिकारी, वन संपदा, नदी, वृक्ष, लकड़ी इत्यादि की अधिकृत परिभाषा दी गई है।
- सन् 1927 के अधिनियम के अनुसार, सुरक्षित वन घोषित करने का अधिकार राज्य सरकारों का है।
- सुरक्षित वनों के अंदर किसी जाति के किसी वृक्ष को राज्य सरकार सुरक्षित घोषित कर सकती है।
- सुरक्षित वनों के नियमों का निर्धारण भी राज्य सरकारें कर सकती हैं, जो निम्न क्षेत्रों में होंगे–
  - (i) वृक्ष तथा लकड़ी काटने सम्बन्धी।
  - (ii) सहवर्ती ग्रामों के वासियों को वन के भीतर उपलब्ध वन संपदा को अपने उपयोग के लिए देने सम्बन्धी।
  - (iii) सहवर्ती वनों के अंदर खेती करने सम्बन्धी।
  - (iv) अग्निकांड सम्बन्धी।
  - (v) घास काटने सम्बन्धी।
  - (vi) वनों के प्रबंधन सम्बन्धी।
- वृक्षों को हानि पहुँचाने पर छह मास की कैद या 500 रुपये तक जुर्माने का प्रावधान है।
- राज्य सरकारें उद्घोषण द्वारा किसी भी वन का नियंत्रण सुरक्षा की दृष्टि से अपने हाथ में ले सकती हैं।
- पालित पशुओं द्वारा वन सीमा का उल्लंघन करने पर मालिक पर आर्थिक जुर्माना किया जा सकता है।

टिप्पणी

वन संरक्षण अधिनियम, 1980

इस अधिनियम में सन् 1980 में संशोधन किया गया था। इसके अनुसार–

- राज्य सरकारें सुरक्षित वनों को असुरक्षित अथवा किसी अन्य वन को सुरक्षित घोषित कर सकती हैं।
- सुरक्षित वनों के कुछ भाग आवश्यकता होने पर चाय, कॉफी, मसाले, रबर आदि के उत्पादन के लिए प्रयोग कराए जा सकते हैं।
- केंद्र सरकार सलाहकार समिति का गठन कर सकती है, जो केंद्र सरकार के वनों के सम्बन्ध में नियम बना सकती है।
- केन्द्र सरकार वन सम्बन्धी नियम बना सकती है।

वन संरक्षण नियम, 1981

उक्त नियम केन्द्र सरकार द्वारा बनाये गये हैं, जो नियम वन संरक्षण अधिनियम, 1980 द्वारा केन्द्र सरकार को प्रदत्त अधिकारी के अनुरूप हैं–

(1) सलाहकार समिति में निम्न सदस्य होंगे–

- वनों का महानिरीक्षक– अध्यक्ष
- अतिरिक्त वन महानिरीक्षक– सदस्य
- संयुक्त कमिश्नर मृदा संरक्षण– सदस्य
- तीन प्रमुख वैज्ञानिक– सदस्य
- उप–महानिरीक्षक– वन सचिव सदस्य

(2) समिति के गैर सरकारी सदस्यों का कार्यकाल 2 वर्ष होगा व उनके यात्रा एवं अन्य भत्ते सरकार द्वारा देय होंगे।

(3) समिति के कार्य–

- एक महीने में कम से कम एक बार बैठक नई दिल्ली में या आवश्यकता होने पर देश में कहीं भी की जा सकती है।
- अध्यक्ष के न होने पर वरिष्ठतम व्यक्ति अध्यक्षता कर सकता है।

(4) राज्य सरकारों द्वारा विचार के लिए प्रस्ताव भारत सरकार के वन एवं पर्यावरण सचिव को दिये जाने चाहिए।

(5) समिति निम्न बिंदुओं पर केंद्र सरकार को सुझाव प्रदान करती है–

- किसी वन भूमि जो प्राकृतिक वन, राष्ट्रीय पार्क, वन्य प्राणी पार्क आदि में आती है, के गैर वन सम्बन्धी उपयोग के संबंध में।
- सुरक्षित वनों का कृषि, शरणार्थी निवास आदि के उपयोग के सम्बन्ध में।
- राज्य सरकारों द्वारा उक्त सम्बन्ध में किये गये कार्यों की समीक्षा।
- पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव के संबंध में।
- केन्द्र सरकार समिति के सुझाव मान भी सकती है तथा अन्य विशेष जाँच करने के लिए अधिकृत है।

टिप्पणी

वन्य प्राणी सुरक्षा अधिनियम, 1972

इस अधिनियम को 1972 में पारित किया गया। इसमें 1982, 1986, 1991 तथा 1993 में संशोधन किये गये। इसमें पशु, पशुपदार्थ, पकड़े हुए पशु आदि की समुचित परिभाषाएँ की हैं।

इस अधिनियम में वन्य प्राणी संरक्षण निदेशक, सह–निदेशक, मुख्य वन्य–प्राणी वार्डन, वन्य प्राणी वार्डन तथा अन्य अधीनस्थ कर्मियों के चुनाव और नियुक्ति के निर्देश हैं।

केंद्र अथवा राज्य स्तर पर वन्य–प्राणी सलाहकार बोर्ड निम्न प्रकार गठित होता है–

- केंद्र अथवा राज्य सरकार का वन मंत्री– अध्यक्ष
- सम्बन्धित विधान–सभा के दो सदस्य– सदस्य
- राज्य अथवा केंद्र सरकार का वन सचिव– सदस्य
- राज्य सरकार का मुख्य वन अधिकारी– पदेन सदस्य
- निदेशक द्वारा नामित अधिकारी– सदस्य
- मुख्य प्राणी वार्डन– पदेन सदस्य
- केंद्र अथवा राज्य सरकार द्वारा नामित 10 व्यक्ति, जो वन्य प्राणी संरक्षण अथवा जन–जातियों से सम्बन्धित हों।

बोर्ड की बैठक कम से कम दो बार होती है। बोर्ड अपनी कार्य शैली स्वयं निर्धारित करता है। मुख्य वन्य प्राणी वार्डन द्वारा अनुमति की स्थिति के अतिरिक्त अन्य किसी स्थिति में वन्य प्राणियों का शिकार करने की अनुमति नहीं है। इस नियम द्वारा विशिष्ट प्रकार के पादपों को तोड़ने, झाड़ने एकत्रित करने की अनुमति बिना केंद्र सरकार के नहीं मिल सकती। बिना लाइसेंस के किन्हीं विशिष्ट प्रकार के पादपों को रोपित नहीं कर सकता। इस अधिनियम में एक केंद्रीय चिड़ियाघर अधिकरण (Central Zoo Authority) के गठन का प्रावधान किया गया है, जो चिड़ियाघर सम्बन्धी कार्यों की देखरेख करता है।

वन्य प्राणी व पदार्थ राष्ट्रीय संपत्ति हैं और उनका व्यापार करना अपराध होता है। इस अधिनियम की अनुसूचियों में संरक्षित वन्य प्राणियों, पदार्थों, पादपों आदि की अनुसूची दी गई है। नियमों का उल्लंघन करने पर तीन वर्ष की कैद तथा 25 हजार रुपये जुर्माने या दोनों का प्रावधान है।

मोटर गाड़ी अधिनियम, 1988

भारतीय मोटर गाड़ी अधिनियम सर्वप्रथम 1914 में बनाया गया था। इसे 1939 तथा फिर 1988 एवं 1994 में संशोधित किया गया। इस अधिनियम के 1994 तक संशोधित रूप के मुख्य तथ्य निम्न हैं–

- इस अधिनियम में 14 अध्याय तथा दो अनुसूचियां हैं।
- प्रारंभिक अध्याय में परिभाषाएँ हैं तथा अन्य अध्यायों में ड्राइविंग लाइसेंस, बसों के कंडक्टरों का पंजीकरण, मोटर गाड़ियों का पंजीकरण, यातायात नियंत्रण सम्बन्धी नियम एवं शर्तें दी गई हैं।

टिप्पणी

- राज्य स्तर की परिवहन संस्थाओं के नियमन के अधिकार एवं नियम एक अलग अध्याय में दिए गए हैं।
- इस अधिनियम में मोटर गाड़ियों के उत्पादन, अनुरक्षण आदि के सामान्य सीमा बंधन भी निर्धारित किये गये हैं।
- अन्य व्यक्ति द्वारा दुर्घटना में मोटरगाड़ी की हुई क्षति पूर्ति हेतु की जाने वाली बीमा योजनाओं के नियम और शर्तें इस अधिनियम द्वारा ही नियंत्रित किये जाते हैं।
- इस अधिनियम में वर्णित नियमों का उल्लंघन होने पर निर्धारित दंड की प्रक्रिया अध्याय 13 में विस्तार से दी गई है।
- इसके अनुसार 18 वर्ष से कम आयु के किसी व्यक्ति को चालक लाइसेंस नहीं दिया जा सकता। 20 वर्ष से कम आयु का व्यक्ति किसी यातायात गाड़ी का चालक लाइसेंस नहीं ले सकता। पूर्ण स्थायी लाइसेंस लेने से पूर्व प्रशिक्षु लाइसेंस लेना होता है व पूर्ण स्थायी लाइसेंस 3 वर्ष के लिए मान्य होता है।
- गाड़ियों के पंजीकरण के लिए अधिकृत पंजीकरण अधिकारी का आवेदन किया जाना चाहिए।
- पंजीकरण 15 वर्षों के लिए मान्य होता है।
- यातायात नियंत्रण की दृष्टि से मोटरगाड़ियों के खाली तथा भरे हुए भारों का निर्धारण कर पंजीकरण आदेश में दर्ज किया जाता है। इसका उल्लंघन करने पर दंड का प्रावधान है। राज्य सरकारें इच्छित स्थानों पर इच्छित मोटर गाड़ियों के प्रवेश एवं चालन पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण प्रदूषण पर स्थायी अथवा अस्थायी रोक लगा सकती है।
- दुर्घटना होने पर मोटर चालक को घायल व्यक्ति के उपचार में सहायता करनी चाहिए। पुलिस को तुरंत सूचना देनी चाहिए तथा बीमा कंपनी को सूचना देनी चाहिए।
- अधिकृत व्यक्तियों को अधिनियम में वर्णित सूचनाएँ न देने पर 500 रुपये आर्थिक दंड का प्रावधान है।
- अनधिकृत व्यक्ति द्वारा मोटर गाड़ी चलाने पर तीन मास की कैद या 1000 रुपये आर्थिक दंड का प्रावधान है।
- निर्धारित गति से अधिक गति पर मोटर चलाने पर 1000 रुपये तक आर्थिक दंड, खतरनाक तरीके से मोटर चलाने पर प्रथम बार में 6 मास का कारावास या 1,000 रुपये जुर्माना, अगले अपराध पर 2 वर्ष तक की कैद या 2000 रुपये जुर्माने का प्रावधान है। शराब पीकर गाड़ी चलाने पर पहली बार पकड़े जाने पर 6 माह की कैद व दूसरी बार में 3 वर्ष तक की कैद हो सकती है।
- अत्यधिक शोर वाले वाहन को चलाने पर पहली बार 500 रुपये तथा अगली बार 2,000 रुपये तक का जुर्माना किया जा सकता है।

पर्यावरण की सुरक्षा हेतु अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित कार्यक्षेत्र

- पर्यावरण संरक्षण हेतु नीति निर्धारण करना।
- पर्यावरण की सुरक्षा व सुधार हेतु योजनाएं चलाना।

टिप्पणी

- जल, वायु तथा ध्वनि प्रदूषण का अनुश्रवण।
- प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना तथा उनका उचित सीमा तक उपयोग न करना।
- पर्यावरण की दृष्टि से संवेदनशील व अपघटित क्षेत्रों के विकास हेतु योजनाएं क्रियान्वित करना।
- खतरनाक प्रकृति के कारखानों से होने वाली संभावित दुर्घटनाओं से निपटने के लिए प्रत्येक खतरनाक इकाई का एक 'ऑन साइट क्राइसिस मैनेजमेंट प्लान' तैयार करना।
- औद्योगिक इकाइयों के परिसंकटमय अपशिष्ट पदार्थों के निस्तारण व प्रबंध हेतु योजना चलाना।
- प्रभावित औद्योगिक स्थलों का पर्यावरण की दृष्टि से मूल्यांकन कर इनकी उपयुक्तता/अनुपयुक्तता के सम्बन्ध में अभिमत देना।
- पर्यावरणीय स्टेटस रिपोर्ट करना।
- औद्योगिक इकाइयों के अपशिष्ट पदार्थों के पुनर्उपयोग हेतु योजनाएँ बनाना।

विकास योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन

- पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने तथा पर्यावरण संरक्षण में जनभागीदारी बढ़ाने के उद्देश्य से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पर्यावरण अध्ययन को अनिवार्य विषय के रूप में महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में सम्मिलित किया गया है।
- सेमीनार, गोष्ठी, प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन।
- प्रदर्शनी/प्रतियोगिताओं का आयोजन।
- शिक्षण संस्थाओं/स्वयं सेवी संस्थाओं के सहयोग से पर्यावरणीय जन–जागरूकता के विविध कार्यक्रमों का आयोजन।
- प्रचार सामग्री का निर्माण व वितरण।
- होर्डिंग्स की स्थापना।
- फिल्म निर्माण।
- दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के माध्यम से पर्यावरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना।
- समाचार पत्रों में पर्यावरण विषय पर परिशिष्ट का प्रकाशन।

प्रमुख पर्यावरणीय जन जागरूकता दिवस

(1) विश्व पर्यावरण दिवस – 5 जून

(2) विश्व पर्यावरण स्वास्थ्य दिवस – 26 सितम्बर

(3) विश्व जल दिवस – 22 मार्च

(4) पृथ्वी दिवस – 22 अप्रैल

टिप्पणी

(5) विश्व जैव विविधता दिवस – 29 दिसम्बर

(6) प्रवासी पक्षी दिवस – 8 मई

(7) तंबाकू रोधी दिवस – 31 मई

(8) राष्ट्रीय प्रदूषण निवारण दिवस – 2 दिसम्बर

(9) मरुस्थल दिवस – 17 जून

(10) अक्षय ऊर्जा दिवस – 20 अगस्त

(11) जनसंख्या दिवस – 11 जुलाई

(12) विश्व वन जीव दिवस – 1 अक्टूबर

(13) ऊर्जा दिवस – 14 दिसम्बर

(14) पर्वत दिवस – 11 दिसम्बर

(15) सुंदर वन प्रोटोकाल दिवस – 1 फरवरी

(16) राष्ट्रीय विज्ञान दिवस – 28 फरवरी

(17) विश्व वानिकी दिवस – 21 मार्च

(18) विश्व स्वास्थ्य दिवस – 7 अप्रैल

(19) अन्तर्राष्ट्रीय ओजोन परत संरक्षण दिवस – 16 सितम्बर

(20) राष्ट्रीय प्रदूषण निवारण दिवस – 2 दिसम्बर

(21) राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण दिवस – 3 दिसम्बर

पर्यावरण वाहिनी योजना

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार ने पर्यावरणीय जागरूकता उत्पन्न करने तथा पर्यावरण, वन तथा अन्य वन्य जीवों के परिरक्षण में लोगों को सम्मिलित करने के उद्देश्य से यह अभियान के रूप में 'पर्यावरण वाहिनी' नामक योजना प्रारम्भ की है। पर्यावरणीय संरक्षण के प्रयासों में निम्न स्तर के जन–समूह को सम्मिलित करने के लिए जिला स्तर पर पर्यावरण वाहिनी गठित करने की योजना की संकल्पना की गई। योजना के निम्नांकित उद्देश्य हैं–

- पर्यावरण जागरूकता उत्पन्न करना तथा सक्रिय प्रतिभागिता के द्वारा लोगों को सम्मिलित करना।
- वनों, वन्यजीवों, प्रदूषण, पर्यावरणीय अवक्रमण और जीव–जन्तुओं के प्रति क्रूरता से सम्बन्धित गैर–कानूनी कार्यों की रिपोर्ट देना।
- वनीकरण और पौधों की उत्तरजीवितता के सम्बन्ध में प्रति सूचना।
- नमूनों के संग्रहण समिति निगरानी, वाहन प्रदूषण सहित परिवेशी वायु और जल गुणवत्ता का विश्लेषण।

एक वाहिनी में सदस्यों की संख्या 100 तक हो सकती है लेकिन प्रारंभ में सदस्यों की संख्या 20 तक सुरक्षित रखी जाती है। विद्यार्थी, नागरिक तथा सरकारी संगठन इस प्रयोजन के लिए वाहिनी सदस्य होते हैं। वाहिनी की सदस्यता अवैतनिक

होती है तथा सदस्यों द्वारा बैठकों में भाग लेने के लिए किए गये खर्च की केवल आंशिक रूप से ही प्रतिपूर्ति की जाती है। वाहिनी की जिलाधिकारी द्वारा महीने में कम से कम एक बैठक आयोजित होनी होती है।

टिप्पणी

प्रदूषण मुक्त वातावरण एवं स्वच्छ पर्यावरण के निर्माण में जन सहयोग

- उद्योगों के चारों ओर, घनी बस्तियों में सड़कों के किनारे, खाली बंजर भूमि, खेतों की मेड़ एवं सार्वजनिक स्थानों पर वृक्षारोपण करें तथा वनों का विनाश रोकें।
- समस्त जीव–जंतुओं की सुरक्षा और संरक्षण को प्रोत्साहन दें।
- स्वस्थ व सुखी जीवनयापन हेतु जनसंख्या नियंत्रित रखें।
- उद्योगों आदि से निकलने वाले प्रदूषित जल/उत्सर्जन को निर्धारित मानकों के अनुरूप नदी, नालों, भूमि/वायुमण्डल आदि में उत्सर्जित करें।
- नये उद्योगों की स्थापना, बस्तियों के निर्माण एवं विकास कार्यों के पूर्व ही पर्यावरण पहलुओं का समावेश किया जाए।
- नदी एवं अन्य जल स्रोतों में बिना जले एवं अधजले शवों को प्रवाहित न किया जाए। इसके लिए विद्युत शवदाह गृहों और सुधारित लकड़ी के शवदाह गृहों का उपयोग करें।
- कुएँ पर जगत अवश्य बनायें तथा समय–समय पर कुंओं में लाल दवा या क्लोरीन डालकर पानी को रोगाणु रहित करने के पश्चात ही प्रयोग करें।
- स्वच्छ प्रौद्योगिकी को अपनाकर उद्योगों व अन्य श्रोतों से जनित कूड़े–कचरे का पुनः प्रयोग करके बायोगैस ऊर्जा, खाद, बिजली, भवन निर्माण सामग्री व अन्य उत्पादों के निर्माण में करें।
- तेज ध्वनि को स्वेच्छा से कम करके ध्वनि प्रदूषण को कम करने में सहयोग करें।
- कूड़े करकट का समुचित निर्धारित स्थल पर निस्तारण करें।
- समय–समय पर वाहनों के कारबोरेटर एवं उत्सर्जन की जाँच कराते रहें, जिससे उत्सर्जित धुएं को नियंत्रित किया जा सके।
- रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैविक खादों, वर्मीकम्पोस्ट, हरी खाद, जैविक कल्चर, कम्पोस्ट खाद एवं फलीदार फसलों को लगाएं।
- रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग अति आवश्यक होने पर अंतिम विकल्प के रूप में संतुलित मात्रा में वैज्ञानिक तरीके से किया जाए। कीटों व खरपतवार का नियंत्रण नीम की खली/निबौरी/यांगिक विधि द्वारा करने पर बल दें।
- ईंधन के रूप में लकड़ी के स्थान पर गोबर गैस, सौर ऊर्जा, विद्युत ऊर्जा, प्राकृतिक गैस, धूम्र रहित चूल्हे, मल–जल एवं अपशिष्ट पदार्थों से प्राप्त ऊर्जा तथा बायोगैस को प्रयोग में लाएं।
- गाँवों व उपनगरों में जीवन की आवश्यक सुविधाओं व रोजगार की व्यवस्था कर शहरों की ओर प्रवास करें।
- प्लास्टिक से बनी वस्तुओं के स्थान पर जूट, कागज एवं कपड़े की थैलियों का उपयोग करें।
- आम जनता को पर्यावरण संरक्षण कार्य के प्रति जागरूक एवं प्रशिक्षित कर उनकी सक्रिय साझेदारी प्राप्त की जाए।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले कारकों में किसका प्रमुख योगदान है?

   (क) मौसम का (ख) प्रदूषण का

   (ग) तापमान का (घ) परिस्थितियों का

6. मनुष्य के कार्य करने की क्षमता, आराम, नींद और संवाद में किससे व्यवधान पड़ता है?

   (क) हवा से (ख) प्रकाश से

   (ग) तीव्र ध्वनि से (घ) भोजन से

1.5 मानवीय गतिविधियों के गौण प्रभाव

जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपभोग और तीव्र दोहन हो रहा है, जो कि मृदा निम्नीकरण, जैव विविधता में कमी तथा वायु जल स्रोतों के प्रदूषण के रूप में दिखाई दे रहा है। अत्यधिक दोहन के कारण पर्यावरण का क्षरण हो रहा है तथा यह मानव जाति और उसकी उत्तरजीविका के लिए खतरा उत्पन्न कर रहा है। पर्यावरण अवनयन, कुछ मानवीय क्रियाकलापों (वनोन्मूलन अनवीकरणीय ऊर्जा के अत्यधिक प्रयोग) के कारण तीव्रता से विकसित हो रहा है। पर्यावरण अनवयन पर्यावरण में उत्पन्न असंतुलन का परिणाम है जो मानवीय या प्राकृतिक गतिविधियों के कारण घटित होता है। मानवीय गतिविधियाँ जिनका प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है, निम्नांकित हैं–

खनन का पर्यावरणीय प्रभाव (Environmental Impact of Mining) : पृथ्वी धातुओं और खनिज संसाधनों से परिपूर्ण है। प्रौद्योगिकी विकास की प्रक्रिया ने खनन तकनीकों को सुदृढ़ किया है, जिससे संसाधनों का उत्तरोत्तर रूप से तीव्रता से खनन किया जा रहा है। वैज्ञानिकों व विश्लेषकों द्वारा इन संसाधनों के समाप्त होने की आशंका व्यक्त की जा रही है। पृथ्वी से खनिजों के निष्कर्षण के दौरान बड़ी मात्रा में कूड़े का ढेर उत्पन्न होता है। खनिज अपशिष्टों के ढेर से भूमि का एक बहुत बड़ा हिस्सा घिर जाता है जो कृषि कार्यों के लिए भी अयोग्य होता है। खनन क्षेत्र अधिकांशतः दुर्गम या वनीय क्षेत्रों में होते हैं जिससे वनोन्मूलन की समस्या भी उत्पन्न होती है।

औद्योगीकरण का पर्यावरण पर प्रभाव (Impact of Industrialisation on Environment): तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया का पर्यावरण पर प्रभाव का विश्लेषण करना आवश्यक है क्योंकि कच्चे माल के रूप में उद्योग प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते हैं। जिनके शीघ्र समाप्त होने का खतरा है। भारत सरकार ने पर्यावरण के प्रति मैत्रीपूर्ण भारतीय उत्पादों के लिए इकोमार्क नामक एक लेबलिंग योजना (1991) में प्रारम्भ की। उद्योगों से विसर्जित विषैली गैस द्वारा वायु प्रदूषण तथा निसृत अपशिष्ट द्वारा जल प्रदूषण के साथ मृदा प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है जो मानव व अन्य जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

टिप्पणी

आधुनिक कृषि का पर्यावरण पर प्रभाव (Impact of Modern Agriculture on Environment): जनसंख्या में तीव्र वृद्धि ने कृषि उत्पादों की मांग में वृद्धि की है। जिससे अधिकतम फसलों के उत्पादन हेतु वनों को खेती के लिए उपयुक्त भूमि में परिवर्तित किया जा रहा है। यह समस्या विशेषतः जनजातीय क्षेत्रों में देखी जा रही है। खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के लिए आरम्भ की गई हरित क्रांति ने कृषि में कृत्रिम उर्वरकों के प्रयोग को बढ़ावा दिया है। जिससे भूमि व जल प्रदूषण जैसी अनेक पर्यावरणीय समस्याएं हो रही हैं। कृषि में कीटनाशकों के बढ़ते उपयोग से फसल को हानि पहुँचाने वाले कीड़ों के साथ वे कीट भी मर जाते हैं जो कृषि में परागण की क्रिया के लिए उपयोगी होते हैं। कीटनाशकों की मात्रा में वृद्धि खाद्य श्रृंखला को प्रभावित करती है।

कृषि में बढ़ता बाजारीकरण उच्च उत्पाद देने वाली किस्मों के उत्पादन को बढ़ावा देता है जिससे वे पारम्परिक फसलों वाली कृषि का स्थान ले लेती हैं। पारम्परिक फसलें बहुफसली पद्धति पर आधारित होने के कारण फसल चक्रण के नियमों का पालन करती थी जिससे मृदा में पोषक तत्वों की कमी नहीं होती थी, किन्तु उच्च उत्पाद वाली फसलें एकल कृषि को बढ़ावा देती हैं जो दीर्घकाल में मृदा की पोषकता को कम कर देती है। जिससे उत्पादन एवं उत्पादकता प्रभावित होती है।

शहरीकरण का पर्यावरण पर प्रभाव (Impact of Urbanisation on Environment): तीव्र गति से विकसित होता नगरीकरण पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म देता है क्योंकि शहर अपनी मूलभूत सुविधाओं के कारण जनसंख्या के आकर्षण का केन्द्र होते हैं। शहरों में बढ़ती जनसंख्या के कारण स्थानीय संसाधनों पर गहन दबाव पड़ता है जिससे नित नई समस्याओं का जन्म होता है। शहरों में लोगों के निवास, उद्योगों की स्थापना तथा सड़क व अन्य सुविधाओं हेतु उपजाऊ भूमि ही प्रयुक्त की जाती है। यह प्रवृत्ति निकट भविष्य में खाद्य संकट का कारण बन सकती है। शहरी जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उद्योगों को शहरों या उनके निकटवर्ती क्षेत्रों में स्थापित किया जाता है। ये स्थापित उद्योग शहरों में प्रदूषण के बड़े स्रोत हैं। शहरों में परिवहन के साधनों से निकलता धुआं वायु प्रदूषण का बड़ा कारक है। घरेलू व औद्योगिक कचरे को बिना किसी निपटान के सीधे झीलों या नदियों में निष्कासित किया जाता है। जिससे इन नगरों की समीपवर्ती झीलों व नदियों का जल पीने योग्य नहीं रह जाता है और इससे मानव के साथ जलीय जीवों के अस्तित्व पर भी संकट उत्पन्न हो गया है।

नगरों में कंक्रीट की इमारतों, सड़क व अन्य आधारीय क्षेत्रों के निर्माण में सीमेन्ट व कंक्रीट की अधिकता रहती है। इन इमारतों के निर्माण हेतु पेड़ों व वनीय क्षेत्रों को साफ किया जाता है जिससे ये कंक्रीट संरचना सूर्यताप का अधिक अवशोषण करती है। नगरीय क्षेत्रों में प्रदूषण के कारण कोहरे के निर्माण से यहाँ का तापमान निकटवर्ती क्षेत्रों से $5^{\circ}C - 8^{\circ}C$ तक अधिक होता है तथा नगर ऊष्मा द्वीप के रूप में कार्य करने लगता है। इससे किसी नगर में विशिष्ट जलवायु विकसित होती है जो यहां की मौसमी जलवायुवीय व पर्यावरणीय दशाओं को प्रभावित करती है।

आधुनिक प्रौद्योगिकी का पर्यावरण पर प्रभाव (Impact of Advanced Technology as Environment): मानव समाज के विकास में प्रौद्योगिकी की भूमिका अति महत्वपूर्ण

टिप्पणी

है। वर्तमान में प्रौद्योगिकी अधिक खतरनाक व विनाशकारी हो गई है क्योंकि तीव्र गति से प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के साथ मानव प्रजाति भौतिकवादी प्रवृत्ति, उच्च उत्पादन पर अधिक बल दे रही है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कृषि, विज्ञान, परिवहन उद्योग व अन्य क्षेत्रों में तकनीक का व्यापक उपयोग हो रहा है। निश्चित तौर पर तकनीक ने मानव जीवन को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है किन्तु इसके साथ ही आधुनिक प्रौद्योगिकी ने अधिकांश पर्यावरणीय समस्याओं को भी जन्म दिया है। निम्नलिखित तथ्य आधुनिक प्राद्योगिकी के अभिशाप को स्पष्ट करते हैं। मनुष्य आज महाबीजन द्वारा वर्षा कराने तथा ओलावृष्टि को रोकने में सक्षम हो गया है। इस प्रकार मनुष्य वायुमण्डलीय प्रक्रमों में परिवर्तन करने लगा है और इससे जीवमण्डल भी प्रभावित होता है।

आधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से मनुष्य नदियों पर बांध तथा जलाशय बनाने में सक्षम हो गया है। बड़े–बड़े बांधों तथा जलाशयों के भार के कारण चट्टानों का संतुलन बिगड़ जाता है। इस कारण विनाशकारी भूकम्प का आविर्भाव होता है। बड़े–बड़े जल भण्डारों के कारण प्राकृतिक वन क्षेत्र जलमग्न हो जाते हैं तथा प्रभावित क्षेत्र का पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ जाता है। इसी कारण भारत में सरदार सरोवर परियोजना का विरोध चल रहा है।

आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि के साथ पर्यावरणीय समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं। रासायनिक खाद व कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से आज मृदा व जल प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो रही है। सिंचाई के साधन (पंप, बौरवेल आदि) से कुछ राज्यों (पंजाब व हरियाणा) में मृदा लवणता की समस्या देखी गई है। विलासिता के उत्पादों (रेफ्रीजरेटर, एयरकंडीशनर, स्प्रे, हेयर ड्रायर आदि) के संचालन से क्लोरो–फ्लोरो कार्बन (CFC) के वायुमण्डल में पहुँचने से ओजोन क्षरण हो रहा है। सूर्य से उत्सर्जित पराबैगनी किरणों के धरातल पर पहुँचने से तापमान में वृद्धि के साथ त्वचा में कैंसर की संभावना बढ़ती जा रही है। परिवहन के आधुनिक साधनों के विकास तथा ऊर्जा पूर्ति के लिए जीवाश्म ईंधनों का प्रयोग तथा इससे उत्पन्न कार्बन डाई ऑक्साइड से वायुमण्डल के सांद्रण में वृद्धि से भूमण्डलीय ऊष्मीकरण की समस्या उत्पन्न हो रही है। रासायनिक संयंत्रों से जहरीली गैसों के निकलने से न केवल वायु प्रदूषण हो रहा है, अपितु मानवीय स्वास्थ्य भी प्रभावित हो रहा है। आधुनिक प्रौद्योगिकी के खतरनाक परिणामों में जहरीले रसायनों का उत्पादन, कृत्रिम पदार्थों का उत्पादन तथा जीवों द्वारा विघटित न होने वाले पदार्थों का अधिक मात्रा में उत्पादन आदि प्रमुख है। आज नाभिकीय अपशिष्ट का प्रबंधन मानव समाज हेतु गंभीर समस्या है। वास्तव में, आधुनिक प्रौद्योगिकी से उत्पन्न होने वाले खतरनाक व नकारात्मक प्रभाव मानव जीवन के खतरे के रूप में सामने आ रहे हैं। इसलिए आधुनिक तकनीक का उपयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह मानव जीवन को खुशहाल व प्रभावी बनाने में प्रभावशाली सिद्ध हो सके।

टिप्पणी

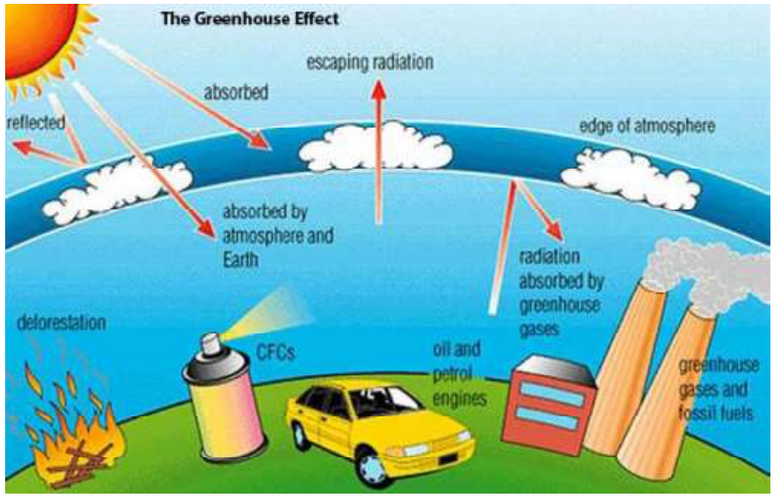

अम्लीय वर्षा (Acid Rain)

अम्लीय वर्षा, प्राकृतिक रूप से अम्लीय होती है। इसका कारण यह है कि कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2) जो पृथ्वी के वायुमंडल में प्राकृतिक रूप में विद्यमान है वह जल के साथ क्रिया करके कार्बनिक अम्ल बनाती है।

यह वर्षा जिसमें वायुमंडल में निहित रासायनिक तत्व अथवा प्रदूषक तत्व मिश्रित हो जाते हैं और वह पृथ्वी पर एक हलके अम्लीय सांद्रण के रूप में गिरती है।

Rain, which has combined with chemical elements are pollutants in the atmosphere and reaches the earth's surface as a weak acid solution.

अम्लीय वर्षा का तात्पर्य अत्यधिक अम्लीय वर्षा से है जिससे पर्यावरण तथा वायुमंडल के संतुलन के बिगड़ने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। यह प्रमुख रूप से पौधों, जलीय प्राणियों, अवसंरचना आदि को प्रभावित करती है। अम्लीय होने का अर्थ है इसमें हाइड्रोजन के आयनों का स्तर ऊँचा होना अर्थात् कम पी.एच./वास्तव में सामान्य वर्षा का जल पहले से ही थोड़ा अम्लीय होता है जिसमें पी.एच. का स्तर 5. 3– 6.0 होता है। वर्षा के जल के अम्लीय होने का कारण है कार्बन डाई ऑक्साइड और वायु में उपस्थित पानी का कार्बनिक अम्ल बनाने के लिए एक साथ प्रतिक्रिया करना, जो स्वयं एक कमजोर अम्ल है। जब वर्षा के जल का पी.एच. स्तर इस सीमा से नीचे आता है तो वह अम्लीय वर्षा में परिवर्तित हो जाता है।

अम्लीय वर्षा शब्द युग्म का प्रयोग सर्वप्रथम वैज्ञानिक रॉबर्ट अंगस ने सन् 1872 में किया था, जिसका शाब्दिक अर्थ वर्षा के जल में अम्ल का अधिक मात्रा में उपस्थित होना है। वर्तमान समय में अम्लीय वर्षा विश्व की एक पर्यावरणीय समस्या बनी हुई है। अम्लीय वर्षा की समस्या अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, कनाडा तथा नार्वे में खतरनाक स्तर तक पहुँच चुकी है।

अम्लीय वर्षा के कारण (Causes of Acid Rain)

वायुमण्डल में उपस्थित कार्बन–डाई–ऑक्साइड गैस जल वाष्प से मिलकर कार्बनिक अम्ल बनाती है। जिसके कारण वर्षा के जल की प्रकृति सामान्यतः अम्लीय होती है।

टिप्पणी

उद्योगों, वाहनों तथा ताप बिजलीघरों से निकले सल्फर व नाइट्रोजन के ऑक्साइड (SO_2 तथा NO_2) वायुमण्डल में सम्मिलित होते रहते हैं। ये ऑक्साइड जल वाष्प व वर्षा के जल में घुलकर उसकी अम्लता को बढ़ाते हैं। पानी की ऐसी वर्षा जिसमें अम्लता अधिक होती है, अम्लीय वर्षा कहलाती है।

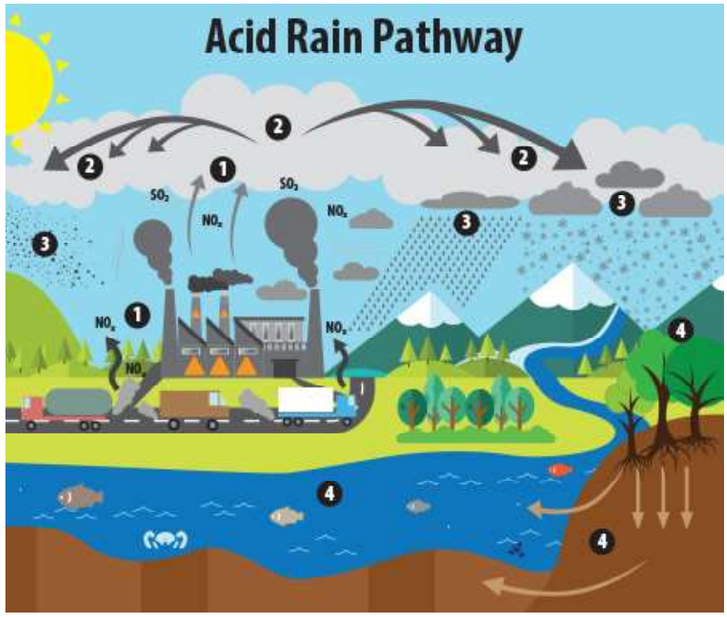

अम्लीय वर्षा में तीन अम्लों का योगदान प्रमुख रूप से होता है–

- सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4)
- नाइट्रिक अम्ल (HNO_3)
- हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCl)

अम्लीय वर्षा दो प्रकार की होती है–

- **शुष्क अम्लीय वर्षा** : सल्फेट व नाइट्रेट जब धूल के कणों पर जमकर पृथ्वी की सतह पर जम जाते हैं तो इसे शुष्क अम्लीय वर्षा कहते हैं।
- **नम अम्लीय वर्षा** : जब वर्षा के जल में सल्फ्यूरिक, नाइट्रिक व हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिश्रित होकर उसे अधिक अम्लीय बनाते हैं तो इसे नम अम्लीय वर्षा कहते हैं।

अम्लीय वर्षा का रासायनिक सूत्र (Chemical formula of Acid Rain)

वर्षा के प्रदूषण रहित पानी का pH मान लगभग 5.6 होता है। वर्षा के जल की अम्लता क्षोभमंडल में तीन प्राकृतिक पदार्थों Co_2, No और SO_2 की उपस्थिति से होती है। वर्षा के जल की प्राकृतिक अम्लता में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड का सर्वाधिक योगदान होता है। कार्बन डाई ऑक्साइड जल के साथ अभिक्रिया करके कार्बोनिक अम्ल बनाती है।

H_2CO_3 की H+ आयन बाहर करने की क्षमता इस अणु को एक अम्ल के रूप में वर्गीकृत करती है।

- $5\ (\text{in Coal}) + O_2 = SO_2$
- $2SO_3 + O_2 = 2SO_3$

टिप्पणी

- $CO_2 + H_2O = H_2SO_3$
- $SO_3 + H_2O = H_2SO_4$

अम्लीय वर्षा के प्रभाव (Effect of Acid Rain)

अम्लीय वर्षा से पर्यावरण में सजीव व निर्जीव दोनों ही प्रभावित होते हैं। पर्यावरण पर अम्लीय वर्षा के हानिकारक प्रभावों के कारण विभिन्न क्षेत्रों की पारिस्थितिकी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

वनस्पति समूहों पर प्रभाव

(1) पश्चिम जर्मनी में वनों का एक बड़ा हिस्सा अम्लीय वर्षा के कारण नष्ट हो चुका है। इसके कारण कैल्शियम, पोटेशियम, लोहा तथा मैग्नीशियम मृदा से पृथक हो जाते हैं, जो वनस्पतियों के आवश्यक तत्व होते हैं।

(2) अम्लीय वर्षा के कारण पेड़–पौधों में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया मन्द हो जाती है जिससे इनकी पत्तियां पीली पड़ जाती हैं तथा उनकी अभिवृद्धि अवरुद्ध हो जाती है।

(3) मृदा में उपस्थित बैक्टीरिया अम्लीय वर्षा से प्रभावित होते हैं, जिससे फसल उत्पादन घट जाता है।

(4) अम्लीय वर्षा में सम्मिलित अम्ल पृथ्वी के जल में मिलकर बड़े विषाक्त यौगिकों का निर्माण करते हैं। मनुष्य पेयजल के रूप में इस जल का सेवन करता है परिणामस्वरूप मनुष्य पाचन रोग, श्वसन रोग व त्वचा के कैंसर से पीड़ित हो जाते हैं।

धरातलीय जल स्रोतों पर प्रभाव

नदी, झील, तालाब व समुद्री जल में अम्लीय वर्षा के कारण अम्लीयता बढ़ने से मछलियाँ मर जाती हैं। इससे जल में उपस्थित शैवाल आदि वनस्पतियाँ भी नष्ट होती हैं जिससे तालाब, नदी व समुद्र का पारिस्थितिक तंत्र ही बिगड़ जाता है। अम्लीय जल के कारण मिट्टी से एल्यूमीनियम पृथक होकर जल प्रवाह के द्वारा निकटवर्ती जल स्रोतों में पहुँचता है तथा पानी में घुलकर जल को विषाक्त बना देता है। ऐसे पानी में मछलियों का दम घुटने से मृत्यु हो जाती है।

भवनों पर प्रभाव

अम्लीय वर्षा का प्रभाव बालू पत्थर व चूना पत्थर या संगमरमर से बने भवनों व मूर्तियों पर पड़ता है। वर्षा के जल में अम्ल की उपस्थिति के कारण क्षरण वाली क्रिया (Corrosive action) भवन, लकड़ी, स्टील और सीमेन्ट पत्थर के निर्माणों को क्षति पहुँचाती है। अम्लीय जल के कारण भवनों की दीवारों में छोटे–छोटे छिद्र हो जाते हैं तथा संगमरमर की चमक घट जाती है।

समाधान

- इस समस्या के समाधान हेतु घातक वायु और पदार्थ के स्रोतों पर नियन्त्रण करना है तथा उन समस्त व्यक्तियों और संस्थाओं को जागरूक करना है जो इस ज्वलन्त विषय हेतु कार्यरत हैं।

टिप्पणी

- जलाशयों तथा कृषि भूमि में समय–समय पर चूने का प्रयोग करना चाहिए, जिससे अम्लीय वर्षा के दौरान अम्लीयता उदासीन हो जाती है।
- वायुमण्डल में सल्फर डाई ऑक्साइड गैस की मात्रा को कम करने के लिए ऐसे ईंधनों का उपयोग करना चाहिए जिनमें सल्फर अनुपस्थित हो।
- कोयला जलने के दौरान उत्सर्जित SO_2 को कम करने के लिए वैकल्पिक ईंधन का प्रयोग किया जाना चाहिए।

अम्लीय वर्षा

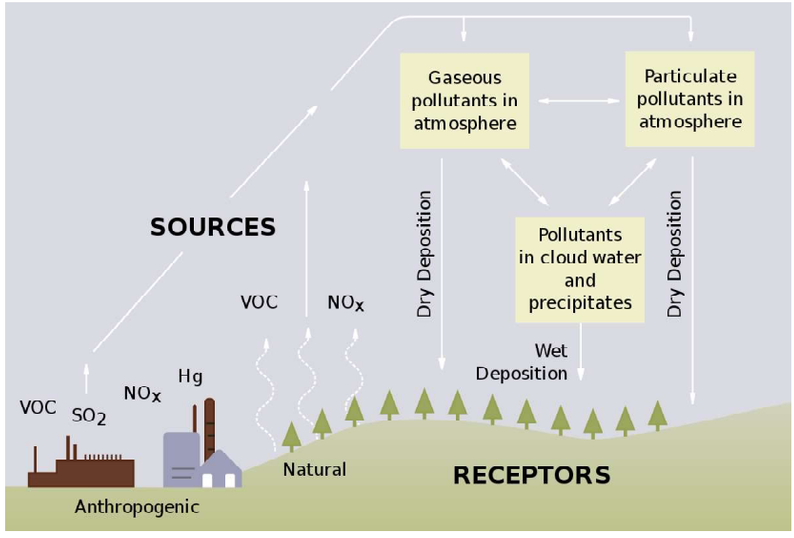

धुआंसा (Smog)

धुआंसा (Smog) वायु प्रदूषण की एक अवस्था है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक मिश्रित शब्द स्मॉग (स्मोक + फॉग = स्मॉग) द्वारा धुएं और कुहासे के इस मिश्रण को इंगित किया गया। धूल, धुएं और कुहासे का यह मिश्रण हिन्दी में धुआंसा कहलाता है। गाड़ियों तथा औद्योगिक कारखानों द्वारा उत्सर्जित धुएं में उपस्थित राख, गंधक व अन्य हानिकारक रसायन जब कुहरे के संपर्क में आते हैं तो धुआंसे का निर्माण होता है। यह धुआंसा इस रूप में वायु प्रदूषण जनित अनेक जानलेवा रोगों का कारण बन जाता है।

स्मॉग शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग करने का श्रेय 1905 के दौरान डा. हेनरी अंतोइन दे वू (Henry Antoine Des Voeux) को दिया जाता है। लोक स्वास्थ्य कांग्रेस की बैठक में धुआं और कुहासा नामक पत्र पढ़ते हुए डा. वू ने उक्त शब्द का प्रयोग किया था। लंदन के अखबार डेली ग्राफिक ने 26 जुलाई 1905 संस्करण में लिखा कि डा. वू ने धुएं और कोहरे की मिश्रित अवस्था को 'स्मॉग' का नाम दिया है। हिन्दी में स्मॉग का स्थानापन्न धुआंसा शब्द का लिखित रूप में सर्वप्रथम प्रयोग करने का श्रेय कथाकार संजीव को दिया जा सकता है।

धुआंसा के कारण (Causes of Smog)

- कोयला
- वाहन उत्सर्जन

- पराली दहन
- प्रकाश रासायनिक धुआंसा
- प्राकृतिक कारण

टिप्पणी

ओजोन परत का क्षरण (Ozone Layer Depletion)

वायुमण्डल में अनेक गैसें विद्यमान हैं। ओजोन एक प्राकृतिक गैस है, जो वायुमण्डल में बहुत कम मात्रा में पाई जाती है। ओजोन पृथ्वी पर दो क्षेत्रों में पाई जाती है। ओजोन अणु वायुमण्डल की ऊपरी सतह के समतापमण्डल (stratospheres) में लगभग 25 किलोमीटर ओजोन गैस की एक परत है जिसे ओजोन मण्डल भी कहते हैं। यह पृथ्वी के जीवधारियों तथा पेड़–पौधों के लिए सौर ऊर्जा से बचाव के लिए रक्षा कवच का कार्य करती है। वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात किया कि धीरे–धीरे ओजोन गैस कम होती जा रही है। दो प्रतिशत गैस कम होने से एक डिग्री ताप पृथ्वी पर बढ़ जाता है। वायुमण्डल की कुल ओजोन का 90 प्रतिशत तापमण्डल में होता है। कुछ प्रतिशत वायुमण्डल की भीतरी परत में भी पाया जाता है। ओजोन की मात्रा वायुमण्डल में प्राकृतिक रूप से परिवर्तित होती रहती है। यह मौसम वायु–प्रवाह तथा अन्य कारकों पर निर्भर है। करोड़ों वर्षों से प्रकृति ने इसका एक स्थायी संतुलन सीमित कर रखा है। आज कुछ मानवीय क्रियाकलाप ओजोन परत को क्षति पहुँचाकर, वायुमण्डल की ऊपरी सतह में इसकी मात्रा कम कर रहे हैं। यही कमी ओजोन–क्षरण या ओजोन विहीनता कहलाती है और जो रसायन इसे उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी होते हैं, वे ओजोन–क्षरक पदार्थ कहलाते हैं। ओजोन की कमी से पर्यावरण के लिए गंभीर संकट उत्पन्न हो रहे हैं। ऑक्सीजन गैस ही ओजोन गैस में बदल जाती है और वायुमण्डल में इसकी मोटी परत बन जाती है। यह पृथ्वी के चारों ओर फैली हुई है जो सूर्य के प्रकाश एवं ऊर्जा के लिए छलनी का कार्य करती है। सूर्य विकिरणों का ओजोन गैस की परत शोषण कर पृथ्वी के जीवधारियों एवं पेड़ पौधों की सुरक्षा करती है।

ओजोन का अणु सूत्र O_3 है। रासायनिक भाषा में इसे ट्राइऑक्सीजन भी कहते हैं। ऑक्सीजन के तीन अणुओं से ओजोन के दो अणुओं का निर्माण होता है।

$$3O_2 \rightarrow 2O_3$$

सामान्य तापक्रम पर ओजोन एक रंगहीन गैस है। यह गैस जल में घुलनशील होती है। द्रव अवस्था में इसका रंग गहरा नीला होता है। समतापमण्डल में ऑक्सीजन से ओजोन प्रकाश रासायनिक क्रिया द्वारा निम्नलिखित प्रकार से बनती है–

$$O_2 + \text{प्रकाश} \rightarrow O + O$$

$$O + O_2 + (N_2 \text{ या } O_2) \rightarrow O_3$$

इस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप बड़ी मात्रा में ऑक्सीजन ओजोन में परिवर्तित होकर वायुमण्डल में गैस की एक मोटी परत का निर्माण करती है, जिसे ओजोन मण्डल कहते हैं।

ओजोन गैस ऊपरी वायुमण्डल (समताप मण्डल) में पृथ्वी से 15–60 किलोमीटर ऊपर एक अत्यन्त पतली पारदर्शी परत के रूप में पाई जाती है। इस परत को ओजोन

टिप्पणी

परत कहते हैं। ओजोन नियत वायुमण्डल (क्षोभ मण्डल) में पृथ्वी की सतह से 15 किलोमीटर ऊपर तक भी अल्प मात्रा में पाई जाती है।

समताप मण्डल में ओजोन परत समस्त भूमण्डल के लिए सुरक्षा कवच का कार्य करती है। यह सूर्य की हानिकारक पराबैगनी किरणों को ऊपरी वायुमण्डल में ही रोक लेती है और उन्हें पृथ्वी की सतह तक नहीं पहुँचने देती। पराबैगनी विकिरण समस्त प्राणी जगत के लिए अत्यन्त हानिकारक है। पृथ्वी पर इसी परत के कारण जीवन का अस्तित्व संभव हो सकता है।

मानवजन्य रसायनों द्वारा हो रहे वायुमण्डलीय प्रदूषण के परिणामस्वरूप समताप मण्डल में ओजोन गैस की मात्रा निरन्तर घट रही है और ओजोन गैस का घनत्व भी कम हो रहा है। यह प्रक्रिया ओजोन क्षय कहलाती है। वे रसायन जिनसे ओजोन क्षय होता है उन्हें ओजोन अवक्षय रसायन कहते हैं। उदाहरणार्थ– क्लोरोफ्लोरो कार्बन यानी सी.एफ.सी. व हेलोन। मिथाइलब्रोमाइड, मिथाइल–क्लोरोफार्म, कार्बन टेट्राक्लोराइड आदि। सी.एफ.सी. का प्रयोग फ्रिज, वातानुकूलित व अन्य शीतलक यंत्रों में प्रशीतक के रूप में, फोम बनाने में, टी.वी., कम्प्यूटर व अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के परिपथों की सफाई में विलायक के रूप में विभिन्न स्प्रे उपकरणों में नोदक के रूप में होता है। उपकरणों के निर्माण, परीक्षण व मरम्मत के समय यंत्रों से सी.एफ.सी. गैस का रिसाव वायुमण्डल में होता है। अपनी रासायनिक अक्रियता के कारण यह नष्ट नहीं होती, बल्कि धीरे–धीरे ऊपर उठती हुई 5–7 वर्षों में समताप मण्डल तक पहुँच जाती है। यहाँ सूर्य की किरणें पराबैगनी किरणें इन्हें छिन्न–भिन्न कर देती हैं और क्लोरीन अणु मुक्त हो जाते हैं। ये क्लोरीन अणु ओजोन अणुओं को रासायनिक प्रक्रिया द्वारा नष्ट करते हैं। एक क्लोरीन अणु कई हजार ओजोन अणुओं को नष्ट करने की क्षमता रखता है। जब समताप मण्डल में ओजोन अणु नष्ट हो जाते हैं, तब ओजोन परत का घनत्व भी कम होता है। जिससे अत्यधिक मात्रा में पराबैगनी किरणें पृथ्वी की सतह तक पहुँच जाती हैं। कुछ प्राकृतिक घटनाओं (ज्वालामुखी फटना) से प्रचुर मात्रा में सल्फर डाई ऑक्साइड वाष्प निकलती है, जो समताप मण्डल पर पहुँचकर ओजोन अवयव को बढ़ाती है।

ओजोन छिद्र (Ozone Hole)

पृथ्वी के किसी भू–भाग के ऊपरी वायुमण्डल की ओजोन परत में ओजोन गैस के घनत्व के कम होने की घटना को ओजोन छिद्र कहते हैं। मानव द्वारा कुछ रासायनिक प्रदूषण को उत्पन्न करने से इस प्राकृतिक रक्षा कवच में छिद्र उत्पन्न हो रहे हैं। एक वैज्ञानिक के अनुसार ओजोन छिद्र में एक सेंटीमीटर वृद्धि होने से 40 हजार व्यक्ति पराबैगनी किरणों के विनाशकारी प्रभाव के ग्रास बन जाते हैं। 1984 में वैज्ञानिकों ने दक्षिणी ध्रुव के ऊपर ओजोन परत में 4 किलोमीटर व्यास के ओजोन छिद्र का पता लगाया। अब यह छिद्र न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया की ओर बढ़ रहा है। वहाँ मनुष्यों एवं पशुओं के शरीर पर लाल चकत्ते व त्वचा कैंसर आदि व्याधियाँ बढ़ रही हैं तथा तापमान में वृद्धि हो रही है।

ओजोन छिद्र के कारण (Causes of Ozone Hole)

वैज्ञानिकों ने ओजोन परत के क्षरण के लिए उत्तरदायी निम्नलिखित कारणों की खोज की है–

टिप्पणी

- वायुमण्डल में प्राकृतिक रूप में विद्यमान नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO)।
- ज्वालामुखियों के विस्फोट से निकली क्लोरीन गैस।
- बमों के विस्फोट से निकली गैस।
- परमाणु केन्द्रों से उत्सर्जित विकिरण।
- मानव निर्मित क्लोरो कार्बन (सी.एफ.सी.) यौगिक।

ओजोन परत के क्षरण के लिए उत्तरदायी सी.एफ.सी. यौगिकों का उपयोग निम्नलिखित उद्योगों में होता है–

- रेफ्रीजरेटर उद्योग में प्रशीतक के रूप में।
- वातानुकूलन में।
- इलेक्ट्रॉनिक एवं ओप्टिकाम उद्योग में।
- प्लास्टिक व फार्मेसी उद्योग में व्यापक रूप से।
- परफ्यूम व फोम उद्योग में।

सी.एफ.सी. पृथ्वी के निचले वातावरण में बिना अपघटित हुए 100 वर्षों तक उपस्थित रह सकते हैं। जब ये समताप मण्डल में पहुंचते हैं तो वहाँ के सूर्य के पराबैगनी विकिरण द्वारा प्रकाशीय विघटन प्रक्रिया द्वारा क्लोरीन परमाणु मुक्त करते हैं। ये क्लोरीन परमाणु ही ओजोन परत के मुख्य शत्रु हैं। क्लोरीन परमाणु ओजोन अणु को विघटित कर ऑक्सीजन तथा क्लोरीन मोनो–ऑक्साइड बनाते हैं। क्लोरीन का एक परमाणु ओजोन गैसों के एक लाख अणुओं को नष्ट करने की क्षमता रखता है। यही रासायनिक अभिक्रिया ओजोन छिद्र का कारण है। ये रासायनिक अभिक्रियाएँ कम ताप पर सम्पन्न होती हैं। इसके लिए तापमान शून्य से 80 डिग्री होना चाहिए। ध्रुवों पर तापमान काफी कम होता है। यही कारण है कि ओजोन छिद्र ध्रुव के ऊपर उत्पन्न हुआ।

ओनाल्ड के अनुसार ध्रुवीय चक्रवात भी ओजोन के विनाश में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उत्तरीय ध्रुव पर ध्रुवीय चक्रवात देर तक नहीं ठहरते। दक्षिण ध्रुवीय चक्रवात महाद्वीप की ऊपरी सतह पर बनते हैं तथा देर तक ठहरते हैं। चक्रवात ओजोन से भरी धारा के ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों की ओर ले जाते हैं। दक्षिण ध्रुव के ऊपर ओजोन छिद्र होने का कारण वहाँ के शक्तिशाली ध्रुवीय चक्रवात भी हैं।

भारत के ऊपर ओजोन सतह अभी सुरक्षित है। भारतीय भू–भाग के ऊपर ओजोन परत की मोटाई उन देशों से तीन गुना अधिक है जिनके ऊपर ओजोन छिद्र बन चुका है। भारत में ओजोन स्तर 240 से 350 डाब्सन यूनिट के मध्य है। दुनिया के तमाम राष्ट्रों के ऊपर ओजोन स्तर 110 से 115 डाब्सन यूनिट पहुँच गया है।

सी.एफ.सी. का उत्पादन व उपयोग पिछले एक दशक में तेजी से बढ़ रहा है जो भारी चिंता का विषय है। विश्व में सी.एफ.सी. का वार्षिक उपयोग 7 लाख 50 हजार मीट्रिक टन है, जिसमें 90% सी.एफ.सी. का उपयोग विकासशील देशों द्वारा किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय समूह ने इस समस्या पर चिन्ता व्यक्त की है। ब्रिटेन के अण्टार्कटिका सर्वेक्षण दल ने सन् 1985 में अपने अनुभवों व शोध के आधार पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के अनुसार अण्टार्कटिका में हेली खाड़ी के ऊपर ओजोन

टिप्पणी

गैस की अधिक कमी पायी गई है। इसमें यह भी बताया गया है कि 1977 से 1984 के मध्य ओजोन गैस में लगभग 40% कमी आयी है। ओजोन परत के बड़ी तेजी से क्षय होने के कारण समस्त देशों के अनुसंधानकर्ताओं ने इसे सबसे अधिक चिंता का विषय बताया है। जापान के अनुसंधानकर्ताओं ने बताया कि 1981 की अपेक्षा 1991 में ओजोन छिद्र तेरह गुना अधिक बड़ा हो गया है, स्टेट ऑफ दि वर्ल्ड की 1922 की रिपोर्ट के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध में घनी आबादी वाले क्षेत्रों में ओजोन परत दुगुनी गति से पतली हो रही है। वैज्ञानिकों ने अभी तक दो ओजोन छिद्रों का पता लगाया है, जिनमें से एक ओजोन छिद्र अण्टार्कटिका महासागर के ऊपर तथा दूसरा ओजोन छिद्र आर्कटिक महासागर के ऊपर बताया गया है। जिसके भयानक दुष्परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं। जबकि दूसरे छिद्र का क्षेत्र जन शून्य है। यह अभी तक अधिक समस्याप्रद नहीं है।

अंटार्कटिक विशिष्ट जलवायु स्थितियों के कारण ओजोन छिद्रता का प्रमुख केन्द्र है। इसी कारण ओजोन क्षरण का प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ रहा है। लेकिन दक्षिणी गोलार्द्ध के भूखंड जैसे– आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका के कुछ हिस्से, अन्य देशों की अपेक्षा अधिक खतरे में हैं।

ओजोन क्षरण का प्रभाव (Effects of Ozone Depletion)

ओजोन परत हानिकारक पराबैगनी विकिरण को पृथ्वी पर पहुँचने से पूर्व ही अवशोषित कर लेती है। ओजोन परत में छिद्रों के कारण हानिकारक पराबैगनी किरणें पृथ्वी की सतह पर पहुँच जाती हैं। इसकी अधिक मात्रा का मानव जीवन, जंतु जगत, वनस्पति जगत तथा द्रव्यों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

- **मनुष्य तथा जीव–जंतु पर प्रभाव** : यह त्वचा कैंसर की दर में वृद्धि करके त्वचा को रूखा, झुर्रियों भरा तथा असमय वृद्ध भी कर देता है। यह मनुष्य तथा जंतुओं में नेत्र–विकार विशेषकर मोतियाबिंद को बढ़ा रहा है। यह मनुष्यों तथा जंतुओं की रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता को भी प्रभावित करता है। यह डी.एन.ए. में अवांछित विकार उत्पन्न होने से विकलांगता बढ़ा रहा है।
- **वनस्पतियाँ** : पराबैगनी विकिरण द्वारा पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है। इन किरणों के द्वारा अंकुरण के समय में भी वृद्धि हो जाती है। यह मक्का, चावल, सोयाबीन, मटर, गेहूँ जैसी फसलों से प्राप्त अनाज की मात्रा को भी कम कर देती है।
- **खाद्य शृंखला** : पराबैगनी किरणों के समुद्र की सतह के अंदर तक प्रविष्टि होने के कारण सूक्ष्म जलीय पौधों (फाइटोफ्लैक्टॉस) की वृद्धि मन्द हो जाती है। ये सूक्ष्म तैरने वाले उत्पादक समुद्र तथा गीली भूमि की खाद्य शृंखलाओं की प्रथम कड़ी होते हैं, साथ ही ये वायुमंडलीय कार्बन डाई ऑक्साइड को कम करने में भी सहयोग देते हैं। इससे स्थलीय खाद्य शृंखला भी प्रभावित होती है।
- **द्रव्य** : बढ़ा हुआ पराबैगनी विकिरण पेंट, कपड़ों को हानि पहुँचाता है। उनके रंग उड़ जाते हैं। प्लास्टिक का फर्नीचर, पाइप इत्यादि तीव्रता से खराब हो जाते हैं।
- **ओजोन–क्षरक पदार्थ** : ये समस्त मानव निर्मित हैं। सी.एफ.सी. क्लोरोफ्लोरो कार्बन, क्लोरीन, फ्लोरीन एवं ऑक्सीजन से बनी गैसें या द्रव पदार्थ हैं। ये

टिप्पणी

मानव–निर्मित हैं जो रेफ्रिजरेटर तथा वातानुकूलित यंत्रों में शीतकारक रूप में प्रयुक्त होते हैं। साथ ही इसका प्रयोग कम्प्यूटर, फोन में प्रयुक्त इलेक्ट्रॉनिक सर्किट बोर्ड को साफ करने में भी होता है। गद्दों के कुशन, फोम बनाने, स्टायरोफोम के रूप में एवं पैकिंग सामग्री में भी इसका प्रयोग होता है।

- **हैलोन्स** : ये भी एक सी.एफ.सी. है, किन्तु यह क्लोरीन के स्थान पर ब्रोमीन का परमाणु होता है। ये ओजोन परत के लिए सी.एफ.सी. से अधिक खतरनाक होता है। यह अग्निशामक तत्वों में प्रयुक्त होता है। ये ब्रोमीन परमाणु क्लोरीन की तुलना में सौ गुना अधिक ओजोन अणु नष्ट करते हैं।
- **कार्बन टेट्राक्लोराइड** : यह सफाई करने में प्रयुक्त होने वाले विलयों में पाया जाता है। 160 से अधिक उपभोक्ता उत्पादों में यह उत्प्रेरक के रूप में प्रयुक्त होता है। जो कि ओजोन क्षरण के लिए काफी हद तक उत्तरदायी होता है।

ओजोन क्षरण समस्या के समाधान के प्रयास (Effects to Overcome Problem of Ozone Depletion)

भारत ओजोन समस्या के लिए अति चिंतित है इसलिए ओजोन क्षरण के कारकों को दूर करने के लिए (क्षारकों के व्यापार पर रोक, आयात–निर्यात की लाइसेंसिंग तथा उत्पादन सुविधाओं में विकास पर प्रतिबंध आदि) निरन्तर प्रयासरत हैं।

प्रकृति द्वारा प्रदत्त इस सुरक्षा कवच में और अधिक क्षति को रोकने में एक नागरिक भी सहायक हो सकता है–

- उपभोक्ता के रूप में यह सुनिश्चित करें कि जो उत्पाद खरीद रहे हैं, वह सी. एफ.सी. रहित है या नहीं। 'ओजोन मिग' उपभोक्ता बनें।
- वातानुकूलित संयंत्रों तथा रेफ्रिजरेटर का प्रयोग सावधानीपूर्वक करें, ताकि उनकी मरम्मत कम से कम करनी पड़े। सी.एफ.सी. वायुमण्डल में मुक्त होने की बजाय पुनः पुनः चक्रित हो।
- पारम्परिक रुई के गद्दों एवं तकियों का प्रयोग करना चाहिए।
- स्टायरोफोम के बर्तनों के स्थान पर पारम्परिक कुल्हड़ों, पत्तलों का, या धातु और काँच के बर्तनों का प्रयोग करना चाहिए।
- निकटवर्ती क्षेत्रों में ओजोन परत क्षरण जागरूकता अभियान चलाकर जन साधारण को जागरूक करना चाहिए।
- 'ओजोन मित्र' गृहस्वामी बनें। पुराने फ्रिज, अग्निशमन यंत्रों को हटाने से पूर्व सी. एफ.सी., एच.सी.एफ.सी. का पुनर्चक्रीकरण कराएं। कुशल कारीगर से ही इसकी मरम्मत करायें। निरन्तर जाँच करें। रिसाव होने पर तुरन्त मरम्मत / पुनर्चक्रीकरण कराएं।
- 'ओजोन मित्र' कृषक बनें। ओजोन मित्र कीटनाशकों जिसमें मिथाइल ब्रोमाइड न हो, का ही प्रयोग सुनिश्चित करें।
- 'ओजोन मित्र' सामुदायिक संगठनकर्ता बनें। अपने परिवार, पड़ोसी, मित्रों, समुदायों को ओजोन परत के संरक्षण की आवश्यकता समझाए और उनकी प्रतिभागिता सुनिश्चित करें।

टिप्पणी

- 'ओजोन मित्र' नागरिक बनें। व्यक्तिगत रूप से सहभागी बनने हेतु ओजोन क्षरण के प्रभाव, मॉट्रियल प्रोटोकॉल, अपने देश की नीति व रणनीति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर स्वयं सीखें तथा लोगों को इसकी गंभीरता समझाएं।
- 'ओजोन मित्र' शिक्षक बनें। विद्यार्थियों को इस सम्बन्ध में जानकारी दें और उन्हें अपने परिवार, मित्र व पड़ोसियों को ओजोन परत संरक्षण का संदेश पहुँचाने हेतु उत्साहित करें।
- 'ओजोन मित्र' कम्पनी बनें। अपने उद्योगों में ओजोन अवक्षय पदार्थों के प्रयोग को चरणबद्ध तरीके से रोकने हेतु कार्यवाही करें। ओजोन अवक्षय रसायनों का उपयोग न करने वाली प्रणाली अपनाएं।
- स्प्रेकैन, स्प्रेपम्पों का प्रयोग न करके परम्परागत साधनों को प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

ओजोन क्षय के दुष्प्रभाव विश्वव्यापी हैं, अपितु पृथ्वी के कुछ भागों पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। जैसे प्रतिवर्ष सितम्बर–अक्टूबर में दक्षिणी ध्रुव के ऊपर लगभग 50–95 प्रतिशत ओजोन क्षय होता है। जिससे परत में दरारें या छेद बन जाते हैं। दक्षिणी ध्रुव में स्थित कुछ देश (आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अमेरिका का दक्षिणवर्ती भाग, दक्षिण अफ्रीका व न्यूजीलैंड) ओजोन क्षय से अधिक प्रभावित होने वाले क्षेत्र हैं। ओजोन अवक्षय का दुष्प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संपूर्ण विश्व पर पड़ता है।

ओजोन अवक्षय रसायनों के उत्पादन व खपत पर विश्वव्यापी रोक लगाना ओजोन क्षय रोकने की दिशा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण कदम साबित होगा। सी.एफ.सी. के स्थान पर अन्य रसायनों का उपयोग कर इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। उदाहरणार्थ सी.एफ.सी. के स्थान पर एच.सी.एफ.सी. व एच.एफ.सी. का उपयोग। सी.एफ.सी. व अन्य ओजोन अवक्षय रसायनों का उपयोग न करने वाली प्रणाली भी ओजोन क्षय रोकने में योगदान कर सकती है।

ओजोन परत के महत्व तथा ओजोन क्षय के हानिकारक प्रभावों को दृष्टिगत रखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने 16 सितम्बर को ओजोन परत संरक्षण दिवस के रूप में स्वीकार किया है तथा यह दिवस समस्त विश्व में हृदय से स्वीकारा गया है।

मानवीय गतिविधियों के कारण जैव विविधता (Biodiversity due to Human Activities)

जैव विविधता का क्षरण एक न नकारने योग्य आर्थिक सत्य है। अध्ययनों में ज्ञात होता है कि वनस्पतियों की प्रत्येक आठ में से एक जाति विलुप्तता के खतरे से जूझ रही है। जैव विविधता के लिए उत्पन्न हुए ज्यादातर खतरे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जनसंख्या वृद्धि से सम्बन्धित हैं। दुनिया की जनसंख्या का 2050 तक 10 खरब तक पहुँचने का अनुमान व्यक्त किया गया है। जिसका अत्यधिक दबाव परिस्थितिकी तंत्रों और प्रजातियों पर पड़ता है।

पृथ्वी पर करोड़ों अरबों वर्ष पूर्व जीवों की उत्पत्ति हुई। पृथ्वी पर ही वह वातावरण उपलब्ध है जिसके कारण जीवों का अस्तित्व संभव है। ऑक्सीजन, जल, तापमान, आर्द्रता, मिट्टी, प्रकाश सब कुछ संतुलित मात्रा में पृथ्वी पर उपस्थित है। जिसके कारण विभिन्न जीवों (पौधों या वृक्ष, पशु या पक्षी, बैक्टीरिया या मनुष्य) का विकास हुआ तथा

एक–दूसरे के सहअस्तित्व से पारिस्थितिकी के चक्र के ऊर्जा प्रवाह से यह जीवन निरन्तर गतिशील है। पृथ्वी पर पाए जाने वाले समस्त जीवों में पारस्परिक विभिन्नता पाई जाती है। यह जैव विविधता स्थानीय स्तर से राष्ट्रीय व वैश्विक स्तर पर होती है, जो उस स्थान की जलवायु, तापक्रम, आर्द्रता, मिट्टी व प्रकाश की उपलब्धता इत्यादि द्वारा निर्धारित होती है।

मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति व विकास हेतु विभिन्न जीवों को आवासरहित कर दिया। प्रकृति निर्मित भोजन श्रृंखला में व्यवधान उत्पन्न करके उनका भोजन नष्ट कर उनके जीने का आधार समाप्त करने का दुष्कर्म किया है जो कि स्वयं मानव जीवन को अति क्षति पहुंचा रहा है।

मानव ने अपने विकास के लिए, औद्योगिकीकरण के लिए असंख्य प्राणियों व पेड़–पौधों को नष्ट किया है जिसके मुख्य कारण निम्न हैं–

- **आवासीय क्षति** : जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि, बढ़ता नगरीकरण, औद्योगिकीकरण इत्यादि के कारण हजारों पशु–पक्षियों व प्राणियों का आवास ही नष्ट हो गया व उनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया। कई प्रजातियाँ लुप्त होने की कगार पर हैं या लुप्त हो चुकी हैं।
- **वन्य जीवन का अवैधानिक शिकार** : मानव आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्राकृतिक संपदा अपार है। परन्तु मानव ने अपने लालच व स्वार्थ के कारण, सींग, नाखून, हाथी दाँत, खाल इत्यादि बहुमूल्य होने के कारण वन्य जानवरों का अत्यधिक शिकार किया है, परिणामस्वरूप हिरण, बाघ, बारहसिंगा, कालाहिरण, मगरमच्छ, कछुए, विषहीन सर्प, सूअर, शेर, चीता व पक्षियों की प्रजातियां लुप्त हो रही हैं जिनका संरक्षण अति आवश्यक है।
- **मानव वन्य जीवन संघर्ष** : वर्तमान समय में वनों की अवैध कटाई, घास स्थलों का, चारागाह स्थलों का स्थानांतरण अनेक समस्याओं का कारण है। कृषि व अन्य कारणों से रासायनिक खादों व कीटनाशकों के प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषण के साथ संकल्प तथा वन्य जीवन के मध्य संतुलन बनाये रखने से ही मनुष्य वन्यजीव संघर्ष विवाद को समाप्त किया जा सकता है।
- सड़क व रेलमार्गों के लिए वनस्पति व प्राणियों को नष्ट करना।
- कृषि भूमि का आवासीय क्षेत्रों में परिवर्तन।
- उद्योगों के लिए वनों व चरागाहों का उन्मूलन।
- वन्य प्राणियों को भोजन, सजावट की वस्तुओं व बाजार मूल्य की अधिकता के लिए मारना।

हमारी पृथ्वी पर प्राकृतिक संपदा अपार है, जिसे प्रकृति ने मानव हित हेतु ही निर्मित किया है, इस अनमोल संपदा का महत्व समझते हुए मितव्ययिता से इसका उपयोग करके ही मानव इस सुंदर अप्रतिम अद्‌भुत संपदा का आनन्द स्वयं भी उठा सकते हैं व आने वाली पीढ़ियों को एक गुणवत्तापूर्ण जीवन की विरासत धरोहर में प्रदान करना ही सर्वोपरि कर्तव्य है। धरती पर निवास करने वाली प्रत्येक प्रजाति को विकसित करने का अधिकार प्रत्येक जीव व प्रजाति का है, मानव में इस समझ के विकसित होते ही जैव विविधता क्षरण पर प्रतिबंध संभव हो पाएगा तथा यह धरती प्रत्येक जीव–जंतु व पादप हेतु एक सुंदर स्थान बन पाएगी।

टिप्पणी

वैज्ञानिकों ने इंगित किया है कि जैव विविधता केवल एक ही प्रजाति के अस्तित्व के कारण समाज में होती जा रही है और वह प्रजाति है मानव। यद्यपि विलुप्त हो रही प्रजातियाँ मानव भोजन के रूप में प्रयुक्त होने वाली प्रजातियाँ नहीं हैं। परन्तु इनका जैव संहति मानव भोजन में परिवर्तित होता जा रहा है। उनका प्राकृतिक आवासों की खेती की भूमि के रूप में प्रयोग कर लिया जाता है। एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी के जैवभार का 40 प्रतिशत से अधिक भाग मात्र कुछ ही प्रजातियों से सम्बन्धित है जिसमें मानव, पालतू पशु और फसलें सम्मिलित हैं।

वैज्ञानिक चेतावनी के अनुसार प्रजातीय प्रचुरता के घटने से पारिस्थितिकी तंत्रों की टिकाऊ क्षमता घटती है, इसलिए विश्व के पारिस्थितिकी तंत्र विनाश की ओर अग्रसर हैं।

प्रजातियों का विलुप्त होना व उसका निहितार्थ (Extinction of species and its implication)

विलुप्त प्रजातियाँ, ऐसे जीवों की आबादी है, जिनमें लुप्त होने का संकट है, क्योंकि वे या तो संख्या में कम हैं या परिवर्तित पर्यावरण या परभक्षण मानकों द्वारा संकट में हैं। प्रकृति के संरक्षणार्थ अंतर्राष्ट्रीय संघ (IUCN) ने 2006 में मूल्यांकन किए गए प्रजातियों के नमूने के आधार पर, सभी जीवों के लिए विलुप्त प्रजातियों की प्रतिशतता की गणना 40 प्रतिशत के रूप में की है।

वो प्रजातियाँ जो विलुप्त हो सकती हैं, यदि उनके बचाव के लिए उचित उपाय नहीं किये गये, ऐसी प्रजातियाँ संकटापन्न प्रजातियाँ (Endangered Species) कहलाती हैं। आई.यू.सी.एन. [प्रकृति तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय यूनियन (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources)] जिसका मुख्यालय स्विटजरलैंड के मार्ग में है, उसमें पाँच प्रमुख संरक्षण श्रेणियों की पहचान की है, जोकि निम्नानुसार हैं–

- **संकटापन्न प्रजातियाँ** : प्राकृतिक आवास नष्ट होने में प्रजनन की स्थिति समाप्त सी हो गई है जिससे इनके विलुप्त होने की संभावना बढ़ गई है। जैसे– भारतीय सोन चिड़िया, शेर, गेंडा।
- **दुर्लभ प्रजातियाँ** : ऐसी वन्य प्रजातियाँ जो अब केवल विशिष्ट भू–भाग या सीमित क्षेत्र में ही रह गई हैं। उदाहरणार्थ– सफेद शेर, भारत में केवल बांधवगढ़ में ही रह गये हैं।
- **संकटमयी प्रजातियाँ** : प्राकृतिक आवास नष्ट होने से विलुप्त होने की स्थिति में पहुँच चुकी हैं।
- **विलुप्त प्रजातियाँ** : पर्यावरण व प्राकृतिक संपदा के कारण से लुप्त हो चुकी हैं। उनके होने के प्रमाण जीवाश्म के रूप में उपलब्ध हैं, जैसे– आर्कियोटेरिक्स, ट्राइलोबाईट।
- **प्रहार सुलभ प्रजातियाँ** : वे प्रजातियाँ जो कुछ ही वर्षों में विलुप्त होने में है क्योंकि दिन–प्रतिदिन इनकी संख्या तेजी से घट रही है। उदाहरण– चीता, काला हिरण, सारस, तितली।

IUCN द्वारा प्रकाशित एक रेड डाटा बुक (Red Data Book) है, जिसमें पादपों तथा जंतुओं की संकटमय प्रजातियों की सूची दी गई है।

विश्व संरक्षण यूनियन (World Conservation Union) ने प्रजातियों की आठ रेड सूची वर्गों/लाल सूची श्रेणियों की पहचान की है, जिनका विवरण निम्न प्रकार है–

टिप्पणी

विद्युत, वन्य रूप में विलुप्त, गम्भीर रूप से संकटापन्न, संकटापन्न, संवेदनशील कम खतरे में, डाटा/आंकड़ों की कमी वाली तथा जो मूल्यांकित नहीं हैं।

तालिका–आई.यू.सी.एन (IUCN) की खतरे में पड़ी श्रेणियाँ

रेड लिस्ट वर्ग	परिभाषा
• विलुप्त (Extinct)	किसी वर्गक को तब विलुप्त माना जाता है जब उसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि उसका अंतिम जीव भी मर चुका है।
• जंगल में विलुप्त (Extinct in Wild)	किसी वर्गक को वन्य रूप में विलुप्त तब माना जाता है जब उसके ज्ञात अथवा संभावित आवासों में सघन रूप में खोज करने पर भी एक भी जीव नहीं पाया जाता है।
• गंभीर रूप से संकटापन्न (Critically Endangered)	किसी वर्गक को गंभीर रूप से संकटापन्न तब माना जाता है, जब उसके निकट भविष्य में वन्य रूप में विलुप्त होने की प्रबल संभावना हो।
• संकटापन्न (Endangered)	कोई वर्गक तब खतरे में माना जाता है, भले ही जब वह गंभीर रूप से संकटापन्न न हो लेकिन उसके निकट भविष्य में वन्य रूप में विलुप्त होने का खतरा हो।
• सुभेद्य (Vulnerable)	कोई वर्गक तब सुभेद्य माना जाता है जब वह गंभीर रूप से संकटापन्न अथवा संकटापन्न न हो लेकिन उसके आने वाले समय में वन्य रूप में विलुप्त हो जाने का खतरा हो।
• कम संकट (Lower Risk)	वर्गक को कम संकट में तब माना जाता है जब उसका मूल्यांकन किये जाने पर वह गम्भीर खतरे में अथवा संवेदनशील होने के मानकों पर खरा नहीं उतरता है।
• आंकड़ों में कमी (Data Deficient)	किसी वर्गक को आँकड़ों की कमी वाला तब माना जाता है जब उसके विलुप्त होने के संकट के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष मूल्यांकन के लिए आंकड़े अपर्याप्त होते हैं।
• मूल्यांकित नहीं (Not Evaluated)	किसी वर्गक को तब मूल्यांकित नहीं माना जाता है जब उसे अभी तक उपर्युक्त मानकों के लिए मूल्यांकित नहीं किया गया होता है।

लाल सूची के अनुसार भारत में 44 पादप प्रजातियाँ गंभीर रूप से संकटापन्न, 113 संकटापन्न तथा 87 संवेदनशील हैं। जानवरों में 18 प्रजातियाँ गंभीर रूप से संकटापन्न, 54 संकटापन्न तथा 143 संवेदनशील हैं।

टिप्पणी

सुपोषण (Eutrophication)

किसी जलाशय को पोषक तत्वों से समृद्ध करना सुपोषण (Eutrophication) कहलाता है। सुपोषण की प्रक्रिया में जलाशय में पौधों तथा शैवाल (algae) का विकास होता है। उसके अतिरिक्त जल में जैव भार की उपस्थिति के कारण उस जल में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। सुपोषण प्रायः जलीय तंत्र में फास्फेट युक्त डिटर्जेंटों, उर्वरकों और मल–जल के मिश्रित होने के कारण उत्पन्न होता है।

यह शैवाल का एक असामान्य विकास है, जो यूट्रोफिकेशन नामक एक प्रक्रिया की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। यूट्रोफिकेशन पोषक तत्व नमक से पानी का संवर्धन है जो पारिस्थितिक तंत्र में संरचनात्मक परिवर्तन का कारण बनता है। शैवाल और जलीय पौधों के उत्पादन में वृद्धि, मछली प्रजातियों की कमी, पानी की गुणवत्ता में सामान्य गिरावट और अन्य प्रभाव जो कम हो और प्रयोग को रोकते हैं। यूट्रोफिकेशन एक गंभीर पर्यावरणीय समस्या है क्योंकि पानी की गुणवत्ता में कमी आती है और एक स्तर पर जल ढाँचे निदेशक द्वारा स्थापित गुणवत्ता के उद्देश्यों को प्राप्त करने में एक बड़ी बाधा होती है।

सुपोषण (Eutrophication) शब्द का उद्भव ग्रीक शब्द 'यूटोफॉस' से हुआ है जिसका अर्थ है पोषण या समृद्ध। पर्यावरण के संदर्भ में, किसी जलाशय को पोषक तत्वों से समृद्ध करना, सुपोषण (Eutrophication) कहलाता है। जल में पोषक तत्वों के उच्च स्तर के कारण उसमें ब्लूम उत्पन्न होते हैं। पानी में पादप पोषणों की अधिकता होने की स्थिति सुपोषण कहलाती है। इन पोषणों में जैव तथा अजैव दोनों प्रकार के पदार्थ सम्मिलित हैं।

सुपोषण (Eutrophication) के प्रकार

ये दो प्रकार के होते हैं–

- प्राकृतिक सुपोषण (Natural Eutrophication)
- सांस्कृतिक सुपोषण / संवर्धनिक सुपोषण (Cultural Eutrophication)

• प्राकृतिक सुपोषण (Natural Eutrophication)

झील जैसे जल श्रोत में पोषक तत्वों का संवर्द्धन होना इस प्रकार के सुपोषण की विशेषता है। इस प्रक्रिया की अवधि में एक ओलिगोट्रोफिक झील एक यूट्रोफिक झील में परिवर्तित हो जाती है। यह पादप प्लवक (Phytoplankton), शैवाल का खिलना (algae blooms) और जलीय वनस्पति (aquatic vegetation) के उत्पादन में पूर्ण सहायता प्रदान करता है। यह बदले में वनस्पतिजीवी तथा मछली के लिए पर्याप्त भोजन प्रदान करता है।

• सांस्कृतिक / संवर्धनिक सुपोषण (Cultural Eutrophication)

यह मानव गतिविधियों के कारण होता है क्योंकि वे झील और धारा में 80% नाइट्रोजन तथा 75% फास्फोरस के मिश्रण के लिए उत्तरदायी होते हैं।

सांस्कृतिक सुपोषण के कारण (Causes of Eutrophication)

- उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग
- पशु खाद्य संचालन (सी.एफ.ओ.) प्रदूषण
- औद्योगिक और घरेलू अपशिष्ट
- सुपोषण का जलीय पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव (Effect of Eutrophication an Aquatic Ecosystem)
- नदी, झील धारा या सागर जैसे जल निकायों को प्रकाश की प्राप्ति होती है लेकिन शैवाल (algae) के उत्पन्न होने से जलीय जीव के प्रकाश संश्लेषण में अवरोध उत्पन्न होता है।
- अगर प्रकाश संश्लेषण उचित प्रकार से नहीं हो पाता है तो पानी में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और जलीय प्रजातियाँ विलुप्त होती जा रही हैं।
- उचित प्रकाश संश्लेषण न होने के कारण मृत क्षेत्रों का निर्माण होता है जो कि पारिस्थितिक तंत्र को नकारात्मक तरीके से (आर्थिक तौर पर) प्रभावित करता है।
- सुपोषण से पानी का स्वाद बदल सकता है और गंध रहित हो सकता है, जिससे पर्यटन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। इसकी रोकथाम के लिए सरकार को अपशिष्ट जल उपचार में अधिक निवेश करना होगा अन्यथा इसका दुष्परिणाम वृहद हो सकता है।

सुपोषण के निवारक उपाय (Measures to overcame the problem of Eutrophication)

- औद्योगिक और घरेलू अपशिष्ट जल उपचार जल निकायों में अपने निर्वहन से पहले किया जाना चाहिए।
- कटाई के माध्यम से पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण
- शैवाल (algae) रक्त को पानी से हटाना।
- अत्यधिक पोषक तत्वों को हटाने के लिए रसायन जैसे– एल्यूम, चूना, लौह और सोडियम एल्यूमिनेट की सहायता से भौतिक रसायन पद्धतियों में प्रयुक्त किया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. पृथ्वी से खनिजों के निष्कर्षण के दौरान बड़ी मात्रा में किसका ढेर उत्पन्न होता है?

   (क) कूड़े का (ख) धातुओं का

   (ग) अनाज का (घ) नमक का

8. आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि के साथ कैसी समस्याएं उत्पन्न हुई हैं?

   (क) आर्थिक (ख) पारिवारिक

   (ग) राष्ट्रीय (घ) पर्यावरणीय

टिप्पणी

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (क)
4. (घ)
5. (ख)
6. (ग)
7. (क)
8. (घ)

1.7 सारांश

जल, स्थल और वायुमण्डल में उपलब्ध समस्त वस्तुएँ, शक्तियां, भौगोलिक रचना और मानवीय रचनाएं, संपूर्ण वनस्पति एवं जीव जगत, जल, स्थल, वर्षा, मौसमी परिवर्तन हवा, सूर्य, चन्द्रमा, प्रकाश आदि के द्वारा हमारा पर्यावरण निर्धारित होता है। पर्यावरण की कार्यप्रणाली प्राकृतिक संसाधनों से संचालित होती है तथा पर्यावरण के तत्वों में पार्थिव एकता विद्यमान है। पर्यावरण हमारी पृथ्वी पर जीवन का आधार है, जो न केवल मानव अपितु विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तुओं एवं वनस्पतियों के उद्भव, विकास एवं अस्तित्व का आधार है। सभ्यता के विकास से वर्तमान युग तक मानव ने जो प्रगति की है, उसमें पर्यावरण की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

पर्यावरण शब्द अंग्रेजी के 'Environment' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। जीवधारियों एवं वनस्पतियों के चारों ओर जो आवरण है, वह पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के 'Environ' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है– आवृत्त या घिरा हुआ। पर्यावरण से अभिप्राय उन समस्त भौतिक दशाओं तथा तत्वों से लिया गया है जो मानव जाति को चारों ओर से घेरे हुए हैं। पर्यावरण के कुछ कारक संसाधन के रूप में कार्य करते हैं, जबकि दूसरे कारक नियंत्रक का कार्य करते हैं। कुछ विद्वानों ने पर्यावरण को मिल्यू (Milleu) से संबोधित किया है, जिसका अर्थ चारों ओर के वातावरण का समूह होता है।

पारिस्थितिक तंत्र (Ecological System) एक प्राकृतिक इकाई है जिसमें एक क्षेत्र विशेष के समस्त जीवधारी, अर्थात पौधे, जीवजंतु तथा अणुजीव सम्मिलित हैं जो कि अपने अजैविक पर्यावरण के साथ अंतर्क्रिया करके एक संपूर्ण जैविक इकाई बनाते हैं। इस प्रकार पारितंत्र अन्योन्याश्रित अवयवों की एक इकाई है जो एक ही आवास को बांटते हैं। पारितंत्र में सामान्यतः अनेक खाद्य जाल होते हैं जो पारिस्थितिकी तंत्र के अंदर इन जीवों के अन्योन्याश्रय और ऊर्जा के प्रवाह को दिखाते हैं जिसमें वे अपने आवास, भोजन व अन्य जैविक क्रियाओं हेतु परस्पर निर्भर रहते हैं।

टिप्पणी

पारिस्थितिकी जीवविज्ञान की एक शाखा है जिसमें जीव समुदायों का उसके वातावरण के साथ परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं। प्रत्येक जंतु व वनस्पति एक निश्चित वातावरण में निवास करते हैं। पारिस्थितिकी इस तथ्य का पता लगाते हैं कि जीव आपस में और पर्यावरण के साथ किस प्रकार क्रिया करते हैं और वह पृथ्वी पर जीवन की जटिल संरचना का पता लगाते हैं।

पारिस्थितिकी को पर्यावरणीय जीवविज्ञान भी कहा जाता है। इस विषय में व्यक्ति, जनसंख्या, समुदायों और पारितंत्र का अध्ययन होता है। पारिस्थितिकी हेतु जर्मन भाषा में Oekologic शब्द का प्रथम प्रयोग 1866 में जर्मन जीव वैज्ञानिक अर्नेस्ट हैकल ने अपनी पुस्तक 'जनरल मार्फोलॉजी ऑफ ऑर्गेनिज्म' में किया था।

बीसवीं शताब्दी पर अध्ययन प्रारम्भ हुआ और एक साथ अनेक विषयों पर ध्यान किया गया। फलस्वरूप मानव पारिस्थितिकी की संकल्पना आयी। प्राकृतिक वातावरण अत्यंत जटिल है इसलिए शोधकर्ता अधिकांशतः किसी एक प्रकार के प्राणियों की प्रजाति या पौधों पर शोध करते हैं।

बीसवीं सदी में यह ज्ञात हुआ कि मनुष्यों की गतिविधियों का प्रभाव पृथ्वी और प्रकृति पर सदैव सकारात्मक रूप में ही नहीं होता है। मानव गतिविधियों का प्रकृति पर प्रभाव प्रदूषण, वनों में आग लगना, सूखा पड़ना, अति वर्षा, भूस्खलन, भूकम्प के रूप में प्रकट होता है। जिससे मनुष्य पर्यावरण पर पड़ने वाले गंभीर प्रभाव के प्रति जागरूक हुए। पृथ्वी के प्रत्येक पारितंत्र में अनेक प्रकार के पौधों और पशुओं की प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनके अध्ययन में पारिस्थितिक किसी स्थान विशेष के पारितंत्र के इतिहास और गठन को ज्ञात करते हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र शब्द को 1930 में रोय क्लाफाम द्वारा एक पर्यावरण के संयुक्त शारीरिक और जैविक घटकों को निरूपित करने के लिए बनाया गया था। ब्रिटिश पारिस्थितिकी विज्ञानशास्त्री आर्थर टान्सले ने, इस शब्द को परिष्कृत करते हुए यह वर्णन किया कि 'यह संपूर्ण प्रणाली, न केवल जीव परिसर है बल्कि इसमें समस्त भौतिक कारकों का सम्पूर्ण परिसर भी सम्मिलित है जिसे हम पर्यावरण कहते हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र की गतिशीलता पर्यावरण तथा इसके जैव घटकों (पौधों, कवक, जानवरों के मध्य) में होने वाले निरन्तर परिवर्तनों के समूह को संदर्भित करती है। दोनों जैव तथा अजैव घटक एक पारिस्थितिकी तंत्र का अंग हैं व गतिशील संतुलन हैं, जो इसे स्थिरता प्रदान करते हैं। उसी प्रकार परिवर्तन की प्रक्रिया पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना और उपस्थिति को परिभाषित करती है।

पारिस्थितिकी तंत्र सदैव क्रियाशील रहता है अर्थात गतिमान रहता है, उसी को इस क्रियात्मक स्वरूप (गतिशीलतात्मक) की संज्ञा दी जाती है। गतिशीलता स्वरूप के अन्तर्गत ऊर्जा प्रवाह, पोषकता का प्रवाह एवं जैविक व पर्यावरणीय नियमन सम्मिलित होता है जो कि सामूहिक रूप से प्रत्येक तंत्र को परिचालित करता है।

जैव भू–रासायनिक चक्र में ऊर्जा का मुख्य स्रोत सूर्य होता है, जो जलवायु व्यवस्था के अनुरूप ऊर्जा प्रदान करता है। उत्पादक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से खनिज लवण, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन द्वारा शाकाहारी जीवों को भोजन प्रदान करते हैं

टिप्पणी

जिन पर मांसाहारी निर्भर करते हैं। इन्हीं के अपघटन के परिणामस्वरूप विभिन्न खनिज लवणों का भी निर्माण होता है, जो पुनः उत्पादक तक पहुँचते हैं। ऊर्जा सूर्य से उत्पादक, फिर भोज्य तथा अपघटक में पहुँचती है। ये समस्त क्रियाएँ नियमित एवं इतनी अधिक सुचारु रूप से संपादित होती हैं कि सामन्यतया इनका अनुभव नहीं होता है। इस संपूर्ण क्रिया में ऊर्जा का प्रवेश तथा उसका रूपांतरण गणित के ऊष्मागर्तित नियम के अनुसार होता है अर्थात ऊर्जा का न तो निर्माण होता है और न ही यह नष्ट होती है अपितु उसका रूपान्तरण होता है, इस क्रम में कुछ ऊर्जा नष्ट अवश्य हो जाती है।

विकास एक निरंतर चलने वाली सतत प्रक्रिया है। इसी पर एक राष्ट्र की खुशहाली में विकास की गति की एक अहम भूमिका होती है। प्रत्येक विकास प्रक्रिया के नकारात्मक तथा सकारात्मक परिणाम होते हैं। एक आदर्श विकास वही कहलाता है जिसमें कम से कम प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हो। पर्यावरण किसी देश की आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक राष्ट्र के विकास का एक बड़ा हिस्सा विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन से संबंधित होता है। प्राकृतिक संसाधनों (जल, जीवाश्म, ईंधन व मिट्टी इत्यादि) की उत्पादन क्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यकता होती है। हालांकि, उत्पादन के परिणामस्वरूप पर्यावरण द्वारा प्रदूषण का भी अवशोषण होता है। इसके अतिरिक्त उत्पादन हेतु प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक प्रयोग से पर्यावरण में संसाधनों की कमी की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है। तीव्र गति से बढ़ती हुई विकास प्रक्रियाएँ, औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा प्रौद्योगिकीकरण के कारण विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई है। इनमें पर्यावरणीय प्रदूषण ने वातावरण को अत्यधिक दूषित किया है तथा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है।

केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि जीव एक भौगोलिक प्राणी है, अतः संसार के प्रत्येक जीव को अपने विकास एवं जीवन–क्रम को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए संतुलित पर्यावरण की आवश्यकता होती है। यदि कभी पर्यावरण में किसी विशेष घटक (Component) की निश्चित अनुपात में कमी या वृद्धि हो जाती है, तो ऐसी स्थिति में वातावरण दूषित हो जाता है। वातावरण का दूषित होना 'पर्यावरण असंतुलन' उत्पन्न कर देता है।

जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपभोग और तीव्र दोहन हो रहा है, जो कि मृदा निम्नीकरण, जैव विविधता में कमी तथा वायु जल स्रोतों के प्रदूषण के रूप में दिखाई दे रहा है। अत्यधिक दोहन के कारण पर्यावरण का क्षरण हो रहा है तथा यह मानव जाति और उसकी उत्तरजीविका के लिए खतरा उत्पन्न कर रहा है। पर्यावरण अवनयन, कुछ मानवीय क्रियाकलापों (वनोन्मूलन अनवीकरणीय ऊर्जा के अत्यधिक प्रयोग) के कारण तीव्रता से विकसित हो रहा है। पर्यावरण अनवयन पर्यावरण में उत्पन्न असंतुलन का परिणाम है जो मानवीय या प्राकृतिक गतिविधियों के कारण घटित होता है।

1.8 मुख्य शब्दावली

टिप्पणी

- **उपलब्ध** : मौजूद, उपस्थित।
- **प्रतिबद्ध** : फंसा हुआ, बंधा हुआ, जड़ा हुआ।
- **संप्रत्यात्मक** : यथार्थबोधात्मक।
- **कार्यात्मक** : कार्य की प्रक्रिया से संबद्ध।
- **कवक** : कवल, क्षत्रक, फंगस, फफूंद।
- **आर्द्रता** : नमी।
- **अक्षांश** : भूमध्य रेखा से उत्तर या दक्षिण का अंतर।
- **उच्चावच** : ऊंचा–नीचा, विषम, छोटा–बड़ा।
- **पर्यावरण** : चारों ओर की स्थिति, अड़ोस–पड़ोस।

1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. पर्यावरण किसे कहते हैं?
2. पर्यावरण की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं?
3. पारिस्थितिकीय पिरामिड से आप क्या समझते हैं?
4. प्रदूषण का क्या अर्थ है?
5. धुआंसा या स्मॉग क्या है तथा यह किस कारण से निर्मित होता है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. पर्यावरण के संघटकों की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. भिन्न–भिन्न प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्रों की व्याख्या कीजिए।
3. पारिस्थितिकी तंत्र की गतिशीलता की विस्तृत समीक्षा कीजिए।
4. विकास के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण कीजिए।
5. मानवीय या प्राकृतिक गतिविधियों के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का विवेचन कीजिए।

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. Emitton E, 1989, *Nature Hazards and Global Change,* ITC Journal-314, 169-178.
2. Kormondy EJ, 1969, *Concepts of Ecology,* Prentice Hall, New Jersey.
3. Allaby, M, *Environment*, York: Gareth Stevens Publishing, 2000.
4. Carson, R, *Silent Spring*, Boston: Houghton Miffin Harcourt, 1962.

टिप्पणी

5. Rajagopalan, R, *Environmental Studies*, 2nd edn. New Delhi: Oxford University Press.
6. Rangarajan M. and K. Sivaramakrishnan (eds). *India's Environmental History-A Reader*: (Vol. 1: From Ancient Times to the Colonial Period, Vol. 2: Colonialism, Modernity, and the Nation). New Delhi: Orient Blackswan Press, 2011.
7. Rangarajan, M (ed), *Environmental Issues in India: A Reader*, New Delhi: Pearson Longman, 2007.
8. WCED (World Commission on Environment and Development). Our Common Future. New York: Oxford University Press, 1987.

इकाई 2 सतत विकास हेतु प्रयास

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 सतत विकास
2.3 सतत विकास : मानवीय व्यवहार हेतु निहितार्थ
2.4 सतत विकास की प्राप्ति
2.5 सतत विकास के लिए अधिगम
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

संविकास/शाश्वत विकास/संधृत या टिकाऊ विकास या सतत विकास का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसकी जानकारी और अध्ययन का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है।

सतत विकास यानी संविकास की सही दिशा है– जीवन धारण करने योग्य विकास, क्योंकि इससे वर्तमान तथा भविष्य में सुख–सुविधा प्राप्ति की निश्चितता रहती है। जीवन धारण करने योग्य विकास से कार्य उस विकास में पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण द्वारा किया जा सकता है। पारिस्थितिकीय जीवन धारण करने योग्य विकास से तात्पर्य उस जीवन विकास से है जो मानव जीवन की उत्तमता के लिए पर्यावरण को हानि पहुँचाये बिना हो। इसलिये यह विकास पर्यावरण व पारिस्थितिकी के साथ सामंजस्य करने से होगा तथा उन तकनीकों का विकास करके जिससे पर्यावरण–हानि को रोका जा सके। इसके लिये पारिस्थितिकी के साथ आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक तथ्यों का भी समन्वय करना होगा। जनसंख्या के दबाव को सीमित और कम करना इसकी प्राथमिक आवश्यकता है। क्षेत्रीय पर्यावरण की उपयुक्त प्रौद्योगिकी को अपनाकर भी पारिस्थितिकी की रक्षा की जा सकती है। संविकास से तात्पर्य यह है कि विकास इस प्रकार का होना चाहिए जो मानव समाज की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त भविष्य के लिये भी आधार प्रस्तुत करे।

प्रस्तुत इकाई में सतत विकास के लिए किए जाने वाले प्रयासों का विधिवत एवं विस्तृत अध्ययन किया गया है तथा मानवीय व्यवहार हेतु निहितार्थ सतत विकास की प्राप्ति और सतत विकास के लिए अधिगम जैसे पहलुओं का गहन विवेचन किया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सतत विकास के विभिन्न पहलुओं को समझ पाएंगे;
- सतत विकास के संदर्भ में मानवीय व्यवहार हेतु निहितार्थ के बारे में जान पाएंगे;

- सतत विकास की प्राप्ति कर पाएंगे;
- सतत विकास के लिए किए जाने वाले अधिगम को ग्रहण कर पाएंगे;
- सतत विकास के लिए विभिन्न प्रयासों को कर पाएंगे।

टिप्पणी

2.2 सतत विकास

सतत विकास (Sustainable Development) का सामान्य अर्थ जीवन धारण करने योग्य विकास, संधृत अथवा टिकाऊ विकास है अथवा दीर्घकाल तक रहने वाला विकास है। इस प्रकार के विकास का आधार पर्यावरण से प्राप्त विभिन्न संसाधनों पर टिका है।

प्रसिद्ध जीव–रसायन शास्त्री फ्रेड्रिक वेस्टर के विचार के अनुसार हमें प्रकृति से बहुत कुछ सीखना होगा, क्योंकि यह आदर्श तकनीक तथा उचित प्रबन्ध कौशल का परिचायक है। उनके अनुसार, 4 अरब प्राणियों ने अब तक 30 हजार पौधों की प्रजातियों तथा लगभग 200 पक्षियों और जन्तुओं की प्रजातियाँ नष्ट कर दी हैं और लगभग 1000 नष्ट होने के खतरे का सामना कर रही हैं। दूसरी ओर मानव जनसंख्या निरन्तर बढ़ रही है तथा खाने–पीने के पदार्थों की खपत दस गुना अधिक हो गई है। पृथ्वी की उर्वरक परत गहन खेती के कारण पतली हो रही है। भवनों के निर्माण, भू–क्षरण तथा मरुस्थलों का विकास हो रहा है। यह सब आत्मघातक है। इसके लिये प्रकृति की पारस्परिक क्रियाओं को समझना होगा क्योंकि उनके मध्य एक सार्वभौमिक एकता होती है। प्रो. वेस्टर के अनुसार, ''दुनिया का भविष्य एक प्रकार से साइबरनैटिक विज्ञान को ठीक प्रकार से समझने पर निर्भर है।'' ऊर्जा के पुनः प्रयोग से ऊर्जा समस्या कम हो जाती है। वृहत् उद्योगों के स्थान पर अधिक संख्या में छोटी इकाइयाँ स्थापित करने से ऊर्जा की बचत होती है तथा प्रदूषण का खतरा भी कम हो जाता है। उनके अनुसार दोष वर्तमान तकनीक का नहीं, बल्कि उसके गलत प्रयोग का है, इसलिये उसका विकास होना चाहिए, जिसे जीव–विज्ञान दर्शाते हैं, अर्थात् कम से कम स्थान, ऊर्जा एवं भौतिक सामग्री की आवश्यकता हो ऐसी तकनीक अपनायी जाए, जो प्रकृति के विरुद्ध न हो, जिससे पर्यावरण प्रदूषण कम से कम हो तथा जो न केवल मनुष्यों वरन् सम्पूर्ण, जीव–जगत के लिये लाभदायक हो। वास्तव में उपर्युक्त विचार मूलरूप से पारिस्थितिकी तन्त्र के अनुरूप विकास के विचार को ही सिद्ध करते हैं।

सतत विकास का अर्थ (Meaning of Sustainable Development)

पर्यावरण के ह्रास को रोकने तथा भूमंडलीय तापन (Global warming) की समस्या के समाधान के लिये टिकाऊ विकास अनिवार्य है। वर्ष 1992 के पृथ्वी शिखर सम्मेलन में सतत विकास और उससे होने वाले सामाजिक एवं आर्थिक लाभों पर लंबी परिचर्चा की गई थी। पृथ्वी शिखर सम्मेलन के कुछ प्रमुख बिदुओं का संक्षिप्त वर्णन निम्न में किया जाएगा।

इस सम्मेलन में टिकाऊ विकास की परिभाषा भी दी गई है। सतत विकास की वैज्ञानिकों ने बहुत–सी परिभाषाएँ दी हैं। ब्रैंटलैंड महोदय के अनुसार, "ऐसा विकास जिसमें वर्तमान की आवश्यकताओं की आपूर्ति कर सके तथा पारितंत्र भी स्वस्थ एवं सतत अवस्था में बना रहे।"

सतत विकास (Sustainable Development) की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

1. विकास की ऐसी क्षमता जिससे पारितंत्र उत्पादन देता रहे तथा भविष्य के लिये स्वास्थ्य एवं टिकाऊ अवस्था में बना रहे।
2. ऐसा विकास जिससे मानव जीवन सुखी बना रहे।
3. प्राकृतिक संसाधनों का ऐसा सदुपयोग जिससे भविष्य की पीढ़ियों के लिये भी संसाधन उपलब्ध रहें और सबका जीवन सुखी बना रहे।

टिप्पणी

सतत विकास वर्तमान की परम आवश्यकता है ताकि पारितंत्र की उत्पादकता को बनाये रखा जा सके। वास्तविकता यह है कि मानव जीवन का आधार पारितंत्र एवं पर्यावरण ही है। पारितंत्र एवं पर्यावरण को सतत बनाये रखने के लिए उपाय किए जा सकते हैं, फिर भी भारत जैसे विकासशील देश को विशेष उपायों पर बल देने की आवश्यकता है जिनकी चर्चा आगे की गई है।

सतत विकास – एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Sustainable Development – A Historical Perspective)

सतत विकास एक काफी पुरानी अवधारणा है परंतु दूसरे महायुद्ध के पश्चात इसकी महत्ता पर विशेष बल दिया जा रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का मानव विकास संबंधी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन वर्ष 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित किया गया था। वर्ष 1974 में बेरी महोदय ने प्रसिद्ध पुस्तक 'The Closing Circle' प्रकाशित की थी। इस पुस्तक में निम्न बिंदुओं पर विशेष बल दिया गया–

1. पृथ्वी पर हर एक वस्तु एक–दूसरे से जुड़ी है।
2. पृथ्वी की हर एक वस्तु किसी न किसी दिशा में बढ़ रही है।
3. प्रकृति सब कुछ भली–भांति जानती है।
4. मुक्त आहार जैसी कोई चीज नहीं है।

तत्पश्चात, संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1982 की जनरल असेम्बली में 'वर्ल्ड चैप्टर फॉर नेचर' (World Chapter for Nature) का प्रस्ताव पारित किया। इसके पश्चात ब्रैंटलैंड महोदय ने अपनी रिपोर्ट 'Our Common Future' में सतत विकास की अवधारणा प्रस्तुत की थी।

इस रिपोर्ट में निम्न बिंदुओं पर बल दिया गया–

1. इस प्रकार की सरकार जिसमें सभी नागरिकों की निर्णय लेने में भागीदारी हो।
2. ऐसी आर्थिक संस्था जिसमें अधिक उत्पादन किया जाए तथा टेक्नोलॉजी का विकास किया जाए।
3. ऐसा सामाजिक तंत्र जो पारिस्थितिकी को ध्यान में रखकर विकास की योजनाओं पर बल देता है।
4. ऐसा उत्पादक तंत्र जो विकास के साथ–साथ पारिस्थितिकी का संरक्षण करता हो।
5. ऐसा टेक्निकल तंत्र जो निरंतर विकास पर बल देता है।

6. ऐसा प्रशासनिक तंत्र जिसमें लचक हो और बदलती परिस्थिति के अनुसार निर्णय ले सके।
7. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में पर्यावरण के टिकाऊपन का ध्यान रखना।

टिप्पणी

ब्रैंटलैंड महोदय ने अपनी रिपोर्ट में विकास की योजना बनाते समय निम्न बातों को ध्यान में रखने पर बल दिया–

1. सतत विकास (Sustainable Development)
2. सतत पृथ्वी (Sustainable World)
3. सतत मानव विकास (Sustainable Peace and Development)
4. सतत शांति एवं विकास (Sustainable Peace and Development)
5. सतत उपभोग (Sustainable Consumption)
6. सतत टैक्नोलोजी (Sustainable Technology)

वर्ष 1980 से वर्ष 1990 तक बहुत–से अंतर्राष्ट्रीय कनवेंशन एवं सम्मेलन आयोजित किए गये। इनमें से प्रमुख सम्मेलन इस प्रकार हैं–

1. वर्ष 1987 में ओजोन ह्रास के संबंध में मांट्रियल प्रोटोकोल।
2. वर्ष 1987 में खतरनाक पदार्थों के बारे में बेसल कनवेंशन।
3. वर्ष 1992 में जलवायु परिवर्तन कनवेंशन।
4. जैविक–विविधता कनवेंशन वर्ष 1992।
5. पृथ्वी सम्मेलन 1992।
6. वर्ष 2002 का विश्व सम्मेलन, सतत विकास के संबंध में।

पारिस्थितिकी/ईकोडेवलपमेंट विकास (Eco-Development)

पारिस्थितिकी विकास की अवधारणा का अर्थ ऐसे विकास से है जिसमें विकास के साथ–साथ पारिस्थितिकी संतुलन बनाया रखा जा सके। इस प्रकार के विकास पर सबसे पहले यू.एन.ई.पी. (UNEP) ने बल दिया था।

सतत विकास का मूलभूत स्वरूप (Basic Aspects of Sustainable Development)

विकासशील देशों की तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या तथा विकसित देशों में बढ़ते हुए उपभोक्तावाद के कारण सतत विकास प्राप्त करना कठिन कार्य हो गया है।

सतत विकास प्राप्त करने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना अति आवश्यक है–

1. जैव–विविधता
2. ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन
3. खतरनाक कूड़े–करकट का प्रबंधन
4. उद्योगों से निकलने वाले कूड़े–करकट का प्रबंधन
5. पारिस्थितिकी सुरक्षा

वैज्ञानिकों का विचार है कि विश्व के अधिकतर भागों में विकास करते समय पारिस्थितिकी के सिद्धांतों को ध्यान में नहीं रखा जा रहा है, जिसके कारण प्राकृतिक

संसाधनों तथा पर्यावरण का तीव्रता से ह्रास हो रहा है। पर्यावरण ह्रास के मुख्य कारणों पर पूर्व में विचार किया जा चुका है।

टिप्पणी

सतत विकास की पूर्वापेक्षा (Prerequisites of Sustainable Development)

पारिस्थितिकी संतुलन को स्थापित करने के लिये आर्थिक विकास निम्न सिद्धांतों को ध्यान में रखकर करना चाहिए–

1. प्राकृतिक संसाधनों का समुत्थान–शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।
2. टेक्नोलॉजी का विकास करते समय नवीकृत संसाधनों के संरक्षण का विशेष ध्यान रखा जाए।
3. नवीकृत संसाधनों को उपयोग में लाने के लिये विशेष नीति तैयार की जाए।

सतत विकास के सिद्धांत (Principles of Sustainability)

सतत विकास के सिद्धांत निम्न प्रकार हैं–

1. प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग।
2. जैविक–विविधता का संरक्षण।
3. सांस्कृतिक विविधता का संरक्षण।
4. पर्यावरण एवं संसाधनों से सतत आय।
5. संसाधनों का उपयोग इस प्रकार किया जाए ताकि समाज के सभी वर्गों को लाभ पहुंच सके।
6. संसाधनों का पुनः उपयोग।
7. मानव का गुणात्मक विकास/मानव विकास के लिये शिक्षा, स्वास्थ्य तथा प्रति व्यक्ति आय पर विशेष ध्यान देना।
8. सतत विकास के लिए विश्व परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखना।
9. विश्व के सभी समुदायों द्वारा आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाए।
10. समाज के सभी वर्गों के द्वारा संसाधनों का सदुपयोग करना।
11. मानव समाज अपनी मान्यताओं में परिवर्तन करे और यह समझे कि पृथ्वी पर संसाधन सीमित हैं।
12. सतत विकास के लिये सभी व्यक्तियों एवं समाजों की सबल भागीदारी।

सततता का मापन (Measurement of Sustainability)

पर्यावरण तथा प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग एवं सततता का मापन उनकी समुत्थान–शक्ति के आधार पर किया जाता है। पारिस्थितिकी की सरलता को आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपयोगिता के आधार पर भी परखा जा सकता है।

पारितंत्र की सततता को परखने के सूचकांकों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

1. **पारिस्थितिकी सूचकांक (Ecological Indicator):** पारिस्थितिकी तंत्र में भूमि उपयोग; भूमि उपयोग में परिवर्तन, बायोमास की गुणवत्ता एवं मात्रा, मृदा की उत्पादकता, ऊर्जा की उपलब्धि तथा इनका प्रबंधन सम्मिलित है।

टिप्पणी

2. **भूमि उपयोग के प्रतिरूपों में परिवर्तन (Changing Pattern of Land Use):** भूमि रिकार्ड तथा रिमोट सेंसिंग की सहायता से भूमि उपयोग के वर्तमान प्रतिरूप का पता लगाया जा सकता है, जिसके आधार पर भूमि उपयोग के लिये भविष्य की योजना तैयार की जा सकती है।
3. **बायोमास की मात्रा एवं गुणवत्ता (Biomass Quantity and Quality):** धरातलीय एवं जलीय पारितंत्रों से प्राप्त होने वाले उत्पादनों की मात्रा एवं गुणवत्ता भी पारितंत्र के समुत्थान शक्ति के महत्वपूर्ण सूचकांक हैं।
4. **जल मात्रा की उपलब्धता एवं गुणवत्ता (Water Quality and Quantity):** जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। नदियों, झीलों, पोखरों, तालाबों तथा भूमिगत जल की मात्रा एवं गुणवत्ता भी पारितंत्र के समुत्थान का सूचकांक माना जाता है।
5. **मृदा उत्पादकता (Soil Fertility):** मृदा का सदुपयोग करते हुए वैज्ञानिक फसल चक्र के द्वारा फसलों का उत्पादन करना।
6. **ऊर्जा (Energy):** ऊर्जा पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी का एक महत्वपूर्ण तत्व है। सभी प्रकार की ऊर्जा अर्थात् जीवाश्म ऊर्जा, सूर्य ऊर्जा, पवन ऊर्जा, ज्वार–भाटा ऊर्जा का पारितंत्र एवं पर्यावरण पर गहरा प्रभाव पड़ता है।
7. **आर्थिक सूचकांक (Economic Indicators):** लागत खर्च तथा उत्पादन के अनुपात का भी पारितंत्र पर गहरा प्रभाव पड़ता है।
8. **सामाजिक सूचकांक (Social Indicators Quality of Life):** जीवन की गुणवत्ता एक प्रमुख सामाजिक सूचकांक है। कहा जाता है कि लोगों का जीवन–स्तर जितना ऊँचा होता है, वहां का पर्यावरण एवं पारितंत्र भी उतना ही टिकाऊ होता है।

संक्षिप्त में सतत विकास के लिये उपरोक्त सभी उपाय करने की आवश्यकता है।

सतत विकास के लिये व्यक्तिगत प्रयास (Role of Individuals in Sustainable Development)

हममें से प्रत्येक व्यक्ति के प्रयास से भी पारितंत्र तथा पारिस्थितिकी की समुत्थान–शक्ति को सतत स्थिति में भारी सहायता मिल सकती है।

पर्यावरण संरक्षण के लिये प्रत्येक व्यक्ति को निम्न उपाय करने की आवश्यकता है–

(क) ऊर्जा (Energy)

1. बाइसिकल का उपयोग करें, वाहन को आवश्यकता पड़ने पर थोड़ी दूरी तक ही चलाएं। दैनिक जीवन में सरकारी वाहनों का इस्तेमाल करें।
2. उत्तम प्रकार के बिजली के बल्ब तथा उपकरणों का प्रयोग करें।
3. घरों के विद्युतरोधी उपकरणों की ठीक देख–रेख करें।
4. ऊर्जा के विकल्प साधनों को खोजा जाए।
5. ऐसी बैटरियों का उपयोग करें जिनको फिर से रिचार्ज किया जा सके।

टिप्पणी

(ख) आहार (Food)

1. भोजन ऐसे प्रदेशों/क्षेत्रों से प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए जहाँ गोबर तथा कंपोस्ट और हरी खाद का फसलों को उगाने में प्रयोग होता हो। रासायनिक खाद से उगाई गई फसलें, सब्जियां तथा फल इत्यादि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।
2. इस बात पर सदैव विचार कीजिये कि आपके भोजन प्राप्ति का पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।
3. घर के बगीचे में सब्जियां उगायें।
4. भोजन की वस्तुओं को ऐसे थैलों में खरीद कर लाइए जिनका दोबारा प्रयोग किया जा सके। पॉलीथीन का प्रयोग न करें।

(ग) जल (Water)

1. जल को बचत के साथ प्रयोग करें।
2. घर के लॉन में लगी घास की सिंचाई बार–बार न करें। संभव हो तो लॉन में ऐसी घास लगायें जो कम जल मिलने पर भी हरी–भरी रह सके।
3. स्नान करते समय पानी की बचत करें। स्नान थोड़े समय में लें।
4. रसोई के बर्तन धोने में भी जल की बचत करें।

(घ) विषाक्त पदार्थ तथा प्रदूषण तत्व (Toxic Material and pollution)

1. विषाक्त पदार्थों का उचित ढंग से प्रबंधन करें। जिन डिब्बों में रंग–रोगन, कीटाणु नाशक दवाई, रासायनिक पदार्थ रखे जाएं, उनको उपयुक्त स्थान पर जमा करें और उनका इस्तेमाल खाने–पीने की वस्तुओं को रखने के लिये न करें।
2. वस्तु को खरीदने से पहले उस पर लिखे लेबल को पढ़ें तथा कम विषाक्त पदार्थ वाली वस्तु को खरीदें।
3. ऐसे कपड़े खरीदने चाहिए जिनकी बार–बार धुलाई न करनी पड़े।

(ङ) पुनः उपयोग एवं कूड़ा–करकट (Recycling and Waste)

1. समाचार–पत्र, मैगजीन, केन, बोतल, ग्लास आदि का पुनः उपयोग करें।
2. ऐसी वस्तुएं खरीदिए जिनका दोबारा इस्तेमाल किया जा सके।
3. अपने निवास स्थान को साफ–सुथरा रखने के लिए समय निकालें।
4. कागज के स्थान पर तौलिये का प्रयोग करें।
5. सामान खरीदने जाने के लिये अपना कपड़े का बैग साथ लेकर जाएं।

(च) जैव एवं पर्यावरण सुरक्षण (Preservation of Life and Environment)

1. वृक्षारोपण।
2. खुली जगहों तथा मैदानों की सुरक्षा कीजिए।
3. सी.एफ.सी. गैसों की उत्सर्जन पर रोक लगाएं।
4. ध्वनि प्रदूषण करने वाले संगठनों का बहिष्कार कीजिए।
5. कूड़ा–कचरा इधर–उधर न फेंकिए। कूड़ेदान का इस्तेमाल करें।

टिप्पणी

(छ) अन्य बातें (Other things)

1. अपने विधायकों को अपने क्षेत्र/मोहल्ले में आमंत्रित कीजिए।
2. चिपको आंदोलन जैसी संस्थाओं से जुड़िये तथा उनको सहयोग दीजिए।
3. अपने मित्रों की पर्यावरण संबंधी जागरूकता बढ़ाएं।
4. उत्तम प्रकार की वस्तुएं खरीदें तथा उनकी उचित ढंग से देख–रेख करें।
5. किसी उद्यान अथवा सागर के किनारे जाकर शांतिपूर्वक बैठिये तथा पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के बारे में ध्यान से पढ़िए तथा सुनिए।
6. परिणाम के प्रति आशावादी रहिये तथा उत्साहित रहें।

भारत में संविकास के प्रयास (Efforts of Eco-development in India)

1976 ई. में पारित भारत के संविधान में 42वें संशोधन में 48A धारा जोड़ी गई थी, जिसके अन्तर्गत एक निदेशक सिद्धान्त द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा एवं उसमें परिष्कार हेतु प्रयास करना राष्ट्र का दायित्व बन गया। इसके द्वारा प्रत्येक नागरिक का यह मौलिक कर्तव्य भी हो गया है कि वह पर्यावरण की सुरक्षा एवं उसमें परिष्कार करे। पर्यावरण सम्बन्धी कुछ विषय जैसे– वन, वन्य जन्तु एवं जनसंख्या नियन्त्रण समवर्ती सूची में डाल दिये गये जिससे केन्द्र सरकार इनसे सम्बन्धित कानून बनाने में सक्षम हो गई, तथापि अभी सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं सफाई, कृषि आदि अनेक विषयक कानून बनाना राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र में ही है।

1972 ई. के पश्चात् संरक्षक परक अनेक कानून बने जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं–

(1) वन्य जन्तु संरक्षण एक्ट, 1972

(2) जल (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) एक्ट, 1974

(3) वन (संरक्षण) एक्ट, 1980

(4) वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) एक्ट, 1981

(5) पर्यावरण (संरक्षण) एक्ट, 1986

प्रथम अधिनियम का उद्देश्य वन्य जन्तु विशेषतया शेर एवं गैंडा जैसे विरल जन्तुओं को संरक्षण प्रदान करना था। जल अधिनियम का उद्देश्य जल को स्वास्थ्यप्रद दशा में बनाये रखना अथवा लाना है। इसमें ऐसी व्यवस्था करने का प्रावधान है, जिसमें किसी नदी या कुएं में अथवा भूमि पर विषैले पदार्थ छोड़ना अथवा नदी में कोई भी ऐसा पदार्थ डालना जिससे प्रवाह में बाधा पड़े या प्रदूषण हो, वर्जित किया जा सके। वायु अधिनियम में भी ऐसे ही प्रावधान हैं। इनमें सरकार को किसी क्षेत्र को वायु प्रदूषण नियन्त्रण क्षेत्र घोषित करने का अधिकार भी दिया गया है। इन प्रावधानों के अन्तर्गत जल एवं वायु प्रदूषण बोर्ड गठित किए गये हैं जो जल या वायु में किसी पदार्थ को छोड़ने या कुछ शर्तें तय करने को अधिकृत हैं।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम के अनुसार पर्यावरण में किसी प्रकार के प्रदूषक डालने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। पर्यावरण प्रदूषण की परिभाषा में कोई भी ऐसा ठोस, द्रव या गैसीय पदार्थ शामिल है जो इतनी अधिक मात्रा में हो कि उससे पर्यावरण को क्षति पहुंचे। परन्तु इसमें पर्यावरण से किसी ऐसे पदार्थ के निष्कर्षण पर प्रतिबन्ध

टिप्पणी

नहीं है जो हानिकारक है। इसमें किसी भी कारखाने या बड़ी परियोजना की स्थापना के पूर्व पर्यावरण प्रभाव आकलन की अनिवार्यता की भी व्यवस्था नहीं है। 1972 ई. में स्टॉकहोम सम्मेलन (जिसमें तत्कालीन प्रधानमंत्री, श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सक्रिय भाग लिया था तथा पर्यावरण संरक्षण के साथ अल्पविकसित देशों में निर्धनता उन्मूलन पर विशेष बल दिया था) के पश्चात् देश में पर्यावरण प्रबन्ध एवं संयोजन हेतु राष्ट्रीय समिति (National Committee on Environment Planning and Co-Ordination यानी NCEPC) की स्थापना की गई। यह समिति संविकास हेतु सरकार को परामर्श देती है। इसके निम्न कार्य हैं–

(1) पर्यावरण की दशा पर एक वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करना।

(2) जनसंख्या वृद्धि एवं वितरण प्रतिरूप तथा आर्थिक विकास के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण के संरक्षण एवं परिष्कार की समस्या का विश्लेषण करना।

(3) उन नीतियों एवं कार्यक्रमों की समीक्षा करना जिनका पर्यावरण की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ सकता है तथा सरकार, सार्वजनिक प्रतिष्ठान एवं सम्बन्धित उद्योगों को अपने निष्कर्षों से अवगत कराना एवं समुचित पर्यावरण प्रबन्ध सम्बन्धी परामर्श देना।

(4) आर्थिक विकास परियोजनाओं के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव के आकलन हेतु निर्देशिका तैयार करना।

(5) पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबन्ध सम्बन्धी विद्यमान कानूनों एवं उनके कार्यान्वयन व्यवस्था की समीक्षा करना।

(6) यह सुनिश्चित करना कि पर्यावरण सम्बन्धी नीतियों एवं उद्योगों का आर्थिक विकास सम्बन्धी नीतियों एवं उपायों से सामंजस्य स्थापित हो तथा पर्यावरण सम्बन्धी शोध एवं नयी खोजों का आर्थिक नियोजन एवं सामाजिक विकास में पूर्ण उपयोग हो।

(7) पर्यावरण संरक्षण के सभी पक्षों पर इस दृष्टि से ध्यान देना कि जनसामान्य में प्रकृति विषयक ज्ञान, प्रकृति प्रेम तथा प्रचुर प्राकृतिक सम्पत्ति की सुरक्षा की भावना विकसित हो सके।

(8) पर्यावरण समस्याओं के निराकरण सम्बन्धी शोध को प्रोत्साहित करना तथा इस प्रकार के शोध की सुविधा स्थापित करने में सहायता करना।

(9) शिक्षा तन्त्र में विभिन्न स्तरों पर पर्यावरण सम्बन्धी शिक्षा को प्रोत्साहित एवं पुष्ट करना।

(10) सम्मेलनों, गोष्ठियों आदि के द्वारा पर्यावरण परक समस्याओं के प्रति जनजागरण को प्रोत्साहित करना।

(11) विश्वव्यापी पर्यावरण सम्बन्धी कार्यक्रमों में संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों से सहयोग करना तथा अन्य देशों में पर्यावरण के क्षेत्र में होने वाली प्रगति से निकट सम्पर्क स्थापित करना।

(12) पर्यावरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण समस्याओं पर सार्वजनिक सम्मेलन आदि आयोजित करना।

टिप्पणी

NCEPC के कार्य–कलाप की रूपरेखा से प्रकट है कि इसके द्वारा संविकास के हित में सभी आवश्यक पक्षों पारिस्थितिकी तन्त्र की स्थिति का सर्वेक्षण विश्लेषण, आर्थिक विकास की परियोजनाओं के पारिस्थितिकी तन्त्र पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन, आर्थिक विकास एवं पारिस्थितिकी तन्त्र में सामंजस्य की स्थापना, पर्यावरण पर अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों से सम्पर्क एवं उनकी गतिविधियों में सहभागिता तथा स्वस्थ पर्यावरण की उपयोगिता के प्रति जागरूकता बढ़ाने पर ध्यान देने एवं सरकार को तदनुसार परामर्श देने की अपेक्षा की जाती है।

नारायण दत्त तिवारी समिति की संस्तुति पर केन्द्रीय सरकार द्वारा नवम्बर, 1980 ई. में एक पर्यावरण विभाग (Department of Environment, DOE) की स्थापना की गई। इस विभाग का दायित्व प्रमुखतया पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास का लेखा–जोखा रखने तथा विशाल आर्थिक विकास परियोजनाओं के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से जांचना–परखना है। 1981 ई. में इस विभाग को जल प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण एक्ट, 1974 तथा वायु प्रदूषण एक्ट, 1981 ई. के कार्यान्वयन का भार भी सौंपा गया। अब NCEPC पर्यावरण विभाग के परामर्शदात्री संस्था के रूप में कार्य करती है। पर्यावरण विभाग के अन्तर्गत ही Botanical Survey of India, Zoological Survey of India तथा National Museum of Natural History भी कार्यरत हैं। इसी विभाग के तत्वावधान में 19 Biosphere Reserve भी स्थापित किए गये। 1981 ई. में ही एक राष्ट्रीय संविकास परिषद् (National Eco-development Board) की स्थापना हुई। इसमें कई वैज्ञानिक तथा ऊर्जा, ग्रामीण पुनरुत्थान, सिंचाई, अन्तरिक्ष, प्रतिरक्षा पर्यावरण, वन तथा योजना विभागों के वरिष्ठ प्रशासक सदस्य होते हैं। यह परिषद की परामर्शदात्री है एवं इसका कार्य ऐसे पारिस्थितिकी तन्त्रों की पहचान करना है, जो खतरनाक स्थिति तक क्षतिग्रस्त हैं। 1985 ई. में पर्यावरण विभाग के अन्तर्गत ही, वन एवं वन्य जन्तु विभाग भी समाहित कर लिये गये। भारत सरकार द्वारा स्थापित इन सरकारी परामर्शदात्री संस्थाओं की स्थापना से स्पष्ट है कि सरकार पारिस्थितिकी के प्रति सचेत है एवं इसके लिये आवश्यक कदम उठाने को प्रस्तुत है। अब तक केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों ने 326 ऐसे कानून पारित किए हैं जो पर्यावरण की सुरक्षा एवं दुरुपयोग को बचाने के लिये बनाये गये हैं। तथापि इन कानूनों का क्रियान्वयन सन्तोषप्रद नहीं कहा जा सकता न ही जन सामान्य में पारिस्थितिकी संरक्षण एवं संवितरण के प्रति अपेक्षित स्तर की जागरूकता उत्पन्न हुई है। यद्यपि पर्यावरण विभाग की समीक्षा के बिना कोई विशाल आर्थिक परियोजना स्वीकृत नहीं होती; तथापि स्वयं इस विभाग को किसी परियोजना की स्वीकृति रोकने का अधिकार नहीं है। नर्मदा परियोजना में सरदार सरोवर बांध को पर्यावरण विभाग की असहमति के बावजूद स्वीकृति मिलना इसका ताजा उदाहरण है।

संविकास (शाश्वत विकास) अथवा टिकाऊ विकास की विधियाँ (Methods of Sustainable Development)

(1) अजैव संसाधनों का संरक्षण : जल व मिट्टी पर्यावरण के ऐसे अजैव घटक हैं, जो विकास के लिये आधार का निर्माण करते हैं। मिट्टियों के अपरदन होते रहने तथा स्वच्छ जल–भण्डारों में गन्दगी व औद्योगिक अपशिष्टी के अपरदन होते रहने तथा स्वच्छ जल–भण्डारों में गन्दगी व औद्योगिक अपशिष्टों के

विसर्जन से मौलिक तत्वों की गुणवत्ता समाप्त हो गई है। अब इनके संरक्षण के सभी उपाय किए जाते हैं।

टिप्पणी

(2) **विभिन्न पारितन्त्रों एवं प्रजातियों का टिकाऊ उपयोग** : टिकाऊ विकास के लिये यह आवश्यक है कि किसी पारितन्त्र की जैव प्रजातियों का उपयोग दीर्घकालिक तथा अल्पकालिक दृष्टि से किया जाए। जिस अर्थतन्त्र में जितनी अधिक लोच एवं विविधता होगी उसमें किसी एक जैव संसाधन पर निर्भरता उतनी ही कम होगी। स्थायित्व की दृष्टि से टिकाऊ उपयोग ही प्रत्येक समाज के लिये वांछित है।

(3) **नियमों–कानूनों को कड़ाई से लागू करना** : पारिस्थितिकीय विकास के लिये वैधानिक कानूनों एवं नियमों को कड़ाई से लागू करना आवश्यक है। इसके लिये न्यायिक और प्रशासनिक तन्त्र को जागरूक बनाना चाहिए।

(4) **जीन भण्डार या जैव विविधता कायम रखने का प्रयास करना** : इसके लिये वनस्पतियों का संरक्षण करके जीन–भण्डार अथवा वंश तत्व को सुरक्षित रखना आवश्यक है। जीन–भण्डार सुरक्षित रहने पर भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर कृषि फसलों के नये उन्नतशील बीज विकसित किए जा सकते हैं।

(5) **समुन्नत प्राविधिकी का निरन्तर विकास** : संविकास तभी आ सकता है जब नवीन तकनीकों का निरन्तर विकास हो तथा उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग हो। जल प्रदूषण को कम करने के लिये अब प्रदूषक तत्वों से जल–जैव रासायनिक विधि से उर्वरक बनाये जाने लगे हैं, जिनका प्रयोग फसलों को उगाने में किया जाता है। अपशिष्टों के उपचार तथा उनके पुनर्चक्रण द्वारा पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। स्विट्जरलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन तथा जर्मनी में अपशिष्टों के पुनर्वक्रमण द्वारा अपने लाभ में 40% तक की वृद्धि कर ली गई है। रेने दुबोई (Rene Duboi) का मत है कि, "अभी प्रविधि का उपयोग ऐसे विकास के लिये किया जा रहा है जो विकास से अधिक विनाश करता है।"

जनसंख्या स्थिरीकरण (Population Stabilization)

जनसंख्या स्थिरीकरण एक ऐसा चरण है जब जनसंख्या दर अपरिवर्तित रहती है। इसे शून्य जनसंख्या वृद्धि का चरण भी कहा जाता है। देश स्तर की जनसंख्या का स्थिरीकरण तब होता है जब जन्म के साथ–साथ प्रवास और मृत्यु के साथ–साथ बाहर–प्रवास समान होता है। इस प्रकार प्रतिस्थापन स्तर की प्रजनन दर 2.1 और जनसंख्या स्थिरीकरण प्राप्त करने के मध्य अधिकतर कुछ दशकों का अंतर होता है। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के अनुसार, भारत में 2045 तक जनसंख्या स्थिरीकरण के बड़े लक्ष्य को प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

जनसंख्या विस्फोट देश के हित में नहीं होता है। जनसंख्या की यह वृद्धि प्रगति के समस्त प्रयत्नों को निरर्थक व निष्फल कर देती है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56) में स्वीकार किया गया था कि जनसंख्या वृद्धि व सीमित संसाधनों पर पड़ते दबावों को देखते हुए जनसंख्या नियंत्रण की गंभीर आवश्यकता है, जन्म दर को कम कर अर्थव्यवस्था के अनुरूप लाना अति आवश्यक है।

टिप्पणी

भारत में व्याप्त निरक्षरता, बेरोजगारी, निर्धनता व अन्य सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों के चलते वृद्धि दर में अपेक्षित कमी नहीं आई है। भारत में कई राज्यों की जनसंख्या विश्व के बड़े देशों की कुल जनसंख्या के बराबर है। भारत में प्रत्येक वर्ष आस्ट्रेलिया की कुल आबादी के बराबर जनसंख्या वृद्धि हो जाती है। भारत जनसंख्या स्थिरीकरण की चुनौती से निरन्तर कई दशकों से जूझ रहा है। शहरों और गांवों की खाई बढ़ती जा रही है। पूर्व में मृत्यु दर अधिक होने से जन्म–मरण के मध्य संतुलन हो जाता था व आबादी नहीं बढ़ती थी। 1901 से 1921 के मध्य जनसंख्या नहीं बढ़ी, परन्तु चिकित्सीय सुविधाओं के विस्तार, उत्तम पोषणीय स्तर तथा जागरूकता के कारण मृत्यु दर कम हुई। जन्म दर कम नहीं होने के कारण 1901–1961 के मध्य अत्यधिक वृद्धि हुई।

जनसंख्या विस्फोट का सर्वाधिक दुष्प्रभाव पर्यावरण पर होता है। मानव अपनी असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सीमित प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता है। नदियों का जल दूषित हो रहा है। भूमिगत जल दूषित हो रहा है। औद्योगिकरण के कारण वायु प्रदूषण तीव्रता से बढ़ रहा है। प्राकृतिक असंतुलन बढ़ रहा है। जनसंख्या का नियंत्रित न होना आर्थिक क्षेत्रों में सबसे बड़ी चुनौती है। जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि से भोजन, वस्त्र, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, पेयजल आदि क्षेत्रों में संकट उत्पन्न हो रहा है।

जनसंख्या स्थिरीकरण प्रत्येक धर्म समुदायों का राष्ट्रीय कर्तव्य घोषित किया जाना चाहिए। जिस पर अमल करने की बाध्यता भी आवश्यक है। समाज में असमानता, गांवों में परिवार नियोजन के प्रति उदासीनता जनसंख्या स्थिरीकरण के लक्ष्य प्राप्ति में बाधक कारक है।

भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले राष्ट्र में जनसंख्या स्थिरीकरण के अनेकानेक लाभ हैं। इनमें बढ़ती निर्धनता पर लगाम, संसाधनों का उचित उपयोग, सरकारी योजनाओं की सफलता, बढ़ते अपराधों में कमी, बेरोजगारी पर नियंत्रण, सरकार के वित्तीय बोझ में कमी तथा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर नियंत्रण इत्यादि सम्मिलित हैं। देश की जनसंख्या यदि आगामी बीस वर्षों तक स्थिर रहती है तो पर्यावरणीय असंतुलन, अस्थिर विकास और बढ़ती बेरोजगारी जैसी समस्याओं पर नियंत्रण करना संभव हो सकता है।

भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या अत्यन्त चिंता का विषय है। लैंगिक असमानता, पुत्र जन्म प्राथमिकता, गरीबी, भारतीयों की परम्परागत विचार परम्पराएं, पुराने सांस्कृतिक मानदंड ऐसे कारक हैं जो परिवार नियोजन को प्रभावी रूप से लागू करने में बाधक बनते हैं। जनसंख्या स्थिरीकरण हेतु बड़े पैमाने पर सार्वजनिक जागरूकता तथा सार्वजनिक प्रतिभागिता की अत्यन्त आवश्यकता है। यह पर्यावरण संतुलन हेतु भी एक सशक्त माध्यम है।

पुनर्चक्रण

- पुनर्चक्रण का अर्थ है कचरे को कुछ नए रूप की सामग्री में बदलना। ग्लास, पेपर, प्लास्टिक और धातु जैसे एल्यूमीनियम और स्टील सभी का आमतौर पर पुनर्नवीनीकरण या पुनर्चक्रण किया जा सकता है।

- मृत पौधों, फलों, पत्तों और सब्जियों का कंपोस्टिंग के माध्यम से पुर्ननवीनीकरण किया जा सकता है।
- जहां पुरानी चीजें, जैसे कपड़े आदि को हम अनाथालय में दान कर देते हैं इस तरह इसे बाहर फेंकने के बजाए हम इन वस्तुओं का दोबारा उपयोग कर सकते हैं।

पुनर्चक्रण करने के लाभ (Benefits of Recycling)

- पर्यावरण साफ–सुथरा रहता है।
- सामग्री का संरक्षण होता है।
- ऊर्जा संरक्षण के लिए अच्छा है।
- मृदा प्रदूषण और जल प्रदूषण को कम करता है।
- पर्यावरण स्वच्छ होने के कारण बीमारियों को कम करता है।
- सभी प्राकृतिक संपदा संरक्षित रहती हैं।

पुनर्चक्रण का महत्व (Importance of Recycling)

- कभी–कभी लोग पुनर्चक्रण होने वाले उत्पाद के बारे में नहीं जानते इस प्रकार वे इसे करने में सक्षम नहीं हो पाते हैं। रीसाइक्लिंग आज हमारी दुनिया में एक बेहद महत्वपूर्ण मुद्दा है। पुनर्चक्रण अपने कच्चे माल के घटकों का नई सामग्री में परिवर्तन कर रहा है और फिर नए उत्पादों के निर्माण में नई सामग्री को प्रतिस्थापित करने के लिए इन्हें फिर से उपयोग किया जाता है।
- प्रत्येक व्यक्ति को पुनर्चक्रण करने के इस प्रयास में अपना पूर्णतः योगदान देना बहुत ही आवश्यक है। पुनर्चक्रण का मतलब न केवल हमारे कचरे का पुनः उपयोग करना, बल्कि पुराने कपड़ों को धर्मार्थ संगठनों में दान देना भी है।
- रेफ्रिजरेटर में भोजन को स्टोर करने के लिए प्लास्टिक कंटेनर का पुनः उपयोग किया जा सकता है, प्लास्टिक के डिब्बों में हम बगीचे में फूल लगा सकते हैं, हालांकि पुनर्चक्रण में हमारे जीवन के कई क्षेत्रों को शामिल किया गया है, उनसे हम पुनर्चक्रण कर सकते हैं।
- घर का कचरा जैसे बची–खुची सब्जियां या खाद्य पदार्थ, पेड़ों से गिरने वाले पत्तों को एक बड़ा गड्ढ़ा बनाकर उसमें नियमित रूप से जमा करके कुछ महीने तक मिट्टी ढककर प्राकृतिक उर्वरक या खाद्य बनाया जा सकता है। इससे हमारा पर्यावरण स्वच्छ रहता है और साथ ही घर के कचरे से प्राकृतिक खाद मुफ्त में मिलती है।

प्लास्टिक का पुनर्चक्रण द्वारा पुनः उपयोग (Recycling of Plastic)

- सबसे पहले, प्लास्टिक एकत्र किया जाता है और एक रीसाइक्लिंग सेंटर में ले जाया जाता है जहां इसे पिघलाया जाता है। जब प्लास्टिक को पिघलाया जाता है तो इस्तेमाल किए जाने वाले प्रत्येक पुनर्नवीनीकरण योग्य प्लास्टिक उत्पाद पर चिह्न मुद्रित किया जाना चाहिए।
- प्लास्टिक दो प्रकार के होते हैं– पॉलीथीन और बहुलक। दो प्रकार के पॉलीथीन प्लास्टिक भी हैं– उच्च घनत्व पॉलीथीन (एच.डी.पी.ई.) और कम घनत्व पॉलीथीन।

टिप्पणी

एच.डी.पी.ई. प्लास्टिक आमतौर पर फर्नीचर बनाने के लिए प्रयोग किए जाते हैं और एल.डी.पी.ई. प्लास्टिक आमतौर पर दूध के पैकिट, किराने के सामान के लिए उपयोग किए जाने वाली थैली के रूप में प्रयोग की जाती है। इससे हम इन संसाधनों को बचा रहे हैं और पृथ्वी का कचरा कम हो रहा है, इससे वायु और जल प्रदूषण को कम करने में मदद मिलती है। भविष्य में ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव को कम करने के लिए ऊर्जा की बचत महत्वपूर्ण है। यदि हम एक एल्यूमीनियम केन को रीसाइकल करते हैं तो हम लगभग 3 घंटे तक टीवी चलाने के लिए पर्याप्त ऊर्जा को बचाने में सक्षम होते हैं लेकिन यह स्पष्ट रूप से आपके टीवी की ऊर्जा खपत पर निर्भर करेगा।

- हम हर साल कई मिलियन प्लास्टिक पैकिंग के लिए उपयोग करते हैं, जो कि कचरे में जाती है। हम चाहें तो इसे इकट्ठा कर लें और रीसाइकल सेंटर में दे सकते हैं लेकिन यह आपके लिये एक अच्छा विचार है कि पुनर्चक्रण उत्पादों की प्रक्रिया के दौरान कितनी ऊर्जा बचाई जा सकती है। इससे हम प्रदूषण को काफी हद तक कम कर सकते हैं और ऊर्जा को बचा सकते हैं।

अतः लगभग कुछ भी पुनर्नवीनीकरण किया जा सकता है और कचरे को पुनः उपयोग के लिए नया आकार दिया जा सकता है लेकिन फिर भी कुछ चीजें और सामग्री जैसे– कम्प्यूटर, बैटरी लाइट, बल्ब आदि हैं जिनको रीसाइकल करना जटिल है क्योंकि उनमें काफी हद तक विषाक्त पदार्थ शामिल हैं। इसलिए हमें उन्हें जिम्मेदारी से निपटाना होगा।

कागज की रीसाइक्लिंग

- यह प्रयोग हो चुके कागज को फिर से काम का कागज बनाने की पर्यावरण–अनुकूल प्रक्रिया है। देश में रोजाना टनों कागज की खपत होती है और लेखन तथा मुद्रण के लिए उपयोग किए जाने के बाद इसे आमतौर पर बेकार सामग्री के रूप में फेंक दिया जाता है। रीसाइक्लिंग न की जाए तो यह कागज कचरे के बड़े ढेरों में बदलकर ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन और प्रदूषण जैसी समस्याओं में योगदान देता है। कागज की रीसाइक्लिंग रद्दी कागज को नए कागज में बदलकर कई समस्याओं को दूर कर सकती है। पेड़ों को काटने से बचाने के अलावा भी ऐसा करने के कई महत्वपूर्ण लाभ हैं। इस प्रकार तैयार होने वाले कागज को लकड़ी के गूदे से बनने वाले नए कागज की तुलना में कम ऊर्जा और पानी की जरूरत होती है। ऐसा करने से बेकार कागज को गड्ढों में सड़ते हुए मीथेन पैदा होने से बचाया जा सकता है। अमेरिका में अब सभी कागज उत्पादों का लगभग दो तिहाई नवीनीकृत अथवा रीसाइकल होता है हालांकि सारा नया कागज इसी से नहीं बनता।
- रीसाइकल्ड कागज बनाने के कच्चे माल के रूप में उपयोग किए जा सकने वाले कागज की तीन श्रेणियां हैं, मिल ब्रोक (कागज मिलों की रद्दी तथा फटा बेकार कागज) अप्रयुक्त कागज अपशिष्ट और उपयोग के बाद का कचरा कागज। मिल ब्रोक, इसमें कागज निर्माण के दौरान की जाने वाली कटाई–छंटाई से बचे कागज और किसी अन्य खराबी वाले कागज को मिल में रीसाइकल किया जाता है। अप्रयुक्त कागज अपशिष्ट ऐसी सामग्री को कहते हैं, जो कागज में

उपभोक्ता तक पहुंचने के लिए निकलता तो है लेकिन उपयोग के लिए तैयार होने से पहले छोड़ या छांट दिया गया होता है। उपभोग के बाद निकलने वाली अपशिष्ट सामग्री जैसे– पुराने गत्ते के डिब्बे, पुरानी पत्रिकाएं और समाचार–पत्र आदि तीसरी श्रेणी है। रीसाइकल के लिए उपयुक्त कागज को स्क्रैप पेपर कहा जाता है जिसका उपयोग अकसर लुगदी में ढाली गई पैकेजिंग सामग्री बनाने के लिए किया जाता है। रीसाइकल्ड कागज के रेशों से छपाई में प्रयुक्त स्याही हटाने की औद्योगिक प्रक्रिया को डी–इकिंग कहा जाता है। जिसका आविष्कार जर्मन न्यायविद जस्टिस कलैप्रोथ ने किया था।

कागज रीसाइक्लिंग के लाभ

कागज रीसाइक्लिंग के निम्न लाभ हैं–

1. **निरंतरता** : जंगल कम होते जा रहे हैं और इससे उभरी चिंता से पेड़–पौधों को रोपने की भावना जगी है। पेड़ लगाने और उनकी कटाई के साथ वन्यजीवों, पौधों, मिट्टी और पानी की गुणवत्ता के दीर्घकालीन संरक्षण के प्रयास किए जाते हैं।
2. **पर्यावरणीय प्रभाव** : कागज का प्राथमिक घटक लकड़ी का गूदा है जो पेड़ों से प्राप्त होता है। रीसाइक्लिंग के परिणामस्वरूप कागज के लिए कच्चे माल के रूप में लकड़ी का उपयोग कम हो जाता है जिसका मतलब है वनों का कम क्षरण और अनेक अन्य पर्यावरणीय लाभ।
3. **उत्सर्जन में कमी** : रीसाइक्लिंग से कागज बनाने पर ऊर्जा की कम खपत होती है जिससे वायुमण्डल में कम ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन होता है, चूंकि अपघटन से मीथेन का उत्सर्जन होता है, इसलिए रीसाइक्लिंग से इसमें भी कटौती होती है।
4. **फाइबर की आपूर्ति** : रीसाइकल्ड कागज सुनिश्चित करता है कि कागज बनाने के लिए ताजा रेशों की उपलब्ध आपूर्ति को लम्बे समय तक चलाया जा सके। इससे कार्बन अधिग्रहण होता है जिसका अर्थ है मिट्टी में अधिक कार्बन की आपूर्ति।
5. **जल की खपत** : एकदम नया कागज बनने में पुनर्चक्रण की तुलना में बहुत अधिक पानी की खपत होती है। इसलिए अपशिष्ट कागज के पुनर्चक्रण से पानी की पर्याप्त मात्रा में बचत होती है। पृथ्वी के पर्यावरण को बचाने के लिए कागज की रीसाइक्लिंग आज दुनियाभर में प्रचलित हो रही है।

अतः आज हमें अपनी पृथ्वी को अनुपयोगी सामान को रीसाइकल करके बचाना है और आज हमारे पास इसके लिए समय है। पेपर, प्लास्टिक, कांच, एल्यूमीनियम के डिब्बे कुछ उत्पादों के उदाहरण हैं, जिन्हें बड़ी मात्रा में पुनर्नवीनीकरण या रीसाइकल किया जाता है। इसीलिए हमें इसे बर्बाद नहीं करना चाहिए तभी हम अपनी पृथ्वी को सुरक्षित रख सकते हैं।

नवीकरण ऊर्जा (Renewable Energy)

ऐसी ऊर्जा जिसे भौतिक, रासायनिक या यांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा नवीकृत या पुनः उत्पन्न किया जा सकता है, को नवीकरण ऊर्जा कहा जाता है, जैसे– सौर तथा पवन ऊर्जा, जल, वन व वन्य जीवन से प्राप्त ऊर्जा।

टिप्पणी

नवीकरण ऊर्जा के स्रोत (Sources of Renewable Energy)

वर्तमान में प्रमुख नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत निम्नलिखित हैं–

(1) सौर ऊर्जा (Solar Energy)

(2) वायु ऊर्जा (Wind Energy)

(3) पनबिजली ऊर्जा (Hydro Energy)

(4) ज्वारीय ऊर्जा (Tidal Energy)

(5) भूतापीय ऊर्जा (Geothermal Energy)

(6) बायोमास ऊर्जा (Biomass Energy)

(1) सौर ऊर्जा (Solar Energy): सूर्य का प्रकाश हमारे ग्रह के सबसे प्रचुर और स्वतंत्र रूप से उपलब्ध ऊर्जा संसाधनों में से एक है। एक वर्ष में पृथ्वी की सतह तक पहुंचने वाली सौर ऊर्जा की मात्रा पूरे वर्ष के लिए ग्रह की कुल ऊर्जा आवश्यकताओं से अधिक है। यह प्रदूषण मुक्त है। इसमें सूर्य के प्रकाश को ऊर्जा में बदला जाता है। सौर ऊर्जा का प्रयोग खाना बनाने, पानी गर्म करने, फसल सुखाने व गांवों में विद्युतीकरण करने में किया जाता है।

(2) वायु ऊर्जा (Wind Energy): पवन से ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए पवन चक्कियों का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में ऊर्जा के पुराने साधनों की कमी होती जा रही है तथा वे महंगे भी होते जा रहे हैं। पवन चक्की एक सस्ता तथा उपयोगी शक्ति स्रोत है, जिसके उपयोग से विद्युत उत्पादन किया जाता है।

(3) पनबिजली ऊर्जा (Hydro Energy): नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन के रूप में, हाइड्रो पावर सबसे अधिक व्यावसायिक रूप से विकसित है। पानी से विद्युत उत्पन्न करने हेतु पानी को एक बांध के माध्यम से एकत्रित किया जाता है जो नियंत्रित रूप से टरबाइन चलाएगा और जिससे बिजली पैदा होगी।

(4) ज्वारीय ऊर्जा (Tidal Energy): यह हाइड्रो ऊर्जा का एक और रूप है जो टरबाइन जनरेटर को चलाने के लिए दो बार दैनिक ज्वारीय धाराओं का उपयोग करता है।

(5) भूतापीय ऊर्जा (Geothermal Energy): पृथ्वी की सतह के नीचे प्राकृतिक गर्मी का दोहन करके भूतापीय ऊर्जा का उपयोग सीधे घरों को गर्म करने या बिजली उत्पन्न करने के लिए किया जा सकता है। इसके मुख्य स्रोत प्राकृतिक गर्म पानी के झरने या तालाब हैं।

(6) बायोमास ऊर्जा (Biomass Energy): बायोगैस ऊर्जा नवीकरण ऊर्जा का एक प्रमुख स्रोत है। यह जीव एवं पौधों के अपशिष्टों के अवायवीय निम्नीकरण से उत्पन्न होती है। हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, CO_2, मीथेन एवं CO बायोगैस के संघटक हैं। बायोगैस एक अच्छा घरेलू ईंधन है। गैस उत्पादन के पश्चात बचा हुआ अवशिष्ट भी एक अच्छा खाद होता है। गांवों में घरेलू ऊर्जा की खपत का 75% भाग गोबर गैस संयंत्रों से प्राप्त किया जाता है। बायोगैस के उपयोग से भारतीय किसानों को ईंधन के साथ–साथ खाद की सुविधा भी मिलती है।

टिप्पणी

• नवीकरण ऊर्जा का महत्व

नवीकरण ऊर्जा का महत्व निम्नलिखित कारणों से है–

1. नवीकरण ऊर्जा जीवाश्म ईंधन की तुलना में तीन गुना अधिक रोजगार पैदा करती है।
2. सौर ऊर्जा का प्रयोग घरों तथा सड़कों पर प्रकाश व्यवस्था, पानी गर्म करने, खाना बनाने आदि कार्यों में किया जा सकता है।
3. भारत की तटरेखा विस्तृत है। यहां पर ज्वारीय ऊर्जा का उपयोग किया जा सकता है।
4. भारत एक कृषि बाहुल्य देश है। अतः यहां बायोगैस का उत्पादन एवं उपयोग अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

जैव–विविधता (Bio-Diversity)

जैव–विविधता यानी जीवों की विविधता। संपूर्ण ब्रह्माण्ड में पृथ्वी ही ऐसा ग्रह है जहां जीवन है। इस अर्थ में पृथ्वी एक अनोखा ग्रह है। पृथ्वी बहुत विशाल है, यहां लगभग दस लाख प्रकार के जीवधारी रहते हैं। इन जीवधारियों में मनुष्य ऐसा प्राणी है जिसका स्थान सर्वप्रमुख है। पर्यावरण में कुछ निर्जीव हैं, किन्तु मुख्य अंग, मिट्टी, जल, वायु, तापमान सब एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं।

"जैव विविधता से आशय उस परिवर्तन से है जो आबादी, प्रजातियों, समुदाय और पारिस्थितिक तन्त्र से मिलता है।"

जैव विविधता के अन्तर्गत सभी प्रजातियां तथा पौधे, पशु तथा सूक्ष्म जीव और उनसे सम्बद्ध समस्त प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं। जैव विविधता ही पृथ्वी पर जीवन का आधार है। पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के साथ ही जंतुओं में प्रजातियों के आधार पर विविधता भी विद्यमान है।

विश्व में पाई जाने वाली विभिन्न प्रजातियों का लगभग 40% भाग भारत में निवास करता है। जीव–जन्तुओं की सर्वाधिक विविधता वाले क्षेत्रों में अफ्रीका के बाद भारत का स्थान है। भारत में पर्याप्त वर्षा तथा जलवायु की विविधता के कारण विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां मिलती हैं।

वर्ष 1952 में भारत में वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए वन्य जीव बोर्ड की स्थापना की गई। मानव अस्तित्व की रक्षा के लिए जैव विविधता आवश्यक है। पृथ्वी पर पर्यावरण तथा जैव विविधता की सुरक्षा मानव के हित के लिए बहुत जरूरी है।

जैव–विविधता जीवों की विभिन्न और उनके पारस्परिक क्रियाकलापों का योग है, इसके अन्तर्गत निम्न प्रकार की विविधताएं सम्मिलित की जा सकती हैं–

1. **जीनिक जैव विविधता** : प्राणियों की जीन सम्बन्धी संरचना में अथवा एक ही प्रजाति के अलग–अलग जीवों में जो विविधता होती है उसे 'जीनिक जैव विविधता' कहते हैं।
2. **प्रजातीय जैव विविधता** : विभिन्न प्रकार के पौधों, जन्तुओं, जीवाणुओं और उनके आपस की पारस्परिक अन्तःक्रियाओं में जो विभिन्नता होती है उसे प्रजातीय जैव विविधता कहते हैं।

टिप्पणी

3. पारितान्त्रिक जैव विविधता : किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में मिलने वाले जीव जंतुओं की प्रजातियों की विविधता को जैव विविधता कहते हैं अर्थात पर्यावासों की विविधता जहां पेड़–पौधे, जन्तु तथा सूक्ष्म–जीव या जीवाणु रहते हैं। इन क्षेत्रों में पाये जाने वाले असंख्य प्राणी, हमारे निवास व वस्त्रों के लिए कच्चे माल के साथ हमें भोजन, चारा, ईंधन, औषधियां इत्यादि भी उपलब्ध कराते हैं। जीवन जगत की मात्र 10 से 20 प्रजातियाँ विश्व के लोगों को भोजन उपलब्ध कराती हैं। जबकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि लगभग 20,000 प्रजातियां तृतीय विश्व अर्थात् विकासशील राष्ट्रों के द्वारा औषधियों के रूप में प्रयोग में लाई जाती हैं।

(जैव–विविधता : कुछ तथ्य)

जैव–विविधता से सम्बन्धित मुख्य तथ्य इस प्रकार हैं–

- पृथ्वी पर पाए जाने वाले सजीव घटकों के मध्य विविधता को जैव–विविधता कहते हैं।
- जैव–विविधता को तीन स्तरों आनुवांशिक, प्रजाति और पारितंत्र के रूप में वर्णित किया गया है।
- एक आकलन के अनुसार, करीब 100 से 300 लाख प्रजातियां हमारे ग्रह "पृथ्वी" पर विद्यमान हैं।
- हम सभी भोजन, ईंधन, चारा, रेशा, उर्वरक, औषधि, आवास और अन्य आवश्यकताओं के लिए जैविक संसाधनों पर निर्भर हैं।
- प्रत्येक शताब्दी में 100 से 1000 प्रजातियां प्राकृतिक गतिविधियों के कारण विलुप्त हो गई हैं।
- मानव गतिविधियों के कारण विलोपन की दर 1000 से 10,000 गुना ज्यादा अनुमानित की गई।
- सन् 1600 से अब तक जन्तुओं और उच्च पादपों की 700 प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं।
- जंगलों में 45,000 से भी अधिक पादप प्रजातियां तथा 90,000 से भी अधिक जैव प्रजातियां आलेखित हैं।
- पेड़–पौधों और जीव–जन्तुओं का 10% से भी ज्यादा भाग विलोपन के खतरे से जूझ रहा है।
- खेती में कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग के कारण मोर, गिद्ध और अन्य पक्षी बड़ी कठिनाइयों से जीवित हैं।
- यह अब भी ज्ञात नहीं किया जा सकता है कि देश में कितनी अनजानी प्रजातियां मौजूद हैं।
- प्रजातियों और पारितंत्र की सुरक्षा के लिए संरक्षण रणनीतियां अत्यावश्यक हैं।

विशेषताएं (Characteristics)

- जैविक विषमता प्राकृतिक विविधता का साधन है।
- इसमें अनेक पारिस्थितिक तंत्र सम्मलित होते हैं।

टिप्पणी

- जैविक विषमता का बोध होता है।
- इसमें जीवों की आकृतियों व संरचना को महत्व दिया जाता है।
- जीवधारियों की विषमता पर्यावरण घटकों से होती है।
- प्रत्येक जीवधारी की अपनी प्रजाति होती है।
- जैविक विषमता का कारण पृथ्वी पर भौगोलिक तथा अन्य कारक होते हैं।

भारत की जैव विविधता (Indian's Bio-Diversity)

भारत विश्व के 12 सर्वाधिक घनी जैव विविधता वाले देशों में से एक है। भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल विश्व के भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.4% है, जबकि विश्व में पाए जाने वाले प्राणियों की कुल प्रजातियों में से लगभग 8% प्रजातियां भारत में ही पाई जाती हैं।

वनस्पति जगत (Botany)

- 47,000 पौधों की प्रजातियां, जिनमें से 15,000 प्रजातियां पुष्पीय पौधों की हैं।
- 51 प्रजातियां अनाज और ज्वार–बाजारे की हैं।
- 104 फल प्रजातियां हैं।
- 55 दलहन और शाक–सब्जियों की प्रजातियां हैं।
- 27 मसालों और भोजन को स्वादिष्ट बनाने वाली प्रजातियां हैं।
- 12 तिलहन प्रजातियां हैं।
- चाय/कॉफी/गन्ना, तम्बाकू की विभिन्न प्रजातियां भी हैं।

जन्तु जगत (Zoology)

- 81,000 जीव–जन्तुओं की प्रजातियां हैं।
- 57,000 कीट प्रजातिया हैं।
- 2546 मत्स्य प्रजातियां हैं।
- 204 अभयचर प्रजातियां हैं।
- 428 सरीसृप प्रजातियां हैं।
- 1228 पक्षी प्रजातियां हैं।
- 372 स्तनधारी प्रजातियां हैं।
- 20,000 अकशेरूकी जन्तु जातियां हैं।

भारत में जैव–विविधता का स्वरूप

जैव विविधता	प्रजातियों की सं.
जीव–जन्तु	80,000
पेड़–पौधे	50,000
पुष्पीय पौधे	20,000
कीड़े–मकोड़े	67,000
विभिन्न अपृष्ठवशी	6,050

टिप्पणी

चिड़िया	1,200
मछलियां	1,400
स्तनधारी	350
सरीसृप	420

जैव विविधता ह्रास के कारण

- वृहद् पैमाने पर कृषि और औद्योगिक गतिविधियों के कारण पर्यावासों का विनाश।
- आर्थिक समृद्धि के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन।
- जीवनदायिनी प्रणाली–जल, वायु, मिट्टी आदि का प्रदूषित होना।
- दावानल
- एकल कृषि पद्धतियों और विदेशी प्रजातियों को महत्व देना।
- प्राकृतिक आपदाएं : बाढ़, सूखा, चक्रवात तथा तूफान आदि।

वन्य जीवों का वर्गीकरण (Classification of wild life)

मोटे तौर पर वन्य जीवों का वर्गीकरण निम्नलिखित तीन मुख्य श्रेणियों में किया गया है। इन्हीं में सभी प्रकार के पशु–पक्षी, कीट–पतंग आदि को सम्मलित किया गया है। ये हैं–

1. **स्तनपायी (Mammals)** : ये वे पशु होते हैं जिनकी मादा बच्चों को जन्म देती है, जैसे– शेर, बाघ, चीता, भेडिया, भालू, बिज्जू, लोमड़ी, नील गाय, गीदड़ आदि।
2. **पक्षी (Birds) :** ऐसे जानवर जिनके पंख, दो पैर तथा दो पंख होते हैं और जो अण्डों से पैदा होते हैं, जैसे– मुर्गा, तिलोर, गोडावन, सारस, बाज, उल्लू, कठफोडवा, गौरैया, चमगादड़, हंस और बुलबुल आदि।
3. **सरीसृप (Reptiles)** : इस प्रकार के जानवरों में पर्तदार त्वचा होती है तथा इनकी मादा अण्डे देती है। इनमें कछुआ, सांप, छिपकली तथा मगरमच्छ आते हैं।

जैव विविधता को बनाये रखने की आवश्यकता (Need to Maintain Biodiversity)

जैव विविधता में प्रकृति की अहम भूमिका है। इससे जीवों में पृथ्वी पर जन्म लेने तथा विकास की प्रक्रिया का पता चलता है। इसके साथ ही जैव पदार्थ का भी पता चलता है। जीवों की विविधता को अनेक प्रकार के कारक प्रभावित करते हैं। किसी स्थान के जीवधारी में जीवन का बोध जैविक विषमता से होता है। पारिस्थितिकी में जैविक विषमता की अहम भूमिका होती है।

जैव विविधता को खतरे (Threto to Biodiversity)

जैव विविधता को होने वाले खतरों का वर्णन निम्न प्रकार से है–

(क) आवास विलुप्तता तथा खण्डन : विश्व भर में उष्ण कटिबन्धीय वनों तथा आर्द्र क्षेत्रों एवं अन्य जैविक रूप से समृद्ध पारिस्थितिक तन्त्रों का विनाश जैव

विविधता की विलुप्ति का मुख्य कारण है। जब मनुष्य वृक्षों की कटाई, आर्द्र क्षेत्रों की भराई, घास के मैदानों की चराई–जुताई कर देते हैं अथवा वनों को जला देते हैं तो प्रजातियों के प्राकृतिक आवास परिवर्तित अथवा नष्ट हो जाते हैं।

टिप्पणी

(ख) विक्षोभ तथा प्रदूषण : वृक्षों का गिरना, कीटों द्वारा पत्तों का गिराना तथा आग लगना ऐसे प्राकृतिक विक्षोभ हैं जो समुदायों को प्रभावित करते हैं। मानव द्वारा आग का अधिक प्रयोग समुदाय की प्रजाति समृद्धता को परिवर्तित कर सकता है। प्रदूषण संवेदनशील प्रजातियों की जनसंख्या में कमी कर सकता है।

वन्य जीव संरक्षण हेतु व्यावहारिक सुझाव (Practical Suggestions for wild life Conservation)

(क) राष्ट्रीय उद्यान और वन्य अभ्यारण्य की संख्या तथा निर्धारित क्षेत्रफल में वृद्धि कर वन्य जीवों के संरक्षण में रुचि लेनी चाहिए।

(ख) अवैध शिकार, सुरक्षा क्षेत्र में घरेलू जानवरों की चराई पर और अधिक नियंत्रण तथा रोक लगानी चाहिए।

(ग) दुर्लभ वन्य जीवों की रक्षा हेतु विशेष प्रयोजनार्थ बनाए जाने चाहिए।

(घ) पर्यावरण की शिक्षा के कार्यक्रमों में "वन्य जीव" को भी सम्मिलित करते हुए उसके बारे में अधिक से अधिक जानकारी बच्चों व जनसाधारण को देने का कार्य करना चाहिए।

रियो–घोषणापत्र (Rio-Declaration)

पृथ्वी सम्मेलन (1992) रियो–डे–जेनेरियो में जैव विविधता पर एक सम्मेलन हुआ। इसमें निम्नलिखित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए घोषणा–पत्र प्रस्तुत किया गया जिसे रियो–घोषणा पत्र कहते हैं–

(क) जैव विविधता का संरक्षण

(ख) जैव विविधता का सतत प्रयोग

(ग) जेनेटिक स्रोतों के प्रयोग से उत्पन्न लाभों का सही व समान बंटवारा।

भारत में जैव विविधता संरक्षण

भारत कृषि पादपों से सम्बन्धित 320 जंगलों व 167 कृषि योग्य प्रजातियों का घर है। यह पशु प्रजातियों, फल पौधों, मसाले और बांस आदि की विविधता का केंद्र है।

जैव विविधता का संरक्षण

इन सीटू	एक्स सीटू	
संरक्षित क्षेत्र		
पवित्र वन व पवित्र झीलें	जैव मंडल रिजर्व	राष्ट्रीय पार्क व अन्य जीव अभ्यारण्य
	पृथ्वी	समुद्र
पवित्र पौधे और गृहबाग	बीज बैंक और पुलिन व जीन के कायोनिजेवेशन	बोटेनिकल बाग चिड़ियाघर व तालाब

टिप्पणी

जैव विविधता को संरक्षित करने के लाभ (Advantages of Conerving Biodiversity)

जैव विविधता को संरक्षित करने के लाभ निम्न हैं–

1. आचरण एवं नैतिक मूल्यों का अनुरक्षण करना।
2. मनोरंजन एवं सौन्दर्यानुभूति मूल्यों को बनाए रखना।
3. भोजन के स्रोतों, पदार्थों के उपयोग तथा शिक्षा के उपयोग में सहायक।
4. जलवायु व पारिस्थितिकी तंत्र की सहायता से पर्यावरण का अनुरक्षण करना।
5. जीवमण्डल का संरक्षण तथा अनुरक्षण किया जाता है।
6. विश्व की क्षेत्रीय जलवायु की भूमिका का निर्धारण होता है।
7. इससे पर्यावरण परिवर्तन के संकेत मिलते हैं।
8. प्राकृतिक संकटों, भूकम्प, बाढ़ तथा अन्य भौतिक प्रकोपों के संरक्षण में सहायता मिलती है–
   - पारिस्थितिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए।
   - राष्ट्रीय आनुवांशिकता को बनाये रखने के लिए।
   - व्यक्तियों की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए।
   - आचरण और नैतिक मूल्यों को बनाये रखने के लिए।
   - सम्पूर्ण पर्यावरण को संजोए रखने के लिए।
   - स्वयं को संकटों से बचाए रखने के लिए।
   - पर्यावरण के परिवर्तनों के संकेतों को समझने के लिए।

सरकारी प्रयास (Government Efforts)

जैव विविधता संरक्षण के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न योजनायें, परियोजनायें चलायी गई हैं। वन नीति, वन्य जीव संरक्षण अधिनियम (1972), वन्य जीव संरक्षण नीति (2002), वन्य जीव संरक्षण अधिनियम (1972), वन्य जीव संरक्षण नीति (2002), जैव विविधता संरक्षण अधिनियम (2002), पेड़–पौधों की विभिन्न प्रजातियां और कृषक अधिकार अधिनियम (2001), बौद्धिक सम्पदा अधिकार सुधार अधिनियम (2004) आदि नियम–अधिनियम बनाये गये हैं। सरकारी स्तर पर ग्रीन फाउन्डेशन कंजरवेशन सेन्टर, द वाइल्ड लाइफ कंजरवेशन सोसाइटी, कोडाइल बैंक, स्नेक पार्क चेन्नई जैसे संगठन कार्यरत हैं।

राष्ट्रीय स्तर

- **जैव विविधता अधिनियम, 2002** : इस अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण, चेन्नई का गठन किया गया जो इस अधिनियम के क्रियान्वयन हेतु उत्तरदायी हैं। इसका उद्देश्य भारत की समृद्ध जैव विविधता के ज्ञान को संरक्षित कर वर्तमान और भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए लाभ वितरण की प्रक्रिया को सुनिश्चित करना है।
- **जैव विविधता संरक्षण योजना** : इसके प्रमुख दो उपघटक हैं– जैव विविधता और जैव सुरक्षा।

- जैव विविधता के अन्तर्गत जैव विविधता के सम्बन्ध में आयोजित गतिविधियां सम्मिलित हैं।
- जैव सुरक्षा में आनुवांशिकी अभियांत्रिकी मूल्यांकन समिति कार्ययोजना जैव सुरक्षा प्रोटोकॉल आदि से सम्बन्धित क्रियाकलाप सम्मिलित हैं।
- पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 2000–2004 में राष्ट्रीय जैव विविधता कार्य–नीति और कार्य योजना (NBSAP) से सम्बन्धित एक परियोजना का क्रियान्वयन क्रिया, परिणामस्वरूप राष्ट्रीय जैव विविधता कार्य–योजना बनायी गई।

अंतर्राष्ट्रीय प्रयास

- **जैव विविधता अभिसमय** : 1992 में रियो–डी–जेनेरियो में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन के अन्तर्गत जैव विविधता अभिसमय को अपनाया गया। इसमें जैव विविधता से सम्बन्धित समस्त पहलुओं को सम्मिलित किया गया। इसमें मुख्य पक्ष अग्रलिखित हैं–
  - कार्टाजेना जैव सुरक्षा प्रोटोकॉल : जैव तकनीकी की पहुंच और हस्तांतरण तथा जैव–तकनीकी की सुरक्षा को बढ़ावा।
  - नगोया प्रोटोकॉल : विकास के साथ–साथ लोगों का जैव–विविधता संरक्षण में योगदान बढ़ाना।
  - आईपी लक्ष्य : जैव विविधता की अद्यतन रणनीतिक योजना के तहत सम्मिलित मध्य/दीर्घावधि योजना जिसे 2050 तक एवं लघु अवधि योजना जिसे 2020 तक प्राप्त करने का लक्ष्य है। लघु अवधि योजना के 20 महत्वाकांक्षी लक्ष्यों को सम्मिलित रूप से आईपी लक्ष्य कहा जाता है।

भारत में जर्मप्लाज्म बैंक के मुख्य केंद्र–

- राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो (National Bureau of Plant genetic Resource (NBPGR) New Delhi.)
- औषधीय व सुगन्धित पादप केन्द्र (Central Institute of Medical and Aromatic Plants, (CIMPAP) Lucknow.)
- वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून (Forest Research Institute, FRI, Dehradun)
- केन्द्रीय चावल अनुसन्धान संस्थान (कटक) (Central rice Research Institute–CRRI)
- केन्द्रीय आलू अनुसन्धान संस्थान (शिमला) (Central Potato Research Institute – CPRI)
- राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान (लखनऊ) (National Botanical Research Institute–NBRI)
- केन्द्रीय वनस्पति उद्यान (हावड़ा) (Central Botanic Garden.)

प्राकृतिक सम्पदा अपार है, इसे प्रकृति ने जीवित–जगत के हित के लिए ही निर्मित किया है, लेकिन इसको समझदारी व मितव्ययिता से प्रयोग में लाना अति आवश्यक है तभी हम स्वयं इसका आनंद ले पाएंगे तथा अपनी भावी पीढ़ियों को इस

टिप्पणी

सुंदर अद्‌भुत, अप्रतिम प्रकृति को विरासत में प्रदान कर पाएंगे। इस वसुंधरा पर जीवन यापन का, बसने का, विकसित करने का अधिकार प्रत्येक जीव व प्रजाति का है। इसी तथ्य के साथ पृथ्वी पर जीवन की गुणवत्ता दीर्घकाल तक कायम रखी जा सकती है तथा सभी का विकास संभव हो पाएगा।

अपनी प्रगति जांचिए

1. किस प्रसिद्ध जीव–रसायन शास्त्री के विचार के अनुसार हमें प्रकृति से बहुत–कुछ सीखना होगा?

   (क) ब्रैंटलैंड (ख) फ्रेड्रिक वेस्टर

   (ग) रेने दुबोई (घ) जेम्स चैडविक

2. संयुक्त राष्ट्र संघ का मानव विकास संबंधी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन वर्ष 1972 में कहां आयोजित किया गया था?

   (क) स्टॉकहोम में (ख) न्यूयॉर्क में

   (ग) लंदन में (घ) नई दिल्ली में

2.3 सतत विकास : मानवीय व्यवहार हेतु निहितार्थ

जल संरक्षण का अर्थ पानी की बर्बादी तथा प्रदूषण को रोकने से है। जल संरक्षण एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि वर्षा का जल हर समय उपलब्ध नहीं रहता। अतः पानी की कमी को पूरा करने के लिये पानी का संरक्षण आवश्यक है। एक अनुमान के अनुसार विश्व में 350 मिलियन क्यूबिक मील पानी है। इसमें से 97 प्रतिशत भाग समुद्र से घिरा हुआ है। पृथ्वी पर जल तीन स्वरूपों में उपलब्ध होता है। तरल जल– समुद्र, नदियाँ, झरने, तालाब, कुएँ आदि। ठोस जल (बर्फ)– पहाड़ों तथा ध्रुवों पर जमी बर्फ। वाष्प (भाप)– बादलों में भाप।

परिभाषा

जल संरक्षण से तात्पर्य जल संसाधनों के संरक्षण, नियंत्रण और विकास से है, दोनों सतही और भूजल तथा प्रदूषण की रोकथाम।

जल संरक्षण जल संसाधनों का संरक्षण, नियंत्रण और प्रबंधन/जल संरक्षण कार्यशील पर्यावरण प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण पहलू है।

जल संग्रह के उपाय

(1) प्रत्येक गाँव/बस्ती में एक तालाब होना आवश्यक है, जिसमें जल संग्रह हो सके।

(2) नदियों पर छोटे–छोटे बाँध व जलाशय बनाए जाएँ ताकि बाँध में पानी एकत्र हो सके तथा आवश्यकतानुसार उपयोग में लाया जा सके।

(3) नदियों में प्रदूषित जल को डालने से पूर्व उन्हें साफ करना जरूरी है ताकि नदियों का जल साफ सुथरा बना रहे।

(4) अधिक से अधिक वृक्षारोपण किया जाए ताकि ये वृक्ष एक तरफ तो पर्यावरण को नमी पहुंचाएं तथा दूसरी ओर वर्षा करने में सहायता करें।

(5) जल को व्यर्थ में बर्बाद न करें और न ही प्रदूषित करें।

(6) भवनों, सार्वजनिक स्थलों, सरकारी भवनों में जल संरक्षण के लिये व्यवस्था की जाए।

टिप्पणी

जल संग्रहण : एक सामूहिक उत्तरदायित्व

राष्ट्रीय विकास में जल की महत्ता को देखते हुए 'जल संरक्षण' को अपनी सर्वोच्च प्राथमिकता मानते हुए हमें निम्नलिखित आसान उपायों को करने के लिए जनजागरण अभियान चलाकर जल संरक्षण सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए–

(1) बच्चों, महिलाओं, पुरुषों को जल संरक्षण के महत्व व आवश्यकता से अवगत कराना चाहिए।

(2) बाल्टी से स्नान/शौच आदि की आदत डालनी चाहिए।

(3) गाँवों में तालाबों को गहरा करके वर्षा का जल संचित करना चाहिए।

(4) नगरों/महानगरों में घरों की नालियों का पानी गड्ढ़े में एकत्र करके इसे सिंचाई के काम में लेना चाहिए।

(5) घर की छत पर वर्षा जल का भंडारण करके इसे काम में लिया जाए।

(6) घरों, सार्वजनिक स्थानों पर नल की टोटियों की सुरक्षा की जाए ताकि पानी की बर्बादी को रोका जा सके।

(7) समुद्री खारे जल को पेयजल व घरेलू उपयोग योग्य बनाने के लिये समुचित प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाए।

(8) गंगा–यमुना जैसी सदानीरा नदियों की नियमित सफाई सुनिश्चित की जाए तथा इन्हें प्रदूषण मुक्त बनाया जाए।

(9) वृक्षारोपण को हर स्तर पर प्रोत्साहित किया जाए।

निःसंदेह उपर्युक्त उपायों पर अमल करने से जल संरक्षण अभियान को आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी तथा जल संकट से निपटने में यह एक सकारात्मक पहल होगी। किसी ने ठीक ही कहा है–

जल संरक्षण कीजिए, जल जीवन का सार।
जल न रहे यदि जगत में, जीवन है बेकार।।

यद्यपि उपर्युक्त उपाय पर्याप्त नहीं हैं तथापि इनके द्वारा जल संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल अवश्य की जा सकती है। यदि समाज का हर एक व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी निभाने लगे तो जल संरक्षण को बल मिलेगा। अतः समाज के एक जागरूक अंग होने के नाते हम सबका कर्तव्य है कि जल संरक्षण के हर स्तर को प्रोत्साहित करें ताकि वर्तमान जल संकट की समस्या का समाधान संभव हो सके।

जल संरक्षण के उद्देश्य

भारत एक विकासशील देश है, जिसके क्षेत्र विशाल हैं, जटिल स्थलाकृति है, परिवर्तनशील जलवायु है और एक बड़ी आबादी है। देश में अवक्षेपण तथा प्रवाह

टिप्पणी

असमान रूप से वितरित है। जल्दी–जल्दी आने वाली बाढ़, सूखा तथा अस्थिर कृषि उत्पादन हमेशा से एक गम्भीर समस्या रही है। भारतीय मौसम विभाग के अनुसार भारत में वर्षा के केवल चालीस दिन होते हैं और फिर लम्बी अवधि के लिए शुष्क मौसम होता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसका आर्थिक विकास कृषि से जुड़ा हुआ है। बढ़ती हुई जनसंख्या और परिणामस्वरूप खाद्य–उत्पादन में वृद्धि, कृषि क्षेत्र और सिंचाई क्षेत्र में वृद्धि के कारण जल का अधिक उपयोग हो रहा है। जल संसाधनों के अत्यधिक उपयोग के कारण, देश के कई भागों में पानी की कमी हो रही है।

संरक्षण तकनीक

भारत में जल का प्राथमिक (मुख्य) स्रोत वर्षा है। दक्षिण–पश्चिम और उत्तर–पूर्व मानसून/वर्षा की मात्रा हमारे देश के विभिन्न भागों में अलग–अलग पाई जाती है। इसलिए सतह पर प्रवाह के संरक्षण की आवश्यकता है। सतही जल के संरक्षण की तकनीकें इस प्रकार हैं–

भण्डारण द्वारा सतह के पानी का संरक्षण : विभिन्न जलाशयों का निर्माण करके उनमें जल संग्रह करना जल संसाधन का सबसे पुराना उपाय है। भंडारण की सम्भावना एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पानी की उपलब्धता और स्थलाकृतिक दशाओं पर निर्भर करती है। इस भंडारण के लिए वातावरण के अनुकूल नीति विकसित करने के लिए पर्यावरणीय प्रभाव की जांच करने की आवश्यकता है।

वर्षा के जल का संरक्षण : प्राचीन काल से हमारे देश के विभिन्न भागों में वर्षा जल का संरक्षण करके कृषि के लिए प्रयोग में लाया जाता रहा है। यदि एक बड़े क्षेत्र में विरल वर्षा संग्रहित की जाए तो उससे काफी मात्रा में जल प्राप्त हो सकता है। समोच्च खेती (Contour Farming) एक उदाहरण है ऐसी उपज और तकनीक का, जिसमें बहुत साधारण स्तर पर पानी और नमी को नियंत्रित किया जा सकता है। प्रायः इसमें समोच्च के कटाव के साथ रखी चट्टानों की कतारें शामिल हैं। इन बाधाओं द्वारा रोका गया जल प्रवाह भी मिट्टी को रोकने में सहायता करता है, जिससे कि कोमल ढलानों के लिए कटाव नियंत्रण का तरीका बन जाता है।

जल संरक्षण एक अनिवार्य आवश्यकता

संसार के प्रत्येक प्राणी का जीवन आधार जल ही है। शायद ही ऐसा कोई प्राणी हो जिसे जल की आवश्यकता न हो। जल हमें समुद्र, नदियों, तालाबों, झीलों, वर्षा एवं भूजल के माध्यम से प्राप्त होता है। गर्म हवाओं के चलने से समुद्र, नदियों, झीलों, तालाबों का जल बाधित होकर ठंडे स्थानों की ओर चलता है। जहाँ पर न्यून तापमान के कारण संघनित होकर वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिरता है। जबकि पहाड़ों पर और भी कम तापमान होने के कारण जल बर्फ के रूप में जम जाता है, जो कि गर्मी के दिनों में पिघलकर नदियों में चला जाता है।

मानव अपने स्वास्थ्य, सुविधा, दिखावा व विलासिता को दिखाने के लिए अमूल्य जल की बर्बादी करने से नहीं चूकता है। पानी का इस्तेमाल करते हुए हम पानी की बचत के बारे में जरा भी नहीं सोचते हैं। परिणामस्वरूप अधिकांश जगहों पर जल संकट की स्थिति पैदा हो चुकी है। यदि हम अपनी आदतों में थोड़ा सा भी बदलाव कर

लें तो पानी की बर्बादी को रोका जा सकता है। बस आवश्यकता है दृढ़संकल्प करने की तथा उस पर गंभीरता से अमल करने की, क्योंकि जल है तो हमारा भविष्य है। इसलिए यदि हम पानी की बचत करते हैं तो यह भी जल संग्रह का ही एक रूप है। एक अध्ययन से पता चला है कि मानव यदि अपनी आदतों को बदल ले तो 80 प्रतिशत से भी अधिक पानी की बचत हो सकती है। यदि मानव सब नहीं कुछ ही आदत बदल ले तो भी 15 प्रतिशत जल की बचत संभव है।

बूँद–बूँद से बड़ी बचत

(1) एक टपकते नल से प्रति सेकेंड एक बूँद बर्बाद होने से एक माह में 760 लीटर पानी व्यर्थ में ही बह जाता है।

(2) सीधे नल से नहाने पर 90 लीटर पानी खर्च होता है।

(3) हाथ धोकर नल ठीक प्रकार से न बंद करने पर एक मिनट में 30 बूँद पानी तथा वर्ष में 46 हजार लीटर पानी व्यर्थ चला जाता है।

(4) पाइप से बगीचे की सिंचाई करने पर पानी की भारी बर्बादी होती है।

(5) प्रेशर से कार धोने, जल की धार से सब्जियाँ धोने में पानी बर्बाद होता है।

(6) खेतों में नहर या पाइप से सिंचाई करने में अधिक पानी लगता है।

(7) टॉयलेट और यूरिनल में लोग काफी पानी बर्बाद करते हैं।

(8) सार्वजनिक नलों से बहता हुआ पानी पर्याप्त मात्रा में बर्बाद होता है।

(9) छोटे गिलासों में पानी पीने से पानी की बचत होती है।

(10) लॉन, पौधों आदि में शाम को ही पानी दें।

(11) पर्याप्त कपड़े होने पर ही वाशिंग मशीन का उपयोग करें।

(12) सब्जियाँ किसी टब या बर्तन में धोएं

(13) फ्लश टैंक में व्यर्थ पानी का उपयोग करें।

(14) वाहनों को बाल्टी में पानी लेकर धोएं।

(15) शॉवर के बजाए बाल्टी व मग से नहाएँ।

(16) बर्फ के टुकड़ों को किसी पौधे या लॉन में डाल दें।

इस प्रकार इन उपायों से जल की बचत हो सकती है। बस आवश्यकता है इन पर अमल करने की।

वायु ऊर्जा (Wind Energy)

बहती वायु से उत्पन्न की गई ऊर्जा को पवन ऊर्जा कहते हैं। वायु एक नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत है। पवन ऊर्जा बनाने के लिए हवादार जगहों पर पवन चक्कियों को लगाया जाता है जिनके द्वारा वायु की गतिज ऊर्जा यान्त्रिक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। इस यान्त्रिक ऊर्जा को जनित्र की मदद से विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है।

पवन ऊर्जा का आशय वायु से गतिज ऊर्जा को लेकर उसे उपयोगी यांत्रिकी अथवा विद्युत ऊर्जा के रूप में परिवर्तित करना है।

टिप्पणी

इतिहास

इसका उपयोग पहली बार स्कॉटलैंड में जुलाई 1887 में किया गया जिससे विद्युत बनाई गई। इसके बाद इसका उपयोग वहां की एक कंपनी ने किया लेकिन यह केवल कुछ ऊर्जा बनाने के लिए ही कार्य में आता था। इसके उपरांत इसे और भी बड़ा बनाया और इससे बैटरी को आवेशित कर बाद के उपयोग के लिए बनाया गया था, जिससे रात में इसका उपयोग किया जा सके। विद्युत की अन्य विधि से इसमें लागत कम लगने के कारण भी इसका उपयोग किया जाने लगा परन्तु इसका उपयोग कुछ कम ऊर्जा बनाने के लिए ही किया जा सकता है। इसलिए उस समय एक निश्चित स्थान के लिए इसका उपयोग किया जा रहा था।

मूल सिद्धान्त

सूर्य प्रति सेकेण्ड पचास लाख टन पदार्थ को ऊर्जा में परिवर्तित करता है। इस ऊर्जा का जो थोड़ा सा अंश पृथ्वी पर पहुँचता है वह वहाँ कई रूपों में प्राप्त होता है। सौर विकिरण सर्वप्रथम पृथ्वी की सतह या भूपृष्ठ द्वारा अवशोषित किया जाता है तत्पश्चात वह विभिन्न रूपों में आसपास के वायुमंडल में स्थानांतरित हो जाता है। चूंकि पृथ्वी की सतह एक समान या समतल नहीं है अतः अवशोषित ऊर्जा की मात्रा भी स्थान व समय के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है। इसके परिणामस्वरूप तापक्रम घनत्व तथा दबाव संबंधी विभिन्नताएं उत्पन्न होती हैं, जो फिर ऐसे बलों में उत्पन्न करती हैं जो वायु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवाहित होने के लिए विवश कर देती है। विस्तारित वायु जो गर्म होने से हल्की हो जाती है, ऊपर की ओर उठती है तथा ऊपर की ठण्डी वायु नीचे आकर उसका स्थान ले लेती है। इसके फलस्वरूप वायुमंडल में अर्द्ध स्थायी पैटर्न उत्पन्न हो जाते हैं। वायु का चलन सतह के समान गर्म होने के कारण होता है और रात में उलटा होता है। पानी के ऊपर की हवा गर्म होती है और उठती है तथा उसकी जगह जमीन से ठंडी हवा जाती है।

लाभ

वायु ऊर्जा के निम्न लाभ हैं–

(1) यह स्वच्छ होती है : वायु का ऊर्जा उत्पादन करने हेतु उपयोग करने में न तो किसी भी प्रकार के प्रदूषण की समस्या या अम्लीय वर्षा की समस्या या खानों के अफवाह या विशाक्त प्रदूषक पदार्थों जैसी कोई समस्या है और न ही इसके कारण हेक्टेयरों तक फैली हुई भूमि क्षतिग्रस्त होती है। वास्तव में मानव की पर्यावरणीय आवश्यकताओं की पूर्ण आपूर्ति पवन ऊर्जा रूपांतरण द्वारा हो जाती है। कार्बन डाई ऑक्साइड के उत्सर्जन को कम करने के लिए उपलब्ध कुछेक तकनीकी विकल्पों में पवन ऊर्जा भी एक है चूंकि इसमें गैसीय प्रदूषकों के उत्सर्जन जैसी कोई समस्या नहीं है जो कि ग्रीन हाउस प्रभाव को उत्पन्न करके पर्यावरणीय समस्याओं को बढ़ाए। अतः विद्युत उत्पादन हेतु पवन ऊर्जा ही सबसे अधिक स्वीकृत स्रोतों में से एक है। यह नवीकरण योग्य ऊर्जा ही विश्वव्यापी उष्णता तथा अम्लीय वर्षा से संघर्ष कर सकती है।

(2) इसकी आपूर्ति असीमित है : पवन अथवा वायु सुगमता से उपलब्ध है तथा कभी न समाप्त होने वाली है जबकि जीवाश्मीय ईंधन सीमित है। हालांकि और अधिक जीवाश्मीय ईंधनों की खोज की दिशा में सतत कार्य चल रहा है परन्तु विश्व के

टिप्पणी

औद्योगिक तथा विकासशील देशों की निरंतर बढ़ती ईंधन की आवश्यकता लिखित रूप से भविष्य में इन उच्च श्रेणी के ईंधन स्रोतों को समाप्त कर देगी। इस समस्या से निपटने के लिए पवन ऊर्जा ही एकमात्र संभावित विकल्प है जो कि नवीकृत भी होता रहता है। सूर्य की विकिरित ऊर्जा से पवन ऊर्जा सतत रूप से नवीकृत होती रहती है और इसका दोहन सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

(3) यह असामान्य है : पवन निःशुल्क तथा प्रचुरता से उपलब्ध है, सरलता से प्राप्य है, समाप्त होने वाली नहीं है तथा इसकी आपूर्ति भी निर्बाध है। पवन अथवा वायु पर किसी भी देश या वाणिज्यिक प्रतिष्ठान का एकाधिकार नहीं है जैसा कि जीवाश्मीय ईंधनों तथा तेल गैस या लाभिक ईंधनों जैसे यूरेनियम आदि के साथ है। चूंकि ऊर्जा की मांग सतत रूप से बढ़ती ही जाएगी इसलिए कच्चे तेल के बढ़ते हुए मूल्यों के साथ लिखित रूप से पवन ऊर्जा ही एकमात्र आकर्षक विकल्प प्रस्तुत करती है।

(4) यह सुरक्षित है : पवन ऊर्जा संयंत्रों का परिचालन सुरक्षित है। आधुनिक व उन्नत माइक्रोप्रोसेसर्स के प्रयोग से समस्त संयंत्र पूर्णतः स्वचालित हो गए हैं तथा संयंत्र के परिचालन के लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता भी नहीं रह गई है। निर्माण तथा रखरखाव की दृष्टि से भी यह पूर्णतः सुरक्षित है। यह बात तापीय ऊर्जा संयंत्रों अथवा लाभकीय ऊर्जा संयंत्रों में प्रयुक्त प्रभावी सुरक्षा यांत्रिकी से यहां तक संभव हो गई है कि इन्हें सार्वजनिक स्थलों पर भी थोड़ी सी क्षति अथवा बिना किसी क्षति के स्थापित किया जा सकता है।

(5) पवन प्रणाली के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता नहीं : पवन चालित प्रणाली के लिए तुलनात्मक रूप से कम स्थान की आवश्यकता होती है और इसे हर उस स्थान पर जहां भी वायु की स्थिति अनुकूल हो, लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए इसे पहाड़ी के शिखर पर समतल सपाट भू–प्रदेश वनों तथा मरुस्थलों तक में लगाया जा सकता है। संयंत्र को अपतटीय क्षेत्रों तथा छिछले पानी में लगाया जा सकता है। यदि पवन संयंत्रों को कृषि भूमि में भी लगाया जाता है तो मीनार के आधार स्थान तक खेती की जा सकती है।

(6) इनका शीघ्र निर्माण किया जा सकता है : पवन चक्की शृंखलाओं में अनेक अपेक्षाकृत छोटी–छोटी इकाइयां होती हैं। इन्हें सरलता व शीघ्रता से समूहों में बनाया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप इनकी योजना बनाने में लचीलापन आ जाता है। किसी भी पवन चक्की फार्म के पूरा होने के पहले ही निवेशित पूंजी शीघ्रता से वापस मिलने लगती है। मांग के बढ़ने के साथ–साथ जब भी आवश्यकता अनुभव हो, नयी इकाइयां जोड़ी जा सकती हैं। इन्हें एक ही स्थान पर समूह के रूप में या सम्पूर्ण देश के क्षेत्रों में बिखरा कर लगाया जा सकता है।

(7) इनमें रखरखाव की कम आवश्यकता होती है : चूंकि ये पवन चालित संयंत्र सरल व परिचालन में आसान होते हैं। अतः अन्य विकल्पों की तुलना में इनके रखरखाव की आवश्यकता कम होती है।

(8) पवन ऊर्जा कम खर्चीली है : चूंकि वायु बिना मूल्य उपलब्ध है इसलिए इसकी ईंधन के मूल्यों में वृद्धि के साथ मुद्रास्फीति का भी कोई जोखिम नहीं है। इस प्रकार पवन ऊर्जा धन तथा ईंधन दोनों ही रूपों में बचत करती है। जहां वायु के स्रोत केन्द्रित

टिप्पणी

हैं वहाँ पवन ऊर्जा तेल चालित तथा लाभकीय शक्ति से उत्पादित विद्युत को कड़ी चुनौती दे रही है क्योंकि परम्परागत ऊर्जा स्रोत के विकास की लागत जहां दिन प्रतिदिन बढ़ रही है, वहीं पवन ऊर्जा की लागत तीव्रता से गिर रही है। वायु चालित टरबाइनों की दिनों दिन बढ़ती हुई विश्वसनीयता से यह सिद्ध होता है कि निकट भविष्य में अधिक से अधिक क्षेत्र ऊर्जा के अन्य रूपों की अपेक्षा पवन ऊर्जा को सबसे कम व्यय वाले आकर्षक विकास विकल्प के रूप में अधिक महत्व प्रदान करेंगे।

पवन ऊर्जा के उपयोग की सीमाएं

पवन चालित संयंत्र महँगे हैं और केवल वहीं लगाए जा सकते हैं जहां आवश्यकतानुसार वायु उपलब्ध हो। उच्च पवन गति वाले क्षेत्र पहुँच से बाहर हो सकते हैं अथवा उच्च बोल्ट क्षमता वाली पारेषण लाइनों से दूर स्थित हो सकते हैं जिससे पवन ऊर्जा के संचार में समस्या हो सकती है। इसके साथ ही विद्युत की आवश्यकता समय के अनुसार, घटती बढ़ती रहती है तथा विद्युत उत्पादन की मांग को चक्र के अनुसार समायोजित करना होता है। पवन शक्ति की मात्रा या गति से अचानक परिवर्तन हो सकते हैं। यह भी संभव है कि मांग या आवश्यकता के समय यह उपलब्ध ही न हो। अतः सतत रूप से एक ही मात्रा में उपलब्ध ही न हो तथा अविश्वसनीय आपूर्ति के कारण पवन ऊर्जा की व्यावहारिक असुविधा ने इसके उपयोग को उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित कर दिया है जहां या तो विद्युत की सतत आपूर्ति की आवश्यकता नहीं है या आवश्यकतानुरूप आपूर्ति हेतु एक अन्य स्थायी ऊर्जा विकल्प उपलब्ध है। विद्युत ऊर्जा का भंडारण कठिन एवं सहज भी है इसलिए पवन ऊर्जा का उपयोग किसी अन्य प्रकार की ऊर्जा के साथ–साथ अथवा गैर विद्युत भण्डारण के साथ किया जा सकता है। पवन ऊर्जा का उपयोग जलविद्युत ऊर्जा जनित्री के साथ करना अधिक लाभप्रद है क्योंकि जल का उपयोग ऊर्जा भंडारण के स्रोत के रूप में किया जा सकता है और भूमिगत संपीड़ित वायु के भंडारण का उपयोग एक अन्य विकल्प है।

पर्यावरणीय समस्याएं

ये समस्याएं निम्नलिखित हैं–

विद्युत चुम्बकीय व्यवधान : पवन उत्पादक संयंत्र विद्युत चुंबकीय संकेत वातावरण में प्रसारित करते हैं। क्षैतिज अक्ष वाले पवन चालित टर्बाइनों के घूमते हुए फलक दूरदर्शन संकेतों के दृश्य अंश विरूपित करके निकटवर्ती क्षेत्रों में व्यवधान उत्पन्न कर सकते हैं। संयंत्रों से दूरी बढ़ने के साथ–साथ यह व्यतिकरण कम हो सकता है फिर भी यह परा उच्च आकृति (यू एच एफ) चैनलों को कई किलोमीटर की दूरी पर भी प्रभावित कर सकता है। अगर ब्लेड स्थिर भी हो तो भी वायु में प्रसारित संकेत बिम्ब (घोस्ट इमेज) उत्पन्न कर सकते हैं। इस समस्या को समुचित स्थल चयन तथा सूक्ष्म तरंग (माइक्रोवेब) संपर्क के बीच दृष्टि रेखा को बदल कर तथा संयंत्रों को प्रसारण केन्द्रों से दूर लगाकर किया जा सकता है।

शोर : अनेक विकसित देशों में शोर की समस्या को पवन ऊर्जा के विरुद्ध हथियार के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पवन चालित संयंत्र से शोर उत्पन्न होने के दो प्रमुख स्रोत हैं– यांत्रिकी शोर जो कि घूमते हुए यांत्रिक एवं वैद्युतिक घटकों से उत्पन्न होता है और जिसे उचित गियर प्रणाली या ध्वनिरोधक आच्छकपल लगाकर कम किया जा

सकता है। दूसरा कारण है सीटी जैसी वह आवाज जो फलकी के ऊपर वायु के प्रवाहित होने से उत्पन्न वायुगतिकीय शोर है जिसकी अलग–अलग आवृत्तियां होती हैं।

टिप्पणी

वन्य जीव : अनेक प्रकृति प्रेमियों या क्लबों की यह आशंका है कि पवन चालित संयंत्रों की उपस्थिति प्रवासी पक्षियों तथा सामान्य पक्षियों को भयभीत करती है परन्तु आंकड़ों से यह अब सिद्ध हो चुका है कि पक्षी टकराने की घटनाएं निचली उड़ान के स्तर पर ही होती हैं और ऐसे पक्षियों की संख्या बहुत ही कम होती है।

सौंदर्य बोध : निस्संदेह वायु चालित टर्बाइनों का प्राकृतिक दृश्यावली पर निश्चित रूप से कुछ दुष्प्रभाव पड़ता है और यह दृश्यावली प्रदूषण को जन्म देती है। जब बड़ी–बड़ी ऊंची मीनारें खड़ी की जाती हैं तो वे निश्चित रूप से प्राकृतिक दृश्यवाली की सुरम्यता को प्रभावित करती हैं। विकसित देश इस दिशा में अधिक जागरूक हैं जबकि विकासशील देशों में अधिकतर इसे प्रगति का चिह्न माना जा सकता है। इन सबके अतिरिक्त कम ऊँचाई पर वायुयान संचालन, रडार प्रसारणों तथा संचार के अन्य माध्यमों पर भी इसके दुष्प्रभाव पड़ सकते हैं।

सौर ऊर्जा (Solar Energy)

सौर ऊर्जा वह ऊर्जा है जो सीधे सूर्य से प्राप्त की जाती है। सौर ऊर्जा ही मौसम एवं जलवायु का परिवर्तन करती है। यह धरती पर सभी प्रकार के जीवन (पेड़–पौधों और जीव–जन्तुओं) का सहारा है। वैसे तो सौर ऊर्जा का विभिन्न प्रकार से प्रयोग किया जाता है, किन्तु सूर्य की ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदलने को ही मुख्य रूप से सौर ऊर्जा के रूप में जाना जाता है। सूर्य की ऊर्जा को दो प्रकार से विद्युत ऊर्जा में बदला जा सकता है। पहला प्रकाश–विद्युत सेल की सहायता से और दूसरा किसी तरल पदार्थ को सूर्य की ऊष्मा से गर्म करने के बाद इससे विद्युत जनित्र चलाकर। सौर ऊर्जा सबसे अच्छी ऊर्जा है, यह भविष्य में उपयोग करने वाली ऊर्जा है।

नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय (एम.एन.आर.ई.) ने देश के विभिन्न राज्यों में सौर पार्कों की स्थापना करने के लिए एक योजना तैयार की है, जिनमें से प्रत्येक में 500 मेगावाट से ऊपर सौर परियोजना की क्षमता है। इस योजना के तहत भारत सरकार द्वारा केन्द्रित तरीके से भूमि, पारेषण और निकासी पहुँच मार्गों, पानी तथा अन्य

उपलब्धता और आवंटन के संदर्भ में नई सौर ऊर्जा परियोजनाओं की स्थापना के लिए आवश्यक बुनियादी ढाँचे के निर्माण के उद्देश्य से सौर पार्क स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने का प्रस्ताव है।

टिप्पणी

विशेषताएँ

एक दिव्य शक्ति स्रोतशान्त व पर्यावरण सुदृढ़ होने के कारण नवीकरणीय सौर ऊर्जा को लोगों ने अपनी संस्कृति व जीवन यापन के तरीके के समरूप पाया है। विज्ञान व संस्कृति के एकीकरण तथा संस्कृति व प्रौद्योगिकी के उपस्कारों के प्रयोग द्वारा सौर ऊर्जा भविष्य के लिए अक्षय ऊर्जा का स्रोत साबित होने वाली है। सूर्य से सीधी प्राप्त होने वाली ऊर्जा में कई खास विशेषताएँ हैं, जो इस स्रोत को आकर्षक बनाती हैं। इसमें इसका अत्यधिक विस्तारित होना, अप्रदूषणकारी होना व अक्षुण्ण होना प्रमुख है। संपूर्ण भारतीय भूभाग पर लाख करोड़ किलोवाट घंटा प्रति वर्ग मी. के बराबर सौर ऊर्जा आती है, जो कि विश्व की संपूर्ण विद्युत खपत से कई गुना अधिक है।

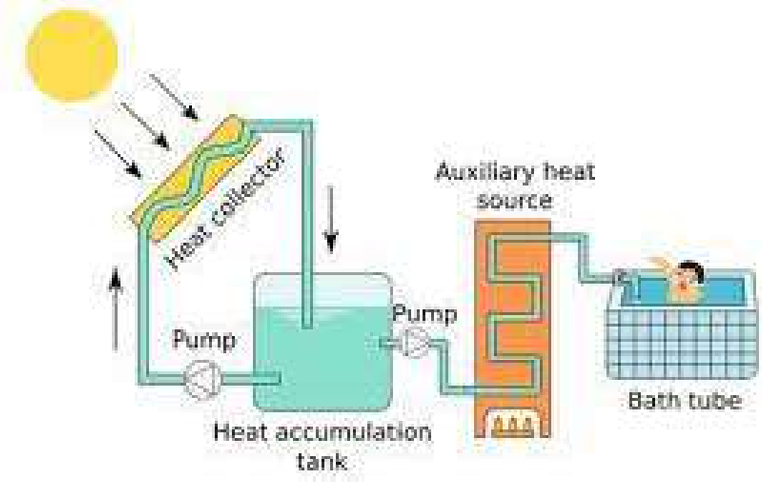

उपयोग

सौर ऊर्जा, जो रोशनी व ऊष्मा दोनों रूपों में प्राप्त होती है, का उपभोग कई प्रकार से हो सकता है। सौर ऊष्मा का उपयोग अनाज को सुखाने, जल उपमन, खाना पकाने, प्रशीतन, जल परिष्करण तथा विद्युत ऊर्जा उत्पादन हेतु किया जा सकता है, प्रशीलन का कार्य भी किया जा सकता है। दूरभाष, टेलीविजन, रेडियो आदि चलाए जा सकते हैं, तथा पंखे व जल–पंप आदि भी चलाए जा सकते हैं। जल का ऊष्मन सौर–ऊष्मा पर आधारित प्रौद्योगिकी का उपयोग घरेलू, व्यापारिक व औद्योगिक इस्तेमाल के लिए जल को गर्म करने में किया जा सकता है। देश में पिछले दो दशकों से सौर जल–ऊष्मक बनाए जा रहे हैं। अब तक बहुत बड़े क्षेत्रफल में सौर जल ऊष्मा संग्राहक संस्थापित किए जा चुके हैं। भारत सरकार का अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय इस ऊर्जा के उपयोग को प्रोत्साहन देने हेतु प्रौद्योगिकी विकास प्रमाणन, आर्थिक एवं वित्तीय प्रोत्साहन, जन–प्रचार आदि कार्यक्रम चला रहा है। इसके फलस्वरूप प्रौद्योगिकी विकास, प्रमाणन, आर्थिक एवं वित्तीय प्रोत्साहन, जन प्रचार आदि कार्यक्रम चल रहा है। जिसके फलस्वरूप प्रौद्योगिकी अब बहुत परिपक्वता प्राप्त कर चुकी है तथा इसकी दक्षता और आर्थिक लागत में भी काफी सुधार हुआ है।

टिप्पणी

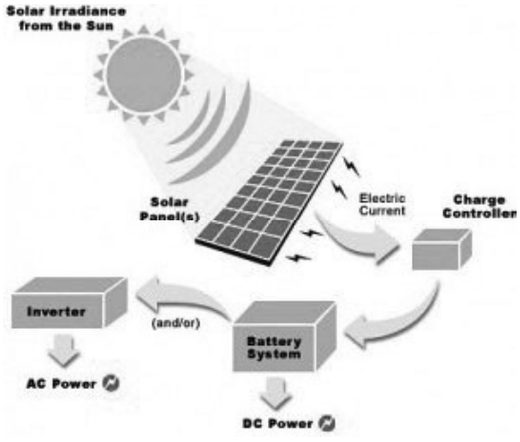

सौर ऊर्जा का उपयोग करके क्या–क्या बन सकता है–

(1) सौर–पाचक (सोलर कुकर)

सौर ऊष्मा द्वारा खाना पकाने से विभिन्न प्रकार के परम्परागत ईंधनों की बचत होती है। बॉक्स पाचक, वाष्प–पाचक व ऊष्मा भंडारक प्रकार के एवं भोजन पाचक, सामुदायिक पाचक आदि प्रकार के सौर–पाचक विकसित किए जा चुके हैं। ऐसे भी बॉक्स पाचक विकसित किए गए हैं, जो बरसात या धुंध के दिनों में बिजली से खाना पकाने हेतु प्रयोग किए जा सकते हैं।

(2) सौर कुकर/ओवन

सौर कुकर या ओवन ऐसे उपकरण होते हैं, जो कि खाना बनाने या गर्म करने के लिए प्रत्यक्ष रूप से सूर्य के प्रकाश का उपयोग करते हैं। ये किसी भी प्रकार के ईंधन का उपयोग नहीं करते हैं। इसी प्रकार से इन्हें संचालित करना भी बहुत सस्ता होता है। ये एक खाना पकाने के बर्तन का इस्तेमाल करते हैं। जिस पर सूर्य के प्रकाश व गर्मी को केन्द्रित करने के लिए परावर्तक सतह जैसे कि काँच या धातु की चादर का उपयोग होता है। बर्तन को सूरज की रोशनी से गर्मी अवशोषित करने के लिए काले या गहरे गैर–रिफ्लेक्टिव पेंट से रंगा जाता है।

(3) डिश और कुकर

ये नियमित सौर कुकर काले रंग के होते हैं। ये कुकर सूरज की रोशनी को केन्द्रित करने के लिए एक परबोलिक डिश का इस्तेमाल करते हैं, जहाँ एक केन्द्र बिन्दु पर सूरज की रोशनी केन्द्रित होती है। इन कुकरों पर खाना भी बहुत तेजी से पकता है। इन्हें आप रॉफ्टइंग, फाइंग और चीज उबालने के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। ये अपने आकार की वजह से लगभग 10–15 लोगों के लिए खाना पकाने के लिए भली–भाँति सक्षम होते हैं। ये कुछ छोटे आकार में भी बाजार में उपलब्ध हैं, जो कि कम लोगों के लिए खाना पकाने के लिए अच्छे होते हैं। इस प्रकार के कुकर को भी सूर्य के प्रकाश की दिशा के आधार पर समयोजना की जरूरत होती है। बाजार में इनके विभिन्न प्रकार के मॉडल उपलब्ध हैं।

(4) इंडोर खाना बनाने के लिए सामुदायिक सोलर कुकर

इस प्रकार के कुकर परंपरागत खाना पकाने वाली प्रणाली के सबसे करीब होते हैं। ये रसोई घर के अंदर खाना पकाने की संभावना प्रदान करते हैं। इनमें एक बड़े रिफ्लेक्टर,

टिप्पणी

बाहर की तरफ होते हैं और माध्यमिक रिफ्लेक्टर के माध्यम से सूर्य की रोशनी को काले रंग में रंगे बर्तन या फ्राइंग पेन के तल पर केन्द्रित किया जाता है। इस प्रक्रिया से इसका तापमान प्राप्त किया जाता है ताकि बहुत जल्दी खाना पक सके। ये एक बॉक्स कुकर की तुलना में अधिक तेजी से खाना पकाते हैं। चूंकि ये पारंपरिक प्रणाली की तरह कार्य करते हैं इसलिए इनसे चपातियां, डोसा आदि बनाना संभव होता है। आकार की वजह से, यह 40–100 लोगों के लिए खाना पकाने के लिए भली–भाँति सक्षम होता है। इसकी लागत लगभग 75,000 रुपये से 1.6 लाख के आस–पास आती है। अपने आकार की वजह से यह एक वर्ष में 30–65 एल.पी.जी. सिलेंडरों का संचय करने में सक्षम भी होती है।

(5) सोलर मोबाइल चार्जर

कम लागत में तैयार होने वाला यह मोबाइल चार्जर ग्रामीण क्षेत्र में बहुत ही लाभप्रद एवं उपयोगी है। ग्रामीण अंचल में आज भी कई जगह विद्युत लाइन का विस्तार नहीं हो पाया है, किन्तु तकनीकी युग में लोगों के लिए मोबाइल बहुत ही आवश्यक हो चुका है। मोबाइल के उपयोग के साथ–साथ मोबाइल की चार्जिंग की भी उतनी ही आवश्यकता पड़ती है, जिसके लिए कम लागत में तैयार होने वाला मोबाइल चार्जर बनाया गया है। यह 500–600 रुपये के अंदर ही तैयार हो जाता है और अन्य चार्जर की अपेक्षा अधिक दिनों तक उपयोग में भी आता है।

(6) सौर वायु ऊष्मन

सूरज की गर्मी के प्रयोग द्वारा कटाई के पश्चात कृषि उत्पादक व अन्य पदार्थों को सुखाने के लिए उपकरण विकसित किए गये हैं। इन पद्धतियों के प्रयोग द्वारा खुले में अनाजों व अन्य उत्पादकों को सुखाते समय होने वाले नुकसान कम किए जा सकते हैं। चाय पत्तियों, लकड़ी, मसाले आदि को सुखाने में इनका व्यापक प्रयोग किया जा सकता है। सौर–स्थापत्य किसी भी आवासीय व व्यापारिक भवन के लिए आवश्यक है ताकि उसमें निवास करने वाले व्यक्तियों के लिए वह सुखकर हो। सौर–स्थापत्य वस्तुतः जलवायु के साथ सामन्जस्य रखने वाला स्थापत्य है। भवन के अन्तर्गत बहुत सी अभिनव विशिष्टताओं को समाहित कर जाड़े व गर्मी दोनों ऋतुओं में जलवायु के प्रभाव को कम किया जा सकता है। इसके चलते परम्परागत ऊर्जा (बिजली व ईंधन) की बचत की जा सकती है।

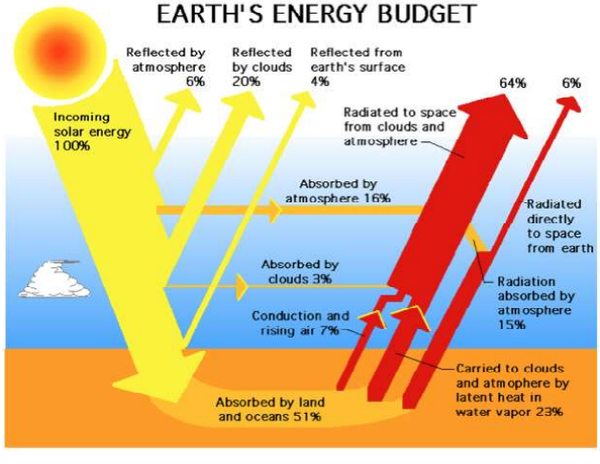

(7) सौर लालटेन

सौर लालटेन एक हल्की ढोई जा सकने वाली फोटो वोल्टायिक तंत्र है। इसके अन्तर्गत लालटेन, रख रखाव रहित बैटरी, इलेक्ट्रॉनिक नियंत्रक प्रणाली व वाट का छोटा फ्लुओऐसेन्ट लैम्प एक मॉड्यूल तथा एक वाट का फोटो वोल्टायिक मॉड्यूल आता है। यह घर के अन्दर व घर के बाहर प्रतिदिन 3 से 8 घंटे तक प्रकाश दे सकने में सक्षम है। लालटेन, ढिबरी, पेट्रोमैक्स आदि का एक आदर्श विकल्प है।

टिप्पणी

(8) सौर जल पम्प

फोटो वोल्टायिक प्रणाली द्वारा पीने व सिंचाई के लिए कुओं आदि से जल का पम्प लिया जाना भारत के लिए एक अत्यंत उपयोगी प्रणाली है। सामान्य जल पम्प प्रणाली में वाट का फोटो वाल्टायिक मॉड्यूल, एक मोटर युक्त पम्प एवं अन्य आवश्यक उपकरण होता है। अब तक अनगिनत सौर जल पम्प संस्थापित किए जा चुके हैं।

कमियाँ

सौर ऊर्जा की कई परेशानियाँ भी होती हैं। व्यापक पैमाने पर बिजली निर्माण के लिए पैनलों पर भारी निवेश करना पड़ता है। दूसरा, दुनिया में अनेक स्थानों पर सूर्य की रोशनी कम आती है, इसलिए वहाँ सोलर पैनल कारगर नहीं है। तीसरा, सोलर पैनल बरसात के मौसम में ज्यादा बिजली नहीं बना पाते। फिर भी विशेषज्ञों का मत है कि भविष्य में सौर ऊर्जा का अधिकाधिक प्रयोग होगा। भारत के प्रधानमंत्री ने हाल में सिलिकॉन वैली की तरह भारत में सोलर वैली बनाने की इच्छा जताई है।

P&C Division

State-wise installed capacity of Grid Interactive Renewable Power as on 31.03.2021.

S. No.	STATES / Uts	Small Hydro Power	Wind Power	Bio-Power				Solar Power			Total Capacity
				BM Power/Bagasse Cogen.	BM Cogen. (Non-Bagasse)	Waste to Energy	Bio Power Total	Ground Mounted	Roof Top	Total	
		(MW)	(MW)	(MW)	(MW)	(MW)	(MW)	(MW)	(MW)	(MW)	(MW)
1	Andhra Pradesh	162.11	4096.65	378.10	105.57	23.16	506.83	4064.74	138.26	4203.00	8968.59
2	Arunachal Pradesh	131.105					0.00	1.27	4.34	5.61	136.72
3	Assam	34.11			2.00		2.00	10.67	32.32	42.99	79.10
4	Bihar	70.70		112.50	12.20		124.70	138.93	20.58	159.51	354.91
5	Chhatisgarh	76.00		242.40	2.50		244.90	222.64	29.84	252.48	573.38
6	Goa	0.05				0.34	0.34	0.95	6.49	7.44	7.83
7	Gujarat	82.69	8561.82	65.30	12.00		77.30	3425.17	1005.65	4430.82	13152.63
8	Haryana	73.50		121.40	89.26	1.20	211.86	130.80	277.03	407.83	693.19
9	Himachal Pradesh	936.11			9.20		9.20	24.00	18.73	42.73	988.04
10	Jammu & Kashmir	185.98						8.49	12.24	20.73	206.71
11	Jharkhand	4.05			4.30		4.30	19.05	33.01	52.06	60.41
12	Karnataka	1280.73	4938.60	1867.10	20.20	1.00	1888.30	7091.75	263.42	7355.17	15462.80
13	Kerala	230.02	62.50		2.27		2.27	150.00	107.00	257.00	551.79
14	Madhya Pradesh	99.71	2519.89	92.50	14.85	15.40	122.75	2386.31	76.91	2463.22	5205.57
15	Maharashtra	379.58	5000.33	2568.00	16.40	12.59	2596.99	1642.24	647.73	2289.97	10266.87
16	Manipur	5.45						0.00	6.36	6.36	11.81
17	Meghalaya	32.53			13.80		13.80	0.00	0.12	0.12	46.45
18	Mizoram	36.47						0.10	1.43	1.53	38.00
19	Nagaland	30.67						0.00	1.00	1.00	31.67
20	Odisha	88.63		50.40	8.82		59.22	383.56	18.16	401.72	549.57
21	Punjab	173.55		299.50	173.95	10.75	484.20	828.58	130.92	959.50	1617.25
22	Rajasthan	23.85	4326.82	119.25	2.00		121.25	5313.58	419.00	5732.58	10204.50
23	Sikkim	52.11						0.00	0.07	0.07	52.18
24	Tamil Nadu	123.05	9608.04	969.10	43.55	6.40	1019.05	4150.15	325.06	4475.21	15225.35
25	Telangana	90.87	128.10	158.10	2.00	45.80	205.90	3784.27	168.85	3953.12	4377.99
26	Tripura	16.01						5.00	4.41	9.41	25.42
27	Uttar Pradesh	49.10		1957.50	159.76		2117.26	1455.25	257.25	1712.50	3878.86
28	Uttarakhand	214.32		72.72	57.50		130.22	254.78	113.63	368.41	712.95
29	West Bengal	98.50		300.00	19.92		319.92	100.00	49.84	149.84	568.26
30	Andaman & Nicobar	5.25						24.63	4.59	29.22	34.47
31	Chandigarh							6.34	38.82	45.16	45.16
32	Dadar & Nagar Haveli							2.49	2.97	5.46	5.46
33	Daman & Diu							10.15	30.40	40.55	40.55
34	Delhi					52.00	52.00	8.96	184.01	192.97	244.97
35	Lakshwadeep							0.75	0.00	0.75	0.75
36	Pondicherry							0.03	9.30	9.33	9.33
37	Others		4.30								4.30
	Total (MW)	**4786.81**	**39247.05**	**9373.87**	**772.05**	**168.64**	**10314.56**	**35645.63**	**4439.74**	**40085.37**	**94433.79**

MW = Megawatt

Source : https://mnre.gov.in/the-ministry/physical-progress

टिप्पणी

विश्व के विभिन्न देशों में सौर ऊर्जा का विकास एवं वर्तमान स्थिति

निम्नलिखित सारणी में विभिन्न देशों में लगे प्रकाश विद्युत सेल की क्षमता (मेगावाट) में दी गई है–

दुनिया भर में सौर ऊर्जा (सौर फोटोवोल्टिक क्षमता) मेगावाट (MW) में

Country	Total 2018	Total 2017	Total 2016	Total 2015	Percent Total
China	175018	131000	78070	43530	3.3
United States	62200	51000	40300	25620	2.3
Japan	55500	49000	42750	34410	6.8
Germany	45930	42000	41220	39700	7.9
India	26869	18300	9010	5050	5.4
Italy	20120	19700	19279	18920	7.3
United Kingdom	13108	12700	11630	8780	3.9
Australia	11300	7200	5900	5070	6.3
France	9483	8000	7130	6580	2.2
South Korea	7862	5600	4350	3430	2.2
Turkey	5063	3400	832		3.2
Spain	4744	5600	5490	5400	2.7
Netherlands	4150	2900	2100	1570	3.6
Belgium	4026	3800	3422	3250	4.7
Mexico	3200	539	320		2.6
Canada	3113	2900	2715	2500	0.6
Thailand	2720	2700	2150	1420	2.3
Greece	2652			2613	7.5
Taiwan	2618			1010	
South Africa	2559	1800	1450	1120	1.4
Brazil	2296				
Switzerland	2246	1900	1640	1360	3.6
Chile	2137	1800	1610	848	7.1
Czech Republic	2078	2193	2131	2083	3.5
Ukraine	2003	742	531	432	0
Pakistan	1568			1000	
Austria	1431	1250	1077	937	2
Romania	1377			1325	2.8
Israel	1070	1100	910	881	4.5
Bulgaria	1036	1036	1028	1029	3.8
Denmark	998	910	900	789	2.9
Philippines	886		900	155	
Portugal	670	577	513		2.2
Hungary	665			138	
Russia	546	236	77	62	
Slovakia	531			591	2.1
Honduras	516	451	414	391	14
Poland	487			87	
Malaysia	438	386	286	231	0.8
Sweden	421	303	175	130	0.4
Iran	390	303	175	130	0.4
Singapore	257				0.8
Luxembourg	134	127	122	125	
Finland	133.5	80.4	37.4	20	0.2
Malta	127	112	93	73	6.5
Cyprus	113	105	84	70	3.3
Lithuania	84	74	70	69	
Norway	68	45	26.7	15	0
Croatia	61	60	56	48	

https://worldpopulationreview.com/country-rankings/solar-power-by-country

जीवित जीवों अथवा हाल ही में भरे हुए जीवों से प्राप्त पदार्थ जैव मात्रा या जैव संहति या 'बायोमास' (Biomass) कहलाते हैं। ये ऊर्जा के स्रोत हैं। इन्हें सीधे जलाकर इस्तेमाल किया जा सकता है या इनको विभिन्न प्रकार के जैव ईंधन में परिवर्तित करके इस्तेमाल किया जा सकता है।

उदाहरण : गन्ने की खोई, धान की भूसी, अनुपयोगी लकड़ी आदि।

- पुआल के गट्ठर बायोमास बनाने के काम आते हैं।

टिप्पणी

- धान की भूसी को जलाकर ऊर्जा (ऊष्मा) प्राप्त की जा सकती है।

- Panicum Vigatum का उपयेग जैव मात्रा के रूप में किया जाता है।

ऊर्जा उत्पादन की शब्दावली में बायोमास (Biomass) उन सभी जीवधारी पदार्थों को कहते हैं, जो या तो जीवित हैं या कुछ ही समय पूर्व मरे हैं। बायोमास मानव को ज्ञात सबसे पुराना ईंधन है इसके अलावा यह सबसे अधिक विविधतापूर्ण भी है।

ज्यों–ज्यों अक्षय ऊर्जा का महत्व बढ़ता जा रहा है, त्यों–त्यों बायोमास का उत्पादन भी बढ़ता जा रहा है।

टिप्पणी

प्रायः जैवईंधन प्राप्त करने के लिए उत्पादित वानस्पतिक पदार्थों को ही बायोमास कहा जाता है लेकिन इस शब्द का प्रयोग जन्तु और पादप जन्य उन सभी वस्तुओं के लिए होता है, जो रेशे, रसायन या जैवईंधन के उत्पादन में प्रयुक्त होते हैं। बायोमास में जैविक रूप से नष्ट किए जा सकने वाला कचरा (जैवकचरा) भी सम्मिलित है जिसको जलाकर ईंधन का काम किया जा सकता है। किन्तु बायोमास में वे कार्बनिक पदार्थ सम्मिलित नहीं हैं जो हजारों वर्षों के भूगर्भीय परिवर्तनों के परिणामस्वरूप कोयला या पेट्रोलियम आदि में बदल गये हैं। वे जीवाश्म ईंधन कहलाते हैं।

बायोमास आधारित विद्युत का निर्माण (Manufacturing biomass based Power)

- भारत अपने कृषि–उद्योग तथा वन्य क्षेत्रों के क्रियाकलापों के अंतर्गत बड़ी मात्रा में बायोमास सामग्री पैदा करता है। एक आकलन के अनुसार 500 मिलियन टन कृषि तथा कृषि–उद्योग अवशिष्ट हर साल पैदा किया जाता है।
- ताप ऊर्जा के अर्थ में यह मात्रा तकरीबन 175 मिलियन टन तेल के बराबर है।
- इन सामग्रियों में भूसी तथा पुआल शामिल हैं। बायोमास की यह मात्रा 15000–25000 मेगावाट बिजली के उत्पादन के लिए पर्याप्त है।
- इसके अलावा बंजर भूमि, सड़क तथा रेल की पटरियों के किनारे के पौधों आदि से भी बिजली पैदा की जा सकती है। ऐसे बायोमास से पैदा की जाने वाली बिजली की मात्रा करीब 70000 मेगावाट अनुमानित की गई है।
- इस प्रकार बायोमास से पैदा होने वाली बिजली की संभावित मात्रा 100000 मेगावाट तक पहुँच सकती है।
- इन सामग्रियों के कुछ भाग ग्रामीण अर्थव्यवस्था में चारे और ईंधन के लिए प्रयोग किए जाते हैं। हालांकि अध्ययन से पता चलता है कि इस बायोमास सामग्री का कम से कम 150–200 मिलियन टन का कोई खास उपयोग नहीं होता और सस्ती दर पर इसका वैकल्पिक प्रयोग किया जा सकता है।

प्रौद्योगिकी (Technology)

इन बायोमास सामग्रियों से बिजली पैदा करने की तकनीक पारस्परिक ताप विद्युत निर्माण जैसी ही होती है। बायोमास को बॉयलर में जलाया जाता है, जिसमें भाप पैदा होती है, जो बिजली पैदा करके एक टर्बो अल्टरनेट को चलाती है।

लाभ (Advantage)

इन परियोजनाओं को बिजली की मांग के आधार पर डिजाइन किया जा सकता है। बायोमास को संचित किया जा सकता है और मांग के अनुसार उसका प्रयोग किया जा सकता है। इन परियोजनाओं के उपकरण भी कोयला आधारित ताप विद्युत परियोजना जैसे ही होते हैं। इनके लिए किसी तरह की उन्नत तकनीक की जरूरत नहीं होती। ग्रामीण क्षेत्र से निकटता ही इस प्रोजेक्ट विद्युत आपूर्ति की गुणवत्ता को बढ़ा सकती है। एक ही संयंत्र में कई तरह की बायोमास सामग्रियों का उपयोग किया जा सकता है। जिससे संचालन में लचीलापन आ जाता है।

लागत (Cost)

बायोमास ऊर्जा परियोजना के लिए उपयुक्त लागत 3 करोड़ रुपये/मेगावाट से 4 करोड़ रुपये/मेगावाट है। बिजली उत्पादन की लागत बायोमास की लागत, प्लांट की भार वहन क्षमता और रूपांतरण की क्षमता पर निर्भर करती है।

टिप्पणी

(Biomass of type Diagram)

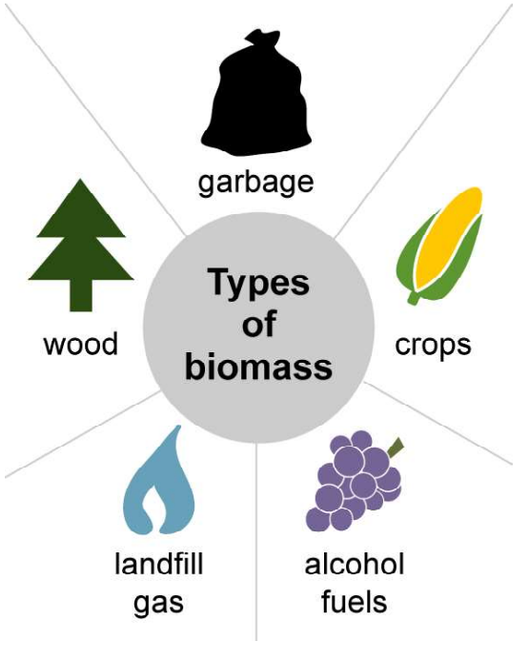

बायोमास को जैवईंधन के रूप में कई प्रकार से बदला जा सकता है। जिन्हें मोटे तौर पर तीन भागों में बांटा जा सकता है– ऊष्मीय विधियाँ, रासायनिक विधियाँ तथा जैव रासायनिक विधियाँ।

इसे कई पारंपरिक ऊर्जा रूपों की जगह पर प्रयुक्त किया जा सकता है।

आदर्श क्षमता

बायोमास गैसीकरण आधारित प्रणालियों को कुछ किलोवाट से लेकर मेगावाट तक बिजली के निर्माण के लिए डिजाइन किया जा रहा है। तापन कार्य के लिए तेल खपत की वर्तमान ऊपरी सीमा 200 से 300 किलोग्राम प्रति घंटे की है।

लागत

बायोमास गैसीकारक विद्युत निर्माण प्रणाली की आदर्श लागत 4 से 5 करोड़ रुपये/एम डब्ल्यू है।

विद्युत निर्माण की लागत बायोमास की लागत प्लांट की वहन क्षमता आदि जैसे कारकों पर निर्भर करती है। इसकी अनुमानित लागत 2.50 से 3.50 रुपये/किलोवाट के बीच है। तापीय प्रयोगों के लिए प्रमुख अनुमानित लागत प्रति/मिलियन किलो कैलोरी क्षमता के लिए 0.5 से 0.7 करोड़ रुपये है।

चीनी मिलों में संस्थापित खोई आधारित सह–उत्पादन प्रणाली की लागत 3–4 करोड़ रुपये/मेगावाट के बीच है। यह देखा गया है कि एक आदर्श चीनी मिल,

जिसकी औसत पेराई अवधि 160 दिन की हो और सह–उत्पादन के जरिए अतिरिक्त 160 दिनों की हो, बिजली निर्माण में निवेश समय के लिए लाभदायक साबित होती है।

सह उत्पादन प्लाट की क्षमता 3500 मेगावाट अनुमानित की गई है, जो देश की वर्तमान चालू चीनी मिलों से अतिरिक्त विद्युत का निर्माण है।

टिप्पणी

बायोमास गैसीकरण

बायोमास गैसीकरण ठोस का तापीय रासायनिक विधि से, दहन योग्य गैस मिश्रण (प्रोड्यूस गैस) में रूपांतरण है। इस विधि में आंशिक दहन के लिए वायु की मात्रा पूर्ण दहन के लिए आवश्यक मात्रा से कम की दी जाती है। उत्पन्न गैस का संघटन निम्न होता है–

- कार्बन मोनोऑक्साइड : 18 से 20 प्रतिशत
- हाइड्रोजन : 15 से 20 प्रतिशत
- मीथेन : 1 से 5 प्रतिशत
- नाइट्रोजन : 45 से 55 प्रतिशत

ऊर्जा मान : 1000 से 1200 किलो कैलोरी प्रति वर्ग मीटर

गैसीकरण कैसे कार्य करता है–

गैसीकरण 'अपड्राफ्ट या डॉनड्राफ्ट प्रकार के होते हैं। डॉनड्राफ्ट प्रकार के गैसीकरण में ईंधन तथा वायु सह–धारा के रूप में बहते हैं, जबकि अपड्राफ्ट गैसीकरण में ईंधन तथा वायु विपरीत धारा के रूप में बहते हैं। हालांकि मूल प्रतिक्रिया क्षेत्र समान ही होता है।

रिएक्टर में ईंधन ऊपर से डाला जाता है। ईंधन जैसे ही नीचे आता है इसे सुखाया जाता है तथा इसका पायरेलाइसिस किया जाता है। ऑक्सीकरण क्षेत्र में हवा को रिएक्टर में झोंका जाता है। पाइरेलाइसिस उत्पाद तथा ठोस बायोमास के आंशिक दहन के जरिये तापमान 1100 से. तक पहुँच जाता है। इससे भारी हाइड्रोजन तथा तार को तोड़ने में मदद मिलती है। ये उत्पाद नीचे की ओर जाते हैं और अवकरण क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। जहाँ लाल गर्म चारकोल पर भाप तथा कार्बन डाइ ऑक्साइड की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न गैस का निर्माण होता है। इंजन में भेजने से पहले इस गर्म और बदबूदार गैस को शीतल, क्लीनर्स तथा फिल्टर से होकर गुजारा जाता है।

उत्पन्न गैस से क्या किया जा सकता है?

स्वच्छ उत्पन्न गैस का प्रयोग विद्युत ऊर्जा के निर्माण में दोहरे आइसी इंजन (जहाँ डीजल तेल को 60 से 80 प्रतिशत की सीमा तक विस्थापित किया जाता है) या 100% गैस–दहन स्पार्क, प्रज्वलन इंजन के जरिये किया जा सकता है। उत्पन्न गैस का प्रयोग छोटे बायरों, जनरेटरों, ड्रायर आदि में ताप पैदा करने के लिए किया जाता है। बायोमास ऊर्जा कृषि, उद्योग तथा शहरों से निकलने वाले अन्य अवशिष्टों का संग्रहण संशोधित कर मिलने वाली वैकल्पिक ऊर्जा है। इसमें दो प्रक्रम शामिल हैं– बायोमास ब्रिकेटिंग अर्थात् अवशिष्ट संग्रहण तथा बायोमास गैसीकरण अर्थात ताप ऊर्जा का उत्पादन। बायोमास ऊर्जा ग्रामीणों के प्रमुख ईंधन स्रोत लकड़ी तथा कृषि अवशिष्ट पदार्थों को वैज्ञानिक तरीके से जलाने से प्राप्त होती है। अनुमान है कि इसे बायोमास

पिण्डों में परिवर्तित करके लगभग 19,500 एमडब्लू ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है, जो 2020 तक परमाणु से ऊर्जा के संभावित उत्पादन के लगभग बराबर है। नगर निगम के कचरे से ऊर्जा उत्पादन के लिए हैदराबाद, विजयवाड़ा व लखनऊ में 17.6 मेगावाट की तीन परियोजनाएँ स्थापित की गई हैं।

टिप्पणी

बायोऊर्जा गैस

भारत में मवेशियों की संख्या विश्व में सर्वाधिक है। इसलिए बायोगैस के विकास की प्रचुर संभावना है। बायोगैस (मीथेन या गोबर गैस) मवेशियों के उत्सर्जन पदार्थों को कम ताप दर डाइजेस्टर में चलाकर माइक्रोवेब उत्पन्न करके प्राप्त की जाती है। जैव गैस में 75 प्रतिशत मीथेन गैस होती है जो बिना धुआं उत्पन्न किए जलती है। लकड़ी, चारकोल तथा कोयले के विपरीत यह जलने के पश्चात राख जैसे कोई अपशिष्ट भी नहीं छोड़ती है। ग्रामीण इलाकों में भोजन पकाने तथा ईंधन के रूप में प्रकाश की व्यवस्था करने में इसका उपयोग हो रहा है।

राष्ट्रीय बायोगैस विकास कार्यक्रम 1981–82 के अंतर्गत पारिवारिक या घरेलू तथा सामुदायिक दो प्रकार के संयंत्रों की स्थापना की जाती है। इससे स्वच्छ, सस्ती ऊर्जा आपूर्ति तथा ग्रामीण पर्यावरण की सफाई के साथ ही उच्च कोटि की कार्बनिक खाद भी प्राप्त होती है क्योंकि जैव गैस के लिए प्रयुक्त गोबर तथा जल में नाइट्रोजन व फास्फोरस प्रचुर मात्रा में होती है। सावधानी केवल यह बरतनी चाहिए कि बायोगैस संयंत्र की 15 मीटर की परिधि में कोई पेयजल स्रोत न हो।

नाभिकीय ऊर्जा

परमाणु ऊर्जा वह ऊर्जा है जिसे नियंत्रित (पानी, गैर–विस्फोटक) नाभिकीय अभिक्रिया से उत्पन्न किया जाता है। वर्तमान में विद्युत उत्पादन के लिए वाणिज्यिक संयंत्र नाभिकीय विखंडन का उपयोग करते हैं। नाभिकीय रिएक्टर से प्राप्त ऊष्मा पानी को गर्म करके भाप बनाने के काम आती है, जिसे फिर बिजली उत्पन्न करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। 2009 में, दुनिया की बिजली का 15% भाग परमाणु ऊर्जा से प्राप्त हुआ। इसके अलावा, परमाणु प्रणोदन का उपयोग करने वाले 150 से अधिक नौसेना पोतों का निर्माण किया गया है।

प्रयोग : 2005 में परमाणु ऊर्जा ने विश्व की ऊर्जा का 6.3% उत्पादन किया और विश्व की कुल बिजली का 15% प्रदान किया, जिसमें फ्रांस, अमेरिका और जापान का परमाणु जनित बिजली में, एक साथ 56.5% का योगदान रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका सबसे अधिक परमाणु ऊर्जा का उत्पादन करता है, अमेरिका में जबकि कोयला और गैस विद्युत उद्योग के 2013 तक $85 बिलियन मूल्य होने का अनुमान है, परमाणु ऊर्जा जनरेटर के $85 बिलियन मूल्य होने का पूर्वानुमान है। अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान, सुरक्षा सुधार को आगे बढ़ा रहा है, जैसे– निष्क्रिय रूप से सुरक्षित संयंत्र। नाभिकीय संलयन का उपयोग और प्रक्रिया ताप का अतिरिक्त उपयोग जैसे हाड्रोजन उत्पादन प्रणाली में इस्तेमाल करना।

नाभिकीय संलयन : नाभिकीय संलयन अभिक्रिया अपेक्षाकृत सुरक्षित होती है और विखंडन की अपेक्षा कम रेडियोधर्मी कचरा उत्पन्न करती है। ये अभिक्रियाएँ संभावित रूप से व्यवहार्य दिखाई देती हैं, हालांकि तकनीकी तौर पर काफी मुश्किल हैं और इन्हें अभी भी ऐसे पैमाने पर निर्मित किया जाना है, जहाँ एक कार्यात्मक बिजली

संयंत्र में इनका इस्तेमाल किया जा सके। संलयन ऊर्जा 1950 के बाद से, गहन सैद्धांतिक और प्रायोगिक जाँच से गुजर रही है।

टिप्पणी

अंतरिक्ष में प्रयोग : विखंडन और संलयन, दोनों अंतरिक्ष प्रणोदन अनुप्रयोगों राशि के साथ उच्च अभियान वेग सृजित करते हैं। ऐसा, परमाणु अभिक्रिया के बहुत अधिक ऊर्जा घनत्व के कारण है। रॉकेट की वर्तमान पीढ़ी को ऊर्जा प्रदान करने वाली रासायनिक अभिक्रियाओं से अधिक ऊर्जावान रेडियोधर्मी क्षय को अपेक्षाकृत छोटे पैमाने पर ज्यादातर अंतरिक्ष अभियानों और प्रयोगों को ऊर्जा प्रदान करने के लिए इस्तेमाल किया गया है।

इतिहास/उत्पत्ति : परमाणु भौतिकी के पिता के रूप में अर्नेस्ट रदरफोर्ड को 1919 में परमाणु विखंडन के लिए श्रेय दिया जाता है। इंग्लैंड में उनके दल ने नाइट्रोजन पर रेडियोधर्मी पदार्थ से प्राकृतिक रूप से निकलने वाले अल्फा कण से बमबारी की और अल्फा कण से भी अधिक ऊर्जा युक्त एक प्रोटॉन को उत्सर्जित होते देखा।

जेम्स चैडविक द्वारा 1932 में न्यूट्रॉन की खोज के बाद, परमाणु विखंडन को सर्वप्रथम एनरिको फर्मो ने प्रयोगात्मक रूप से 1934 में रोम में हासिल किया।

20 दिसंबर, 1951 को पहली बार एक परमाणु रिएक्टर द्वारा बिजली उत्पन्न की गई।

प्रारंभिक वर्ष : 27 जून, 1954 को USSR का ओबनिंस्क न्यूक्लियर पावर प्लांट, विद्युत ग्रिड के लिए बिजली उत्पादित करने वाला दुनिया का पहला परमाणु ऊर्जा संयंत्र बना।

बाद में 1954 में, अमेरिकी परमाणु ऊर्जा आयोग (U.S.A.E.C.) के उस वक्त के अध्यक्ष, लुईस स्ट्रास ने भविष्य में बिजली के बारे में कहा, कि यह इतनी सस्ती होगी कि मीटर से नापने की आवश्यकता नहीं होगी।

1955 में, संयुक्त राष्ट्र संघ के 'प्रथम जिनेवा सम्मेलन' में उस वक्त वैज्ञानिकों और इंजीनियरों के दुनिया के सबसे बड़े जमावड़े ने प्रौद्योगिकी को और खंगालने के लिए मुलाकात की। अमेरिकी सेना के पास भी एक परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम था।

विकास : संस्थापित परमाणु क्षमता शुरू में अपेक्षाकृत जल्दी बढ़ी, 1960 में एक गीगावाट (GW) से भी कम से लेकर 1970 के दशक उत्तरार्ध में 100GW और 1980 के दशक के उत्तरार्ध के बाद से दुनियाभर में क्षमता, अपेक्षाकृत धीरे–धीरे बढ़ी है। 1973 के तेल संकट का देशों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा जैसे– फ्रांस और जापान, जो बिजली उत्पादन के लिए तेल पर अत्यधिक निर्भर थे। परमाणु ऊर्जा के खिलाफ आंदोलन 20वीं सदी के आखिरी तीसरे भाग में उभरा, जो संभावित परमाणु दुर्घटना के डर के साथ ही साथ दुर्घटनाओं का इतिहास, विकिरण की आशंका के साथ ही साथ सार्वजनिक विकिरण के इतिहास परमाणु अप्रसार और परमाणु कचरे के उत्पादन, परिवहन और संग्रहण की किसी अंतिम योजना की कमी पर आधारित है।

उद्योग का भविष्य : जैसे 2007 वाट्स बार 1, 7 फरवरी, 1996 को ऑन–लाइन आया। वह आखिरी अमेरिकी वाणिज्यिक परमाणु रिएक्टर था जो ऑन लाइन गया। इसे अकसर, परमाणु ऊर्जा को समाप्त करने के लिए एक सफल वैश्विक अभियान के साक्ष्य के रूप में उद्धृत किया जाता है। हालांकि, अमेरिका और पूरे यूरोप में, अनुसंधान और परमाणु ईंधन चक्र में निवेश जारी है।

टिप्पणी

विश्व परमाणु संघ के अनुसार, 1980 के दशक के दौरान वैश्विक स्तर पर हर 17 दिनों में एक नया परमाणु रिएक्टर औसत रूप से शुरू हुआ। परमाणु बिजली संयंत्रों के उत्पादन में कुछ संभावित रुकावटें हैं क्योंकि विश्व भर में कुछ कंपनियों के पास सिंगल–पीस रिएक्टर दबाव वाहिकाओं को गढ़ने की क्षमता है।

परमाणु रिएक्टर प्रौद्योगिकी : जिस प्रकार कई परंपरागत तापीय ऊर्जा केन्द्र, जीवाश्म ईंधन के जलने से निकलने वाली ताप ऊर्जा के दोहन से बिजली उत्पन्न करते हैं, वैसे ही परमाणु ऊर्जा संयंत्र, आमतौर पर परमाणु विखंडन के माध्यम से एक परमाणु के नाभिक से निकली ऊर्जा को परिवर्तित करते हैं। जब एक अपेक्षाकृत बड़ा विखंडनीय परमाणु नाभिक (आमतौर पर यूरेनियम 335 या प्लूटोनियम 239) एक न्यूट्रॉन को अवशोषित करता है।

इस परमाणु शृंखला अभिक्रिया को नियंत्रित करने के लिए न्यूट्रॉन विष और न्यूट्रॉन मंदक का प्रयोग किया जा सकता है, जो न्यूट्रॉन के उस भाग को परिवर्तित कर देता है, जो विखंडन को आगे बढ़ाता है। एक शीतलन प्रणाली, रिएक्टर के केन्द्र से ताप को हटाती है और उसे संयंत्र के अन्य क्षेत्र में भेजती है। परमाणु ऊर्जा उत्पादन के लिए ढेरों नए डिजाइन सक्रिय अनुसंधान के अधीन हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से चतुर्थ पीढ़ी रिएक्टर कहा जाता है।

जीवन चक्र : एक परमाणु रिएक्टर, परमाणु ऊर्जा के लिए जीवन चक्र का एक ही हिस्सा है। यह प्रक्रिया खनन के साथ शुरू होती है। यूरेनियम खानें भूमिगत, खुले गड्ढे की खानें होती हैं। किसी भी हालत में यूरेनियम अयस्क को निकाला जाता है और उसे आमतौर पर एक स्थिर और ठोस रूप में परिवर्तित किया जाता है। जैसे यलो केक और फिर उसे किसी प्रसंस्करण सुविधा में भेजा जाता है, जहां विखंडन द्वारा उत्पन्न अल्प–जीवित आइसोटोप नष्ट हो जाते हैं। एक शीतलक तालाब में लगभग 5 साल के बाद, खर्चित ईंधन रेडियोधर्मी और तापीय आधार पर संभालने के लिए पर्याप्त ठंडा हो चुका होता है।

परम्परागत ईंधन संसाधन : यूरेनियम, भू–पर्पटी में पाया जाने वाला एक मुख्य तत्व है। यूरेनियम लगभग उतना ही मुख्य है जितना भू–पर्पटी में टिन या जर्मेनियम का पाया जाना और रजत की तुलना में यह 35 गुना अधिक है। यूरेनियम अधिकांश चट्टानों, धूल और महासागरों का एक घटक है। यह तथ्य कि यूरेनियम इतना बिखरा हुआ है, एक समस्या है, क्योंकि यूरेनियम खनन आर्थिक रूप से केवल वही व्यवहार्य है जहां बड़ी मात्रा में इसका संकेन्द्रण हो। वर्तमान में हल्के जल रिएक्टर, परमाणु ईंधन का अपेक्षाकृत अकुशल प्रयोग करते हैं और केवल बहुत दुर्लभ यूरेनियम 235 आइसोटोप का विखण्डन करते हैं। परमाणु पुनर्संसाधन इस कचरे को पुनः उपयोग के लायक बना सकता है और अधिक कुशल रिएक्टर डिजाइन, उपलब्ध संसाधनों के बेहतर प्रयोग की अनुमति देते हैं।

प्रजनन : वर्तमान हल्के जल के रिएक्टरों के विपरीत, जो यूरेनियम 235 (सारे प्राकृतिक यूरेनियम का 0.7%) का प्रयोग करते हैं, फास्ट ब्रीडर रिएक्टर यूरेनियम 238 (सारे प्राकृतिक यूरेनियम का 99%) का उपयोग करते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि ब्रीडर प्रौद्योगिकी का कई रिएक्टरों में इस्तेमाल किया गया है, लेकिन ईंधन को सुरक्षित तरीके से पुनर्संसाधित करने की उच्च लागत को आर्थिक रूप से उचित बनने से पहले 200 USO/Kg से अधिक की यूरेनियम कीमतों की आवश्यकता है।

टिप्पणी

विलय : संलयन ऊर्जा के पैरोकर ईंधन के रूप में सामान्यतः ड्यूटेरियम या ट्रिटियम के उपयोग का प्रस्ताव करते हैं, दोनों ही हाइड्रोजन के आइसोटोप हैं और कई मौजूदा डिजाइनों में बोरान और लिथियम के भी एक संलयन ऊर्जा उत्पादन को मौजूदा वैश्विक उत्पादन के बराबर मानकर और यह मानकर कि इसमें भविष्य में वृद्धि नहीं होगी।

ठोस अपशिष्ट : परमाणु ऊर्जा संयंत्रों में सबसे महत्वपूर्ण अपशिष्ट धारा है। यह खर्चित परमाणु ईंधन मुख्यतः अपरिवर्तित यूरेनियम से बना है और साथ ही ट्रांससुरानिक एक्टिनाइडस की महत्वपूर्ण मात्रा (प्लूटोनियम) इसके अलावा, इसका करीब 3% परमाणु अभिक्रिया से निकला विखण्डन उत्पाद है।

उच्च–स्तरीय रेडियोधर्मी अपशिष्ट : परमाणु रिएक्टर के अन्दर एक परमाणु ईंधन छड़ के 5 प्रतिशत अभिक्रिया कर लेने के बाद, वह छड़ ईंधन के रूप में प्रयोग किए जाने के लायक नहीं रहती (विखंडन उत्पादों के बढ़ने के कारण)। आज, वैज्ञानिक इस बात का पता लगा रहे हैं कि कैसे इन छड़ों को दुबारा प्रयोग करने लायक बनाया जाए ताकि कचरे को कम किया जा सके। खर्चित परमाणु ईंधन शुरू में बहुत उच्च रेडियोधर्मी होता है और इसलिए इसे अत्यन्त सावधानी और पूर्वविचारित तरीके से संभालना चाहिए। जब पहली बार निकाला जाता है तो खर्चित ईंधन छड़ों को पानी के परिरक्षित बेसिनो में संग्रहित किया जाता है।

निम्न–स्तरीय रेडियोधर्मी अपशिष्ट : परमाणु उद्योग, दूषित वस्तुओं के रूप में निम्न–स्तरीय रेडियोधर्मी कचरे का भी भारी मात्रा में उत्पादन करता है, जैसे– कपड़ा, हस्त–उपकरण, जल शुद्धक रेजिन और (चालू होने पर) वे सामग्रियां, जिनसे रिएक्टर खुद बना है। सिर्फ अपने इतिहास की वजह से रेडियोधर्मी कचरा माने जाते हैं।

रेडियोधर्मी अपशिष्ट की औद्योगिक विषाक्त अपशिष्ट से तुलना : परमाणु ऊर्जा वाले देशों में, कुल औद्योगिक विषाक्त कचरे में रेडियोधर्मी कचरे का योगदान 1% से भी कम है, जिनमें से अधिकांश भाग अनिश्चित काल तक के लिए खतरनाक बना रहता है। कुल मिलाकर, जीवाश्म–ईंधन आधारित विद्युत संयंत्रों की तुलना में परमाणु ऊर्जा द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थों की यात्रा काफी कम होती है। कोयला चालित संयंत्रों को विषाक्त और हल्की रेडियोधर्मी राख उत्पन्न करने के लिए विशेष रूप से माना जाता है।

पुनर्संसाधन : पुनर्संसाधन से, खर्चित परमाणु ईंधन से प्लूटोनियम और यूरेनियम के सम्भावित रूप से 95% को, इसे मिश्रित ऑक्साइड ईंधन में डालकर पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

रिक्त यूरेनियम : यूरेनियम संवर्धन, कई टन के रिक्त यूरेनियम (DU) को उत्पन्न करता है, जो U-238 से बना होता है।

अर्थशास्त्र : परमाणु ऊर्जा संयंत्रों का अर्थशास्त्र, मुख्य रूप से विशाल प्रारंभिक निवेश से प्रभावित होता है।

परमाणु ऊर्जा संयंत्रों का लचीलापन : अकसर यह दावा किया गया है कि परमाणु केन्द्र अपने उत्पादन में लचीले नहीं होते हैं।

परमाणु ऊर्जा के पर्यावरणीय प्रभाव : कार्बन डाइ ऑक्साइड उत्सर्जन के जीवन चक्र विश्लेषण (LCA) की अधिकांश तुलना, परमाणु ऊर्जा को नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों की तुलना में दर्शाती है।

परमाणु ऊर्जा पर बहस : परमाणु ऊर्जा बहस उस विवाद के बारे में है जो परमाणु ऊर्जा के समर्थकों का तर्क है। इन्हें भी देखें–

टिप्पणी

1. नाभिकीय विखंडन
2. परमाणु संलयन
3. ऊर्जा विकास

सन्दर्भ

1. The Nuclear Energy Option बनर्डि एल. कोहेन द्वारा लिखी आनलाइन पुस्तक।
2. स्टीव थॉमस (2005)

बाहरी कड़ियां : खुशहाल भविष्य का मार्ग है– नाभिकीय ऊर्जा (डा. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति और श्री सृजन पाल सिंह, सतत विकास के विशेषज्ञ)।

नगर निगम का कचरा प्रबंधन (Municipal Waste Management)

नगर निगम के कचरे के प्रबंधन के लिए जीवन चक्र आकलन और जीवन चक्र लागत के संयोजन के उपयोग का अध्ययन–

1. **एम.सी. रीच–जर्नल ऑफ क्लीनर प्रबंधन प्रोडक्शन, 2005–एल्सेवियर** : यह पत्र नगरपालिका की कचरा प्रबंधन प्रणालियों का अध्ययन करते समय आर्थिक जानकारी का जीवन चक्र मूल्यांकन, एल.सी. से जोड़ने की कुछ संभावनाओं और सीमाओं की जांच करता है जैसे– नगरपालिका अपशिष्ट प्रबंधन के आर्थिक मूल्यांकन के लिए एक शब्दावली और पद्धति, ग्रीन हाउस गैसों का नगरपालिका अपशिष्ट प्रबंधन से उर्त्सजन : अलग संग्रह की भूमिका।
2. **पी.एस. कैलाबे–अपशिष्ट प्रबंधन, 2009 एल्सेवियर** : नगरपालिका ठोस अपशिष्ट प्रबंधन में उत्सर्जन के लिए योगदान ग्रीन हाउस गैसों के लिए वातावरण (जैसे सी.ओ. 2, सी.एच. 4, एन. 2 ओ.) और इतिहास प्रबंधन संग्रह से उपचार और निपटान के लिए प्रक्रिया आदेश को कम करने में अनुकूलित किया जाना है।
3. **डी. होर्नवेग, पी. भड़ा – टाटा – 2012** : इसके निवासी हालांकि सेवा स्तर, पर्यावरणीय प्रभाव और लागत नाटकीय रूप से भिन्न होते हैं? ठोस कचरा प्रबंधन यकीनन सबसे महत्वपूर्ण नगरपालिका सेवा है और अन्य नगरपालिका कार्रवाई के लिए एक शर्त के रूप में कार्य करती है।
4. **एच. जोहरा, डी. कज्जास्की, एच. गजल आर. क्राजीस्का : ऊर्जा 2017 – एल्सेवियर** : हर साल एक विकसित देश का औसत नागरिक लगभग आधा टन कचरे का उत्पादन करता है। इस प्रकार अपशिष्ट प्रबंधन एक आवश्यक उद्योग है। मिश्रित किए गए कचरे के संग्रह के आधार पर पुरानी अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली और निपटान स्थलों के लिए एक लंबा रास्ता तय करता है।

टिप्पणी

5. जीवन चक्र मूल्यांकन (L.C.A.) और जीवन चक्र लागत (L.C.C.) के संयोजन का उपयोग करके नगरपालिका अपशिष्ट प्रबंधन प्रणालियों का मामला–अध्ययन

पी.–गलच, एच. बॉमन–भवन और पर्यावरण, 2004 – एल्सेवियर : पर्यावरण निर्णय लेने में उपयोगी दस एल.सी.सी. उन्मुख पर्यावरण लेखांकन उपकरणों की पहचान की गई है। हालांकि भवन उद्योग में उनका कार्यान्वयन सीमित है, जो एक वैचारिक चर्चा के लिए खुलता है।

6. ए.एम.टी.,ए. डेविस, ए. गिफिथ्स के विलियम्स– संसाधन, संरक्षण और 2007– एल्सेवियर : हाल के वर्षों में पर्यावरण पर अपशिष्ट डालने वाले बोझ को व्यापक रूप से प्रचारित किया गया है। पृथ्वी के घटते संसाधनों और कचरे के बढ़ते पहाड़ों को दूर करने के लिए कई देशों ने वैधानिक अपशिष्ट कम से कम और वसूली लक्ष्य पेश किए हैं।

7. सिस्टम के दृष्टिकोण से नगरपालिका के ठोस अपशिष्ट प्रबंधन : सिस्टम विश्लेषण में नगरपालिका के ठोस अपशिष्ट के लिए अलग–अलग अपशिष्ट उपचार विकल्पों का अध्ययन किया गया है जैसे– अलग–अलग संयोजनों, अलग प्लास्टिक और कार्डबोर्ड कंटेनरों के पुनर्चक्रण और जैविक उपचार (अवायवीय पाचन और खाद) के विभिन्न संयोजन।

8. पर्यावरणीय जीवन चक्र लागत : स्पष्ट रूप से प्रबंधन मुद्दों को देखने के लिए वैज्ञानिक और आर्थिक बिन्दुओं का संतुलन, स्पष्टीकरण और बेंचमार्क की आवश्यकता का जवाब देते हुए, पर्यावरणीय जीवन चक्र लागत मौलिक पद्धति प्रदान करती है, जिस पर एक निश्चित पद्धति स्थापित की जाती है।

9. अपशिष्ट प्रबंधन प्रणालियों की जीवन चक्र लागत : अवलोकन गणना सिद्धांत और केस अध्ययन : यह कागज ठोस अपशिष्ट प्रबंधन प्रणालियों का मूल्यांकन करने के लिए एक विस्तृत और व्यापक लागत मॉडल प्रदान करता है। यह मॉडल लाइफ साइकल कॉस्टिक (L.C.C.) के सिद्धांतों पर आधारित था और विस्तृत लागत आइटम प्रदान करने वाले एक गणना दृष्टिकोण के बाद का।

10. पर्यावरणीय जीवन–चक्र लागत : अभ्यास का एक कोड : चर्चा एल.सी. सी. एवं एल.सी.ए. से संबंधित है और सिस्टम इंजीनियरिंग (ब्लाचार्ड) (1978) में इसकी विकासात्मक जड़ों के लिए अलग और वैचारिक नींव पद्धतिगत दृष्टिकोण का पता लगाया जा सकता है। इन विधियों का सीमित एकीकरण हुआ है।

11. एकीकृत अपशिष्ट–प्रबंधन प्रणालियों में सामग्री और ऊर्जा की वसूली : एक जीवन चक्र लागत दृष्टिकोण : तुलनात्मक रूप से अपशिष्ट प्रबंधन विकल्पों का आकलन करने वाले अध्ययनों की एक महत्वपूर्ण धारणा चयनात्मक संग्रह के लिए निरंतर औसत लागत की चिन्ता करती है। भले ही स्रोत पृथक्करण स्तर (एस.एस.एल.) तक पहुंच गया हो।

12. L.C.A.-I.W.M. अपशिष्ट प्रबंधन प्रणालियों की स्थिरता के मूल्यांकन के लिए एक निर्णय समर्थन उपकरण : यह परियोजना सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं के साथ शहरों और क्षेत्रों के लिए एकीकृत अपशिष्ट प्रबंधन

रणनीतियों के विकास के लिए जीवन चक्र मूल्यांकन उपकरण का उपयोग 'परियोजना का सबसे' महत्वपूर्ण परिणाम है, जो दो निर्णय–समर्थन उपकरणों का विकास था।

टिप्पणी

13. **जांच** : यह पत्र नगरपालिका अपशिष्ट प्रबंधन प्रणालियों का अध्ययन करते समय आर्थिक जानकारी को जीवन का मूल्यांकन, L.C.A. से जोड़ने की कुछ सम्भावनाओं और सीमाओं की जांच करता है। नगरपालिका अपशिष्ट प्रबंधन प्रणालियों के आर्थिक मूल्यांकन के लिए एक शब्दावली और कार्यप्रणालियां प्रस्तावित हैं और एक मामले के अध्ययन के लिए परीक्षण किया गया है। कार्य प्रणाली में एक वित्तीय (L.C.C.) जीवन चक्र लागत शामिल है। उपयोग L.C.A. के समानांतर किया जाता है और एक पर्यावरण (L.C.C.) एक निरन्तर, भारित उपकरण के रूप में कार्य करता है। मामले के अध्ययन में, वित्तीय एल. सी.सी. विस्तारित अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली द्वारा की गई सभी लागतों को कवर करता है, जैसे कि एल.सी.ए. प्रणाली एक एकल आर्थिक अभिनेता था। पर्यावरण (L.C.C.) उत्सर्जन और संसाधन उपयोग जैसे पर्यावरणीय (L.C.C.) प्रभावों के मुद्रीकरण के लिए तीन अलग–अलग भार तरीकों का उपयोग करता है। चूंकि दोनों L.C.C. खाते की एक ही इकाई का उपयोग करते हैं। वे आसानी से एक कल्याणकारी आर्थिक उपकरण में एक साथ जुड़ सकते हैं। यह चरण–दर–चरण एकत्रीकरण एक पारदर्शी, प्रतिलिपि प्रस्तुत करने योग्य विश्लेषण विधि की ओर जाता है। एक निष्कर्ष यह है कि कार्यप्रणाली विश्लेषण की सुविधा देती है। लेकिन यह समस्या बनी हुई है क्योंकि नगरपालिका अपशिष्ट प्रबंधन अकसर मौजूदा आर्थिक प्रणालियों से विचलन करती है।

14. **निर्यात** : खाद्य कचरे के प्रबंधन के लिए वैकल्पिक साधनों का यह पर्यावरणीय आकलन जीवन चक्र मूल्यांकन (L.C.A.) पद्धति पर आधारित है। यह एक घरेलू इनसिंक खाद्य अपशिष्ट प्रोसेसर (एफ.डब्ल्यू.पी.) इकाई द्वारा प्रदान की गई सेवा है, जो इसके विकल्प को कवर करती है। घर के खाद्य, नगरपालिका के कचरे (कोडीसपोजिशन) के साथ खाद्य अपशिष्ट और हरे खाद्य तथा उद्यान के केन्द्रीकृत खाद्य कार्यात्मक ईकाई को एक वर्ष में सिडनी घराने द्वारा उत्पादित खाद्य कचरे के प्रबंधन के रूप में परिभाषित किया गया है। पर्यावरण मूल्यांकन के आठ मूल्यांकन संकेतक और प्रभाव श्रेणियां शामिल हैं।

यह एल.सी.ए. अध्ययन पर्यावरणीय रूप से बेहतर होने के साथ–साथ प्रमुख पर्यावरणीय मुद्दों की पहचान करता है। यदि एयरोबिक रूप से संचालित किया जाता है, तो घर के खाद्य की सभी प्रभाव श्रेणियों से कम पर्यावरणीय प्रभाव पड़ता है। जलवायु परिवर्तन और यूट्रोफिकेशन क्षमता के सन्दर्भ को छोड़कर, कोडिस प्रस्ताव विकल्प का पर्यावरण प्रदर्शन अपेक्षाकृत अच्छा है।

एफ.डब्ल्यू.पी. ने ऊर्जा के उपयोग, जलवायु परिवर्तन और अम्लीकरण क्षमता के सन्दर्भ में अच्छा प्रदर्शन किया, हालांकि यह यूट्रोफिकेशन और विषाक्तता सम्भावितों के लिए एक बड़ा योगदान है। एफ.डब्ल्यू.पी. के अपेक्षाकृत उच्च पानी की खपत का प्रदर्शन इस एल.सी.ए. अध्ययन का एक महत्वपूर्ण परिणाम है क्योंकि ऑस्ट्रेलिया पृथ्वी पर सबसे सूखा महाद्वीप है। अन्य तीन विकल्पों की

टिप्पणी

तुलना में केन्द्रीकृत कम्पोस्टिंग में ऊर्जा गहन अपशिष्ट संग्रह गतिविधियों की आवश्यकता के कारण अपेक्षाकृत खराब पर्यावरणीय प्रदर्शन होता है। जैविक कचरे के लिए एक अलग संग्रह और परिवहन प्रणाली को लागू करने से संग्रहित आवृत्ति और प्रति घर एकत्रित किए गए कचरे की थोड़ी मात्रा के कारण अपेक्षाकृत उच्च पर्यावरणीय प्रभाव होता है। यूरोपीय शहरों की तुलना में सिडनी में काफी बड़ी दूरी तय की जानी है, जो इस एल.सी.ए. को पिछले काम से अलग करती है।

एफ.डब्ल्यू.पी. के गैर–आवर्तक : एफ.डब्ल्यू.पी. के गैर–आवर्तक प्रभावों की पहचान इस प्रकार के अपशिष्ट प्रबंधन विकल्प के लिए उपयोग की गई सामग्रियों के प्रकार और एफ.डब्ल्यू.पी. की कम परिचालन क्षमता के कारण बड़े परिणाम के रूप में की जाती है। अंत में, हालांकि इस एल.सी.ए. में जांच की गई श्रेणियों के सन्दर्भ में होम कम्पोस्टिंग उच्च ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन के कारण अवयवीय मेथनोजेनसिस के कारण अपना आकर्षण खो देती है। यद्यपि घर के खाद्य में सबसे अच्छा खाद्य अपशिष्ट प्रबंधन विकल्प होने की क्षमता है, लेकिन यह उस विषय के सम्बंध में भी सबसे खराब प्रदर्शन कर सकता है, जिसमें ऑस्ट्रेलिया पहले से ही अपनी कक्षा में सबसे नीचे है।

असमानताएं और विचार–विमर्श की भूमिका : रेडियोधर्मी कचरे की तरह, नगरपालिका ठोस अपशिष्ट (M.S.W.) को विज्ञान के साथ घिरे हुए क्रियात्मक और इंट्राजेनेशनल जोखिम के एक जटिल मिश्रण पर विचार करने की आवश्यकता होती है। रेडियोधर्मी कचरे के विपरीत एम.एस.डब्लू. (M.S.W.) एक आम समस्या है।

नगरपालिका अपशिष्ट रोकथाम का पर्यावरणीय मूल्यांकन : साहित्य में सामाजिक और व्यवहार संबंधी पहलुओं के संदर्भ में अपशिष्ट रोकथाम को संबंधित किया गया है। लेकिन पर्यावरणीय लाभों का बहुत कम मात्रात्मक मूल्यांकन मौजूद है, जो हमारे अध्ययन के पर्यावरणीय परिणाम का मूल्यांकन करता है।

नगरपालिका अपशिष्ट प्रबंधन योजना का मूल्यांकन : अपशिष्ट प्रबंधन योजना को लागू करने के पर्यावरणीय परिणामों का विश्लेषण जीवन चक्र मूल्यांकन पद्धति के आधार पर एक कम्प्यूटरीकृत स्थिर प्रवाह मॉडल का उपयोग करते हुए किया गया है।

बेनिन सिटी, नाइजीरिया में निजी क्षेत्र की भागीदारी और नगरपालिका : यह पत्र बेनिन सिटी और अन्य नाइजीरियाई शहरों में ठोस अपशिष्ट संग्रह और निपटान के लिए सार्वजनिक प्रावधान की अपर्याप्तता और इन अपर्याप्तता को दूर करने के लिए निजीकरण योजनाओं की सीमाओं का वर्णन करता है।

नाइजीरिया में नगरपालिका ठोस अपशिष्ट प्रबंधन समस्याएं, ज्ञान प्रबंधन समस्याएं–ज्ञान समाधान का विकास : कागज नाइजीरिया में नगर पालिका अपशिष्ट प्रबंधन से संबंधित समस्याओं के संश्लेषण का प्रयास करता है और नाइजीरिया के शहरों में नगर पालिका अपशिष्ट समस्याओं से निपटने के लिए एक वैचारिक ज्ञान प्रबंधन दृष्टिकोण का प्रभाव उत्पन्न करता है।

वर्तमान में नगरपालिका अपशिष्ट प्रबंधन के क्षेत्र में विभिन्न मॉडल उपयोग किए जा रहे हैं और इन मॉडलों की प्रमुख कमियों को उजागर करने के लिए नगरपालिका अपशिष्ट प्रबंधन मॉडल के विकास का एक संक्षिप्त इतिहास है।

टिप्पणी

जैव चिकित्सकीय अपशिष्ट प्रबंधन (Bio-Medical Waste Management): स्वास्थ्य सुविधाएं प्रत्येक व्यक्ति के जीवन एवं स्वास्थ्य हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, किन्तु चिकित्सा गतिविधियों से उत्पन्न अपशिष्ट मानवीय व पर्यावरणीय दुनिया की एक वास्तविक समस्या का प्रतिनिधित्व करता है। चिकित्सीय क्रियाकलापों से उत्पन्न कचरे के अनुचित प्रबंधन से समुदाय, स्वास्थ्यकर्मियों तथा पर्यावरण पर प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। प्रत्येक दिन, अस्पतालों तथा अन्य चिकित्सीय सुविधाओं से अपेक्षाकृत संक्रामक और खतरनाक अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं। अस्पताल के कचरे का अंधाधुंध निपटान और ऐसे कचरे के संपर्क से पर्यावरण तथा मानव स्वास्थ्य हेतु अत्यधिक गम्भीर खतरा है। इसके अन्तिम निपटान से पूर्व विशिष्ट उपचार और प्रबंधन की आवश्यकता होती है।

भारत के जैव चिकित्सीय अपशिष्ट (प्रबंधन तथा निर्वाह) नियम, 1988 के अनुसार, 'कोई भी अपशिष्ट जो मनुष्यों या जानवरों के निदान, उपचार या टीकाकरण के दौरान या अनुसंधान की गतिविधियों से संबंधित या जैविक उत्पादन या परीक्षण से उत्पन्न होता है, अत्यंत हानिकारक होता है।'

जैव चिकित्सा अपशिष्ट में मानव पशु शारीरिक अपशिष्ट उपचार उपकरण तथा उपचार और अनुसंधान की प्रक्रिया में स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं में प्रयुक्त अन्य सामग्रियां सम्मिलित हैं। यह अपशिष्ट अस्पतालों, नर्सिंग होम, पैथोलॉजी, प्रयोगशालाओं, रक्त बैंक आदि में निदान, उपचार व टीकाकरण के दौरान उत्पन्न होता है। इस प्रकार का अपशिष्ट पशु गृहों, पशु चिकित्सा संस्थाओं तथा घर में भी उत्पन्न होता है। यदि किसी रोगी की चिकित्सा परिचर्या घर पर ही की जा रही है, जैसे– डायलिसिस, इंसुलिन इंजेक्शन, ड्रेसिंग सामग्री इत्यादि।

जैव–चिकित्सीय अपशिष्ट का वर्गीकरण व श्रेणियां : लगभग 75 प्रतिशत से 90 प्रतिशत चिकित्सीय अपशिष्ट उतना ही हानि रहित होता है जितना कि कोई भी अन्य नगरपालिका अपशिष्ट। शेष 10 से 25 प्रतिशत अपशिष्ट अन्य प्रकार के कचरों से भिन्न होता है, जोकि मनुष्य तथा पशुओं के स्वास्थ्य के साथ–साथ पर्यावरण को भी हानि पहुंचाता है। यदि इन दोनों प्रकार के कचरों को एक साथ मिला दिया जाए तो पूरा कचरा हानिकारक हो जाता है।

जैव चिकित्सीय अपशिष्ट को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. संक्रामक
2. हानिकारक
3. कोशिका विषी
4. रासायनिक

1. संक्रामक : इस अपशिष्ट में रोगाणु, जीवाणु, विषाणु, परजीवी या किसी की सघनता और मात्रा इतनी हो सकती है कि क्षीण प्रतिरोधक क्षमता वाले व्यक्तियों में रोग पनप सकते हैं। संक्रामक रोग से पीड़ित किसी रोगी के संपर्क से जो अपशिष्ट उत्पन्न होता है, उसमें सूक्ष्म रोगाणु होते हैं जो उस रोग को अन्य व्यक्ति तक पहुंचा देते हैं। संक्रामक रोग इस प्रकार हैं–

- यकृतशोध (हेपेटाइटिस) ए, बी, सी, डी, और ई
- जठरांत्रशोथ और मियादी बुखार

टिप्पणी

- क्षयरोग
- ऑपरेशन के पश्चात् घावों का संक्रमण
- त्वचा और रक्त संक्रामक
- एड्स

इन रोगियों से उत्पन्न अपशिष्ट की श्रेणी में सम्मिलित हैं–

- संक्रमण रोगों से पीड़ित रोगियों की शल्यक्रिया और ऑटोप्सी करने से उत्पन्न अपशिष्ट (टिशू और रक्त अथवा अन्य संक्रमित शरीर के तरल पदार्थ के संपर्क में आ रही सामग्री व उपकरण)।
- अलग रखे गये वार्डों में संक्रमित रोगियों से उत्पन्न अपशिष्ट (मल–मूत्र, संक्रमित अथवा ऑपरेशन किए गये घावों की पट्टियां, मानव–रक्त अथवा अन्य तरल पदार्थों से सने कपड़े)।
- हीमोडायलेसिस पर रखे गये संक्रमित रोगियों के संपर्क से उत्पन्न अपशिष्ट (ट्यूब और फिल्टर, तौलिये, गाउन, एप्रेन, दस्ताने और प्रयोगशालाओं में पहने गए कोट)।
- प्रयोगशाला कार्य से जनित संक्रामक एजेंटों के कल्चर और स्टॉक्स। प्रयोगशालाओं के संक्रमित जीव।
- संक्रमित व्यक्ति अथवा जीवों के संपर्क में रहने वाले अन्य उपकरण अथवा सामग्री।

2. **हानिकारक** : यह खतरा तेजधार वाले जैव चिकित्सीय अपशिष्ट से हो सकता है जिसके कारण घाव हो सकता है। इनमें सुइयां, अधस्त्वक (हाइपोडर्मिक) सुइयां, छुरी और अन्य ब्लेड, चाकू, इन्फ्यूजन सैट, आरियां, टूटे कांच की शीशियां और नाखून आदि शामिल हैं। ये वस्तुएं संक्रमित हों अथवा न हों, परंतु इन्हें प्रायः स्वास्थ्य परिचर्या अपशिष्ट में सर्वाधिक खतरनाक माना जाता है। इनसे घाव हो जाते हैं। इनके परिणामस्वरूप जटिलताएं उत्पन्न हो जाती हैं।

   तेज धार वाला अपशिष्ट संक्रामक भी हो सकता है, जिससे निम्न संक्रामक रोग हो सकते हैं–

   - टिटनस
   - एड्स
   - हपेटाइटिस
   - सेटिटसीनिया
   - घाव संक्रमण

3. **कोशिका विषी** : कुछ औषधियां अथवा अन्य पदार्थ कोशिका को जख्मी कर सकते हैं। कोशिका विषी अपशिष्ट में औषधि तैयार करने और संचालन के दौरान संदूषित वस्तुएं सम्मिलित होती हैं जो इस प्रकार हैं–

   - सीरिंज
   - सुइयों की मापक शीशियां और पैकेजिंग

- ऐसी औषधियां जिनके उपयोग की तिथि समाप्त हो गई है।
- वार्डों से लौटा हुआ फालतू घोल और दवाइयां
- रोगियों का मल–मूत्र व उल्टी

प्रमुख कोशिका विषी पदार्थ हैं–

- कैंसर रोधी औषधियां
- तेज तेजाब तथा क्षार
- तेज फिनाइल
- रेडियोधर्मी सामग्री

कोशिका विषी पदार्थ निम्नलिखित प्रभाव डालते हैं–

- रोग प्रतिरोधक क्षमता का दब जाना
- रक्त की कमी हो जाना
- बिम्बाणु अल्पता हो जाना (थ्रोम्बोसाइटेलीनिया)
- व्रब (अल्सर)
- कैंसर
- गर्भ संबंधी असामान्यताएं
- अनुवांशिक असामान्यताएं

4. **रासायनिक** : खतरे वाले रसायन प्रायः प्रयोगशाला के अपशिष्ट अथवा अन्य पदार्थों से उत्पन्न होते हैं। इसमें सम्मिलित हैं–

- रसायन चिकित्सीय अपशिष्ट
- फोटोग्राफी के रसायन
- फार्मल्डीहाइड और अन्य रोगाणुनाशक
- भारी धातुएं (पारा)
- बेहोशी की फालतू गैसें
- अन्य जीव विष और जंग वाले पदार्थ
- विकिरणधर्मी रसायन
- रंगाई की सामग्री
- कीटनाशक (डी.डी.टी.)

रासायनिक अपशिष्ट में रोगनिदानकारी और परीक्षणात्मक कार्य से, सफाई, हाउसकीपिंग, संक्रमण–रहित करने वाली प्रक्रियाओं के कारण फेंके गये ठोस, द्रव एवं गैस रसायन होते हैं। रसायन अपशिष्ट में संक्षारण हो सकता है, जहर फैल सकता है। चमड़ी रोग और कैंसर आदि हो सकता है। यह निम्न प्रकार के होते हैं–

- विषाणु
- जंग खाने वाला

टिप्पणी

- ज्वलनशील
- प्रतिक्रियात्मक
- जीनीविशालु

यदि इस अपशिष्ट को उपयुक्त रूप से संसाधित किए बिना बहा दिया जाता है तो यह मल वाले पानी के जीवाणु के लिए भी हानिकारक होता है।

जैव–चिकित्सीय अपशिष्ट के स्रोत

जैव–चिकित्सीय कचरे के मुख्य स्रोत सरकारी और निजी अस्पताल, नर्सिंग होम, डिस्पेंसरी तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र होते हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न मेडिकल कॉलेज, रिसर्च सेन्टर, पराचिकित्सक सेवाएं, ब्लड बैंक, मुर्दाघर, शव–परीक्षा केन्द्र, पशु चिकित्सा कॉलेज, पशु रिसर्च सेंटर, स्वास्थ्य सम्बन्धी उत्पादन केन्द्र तथा विभिन्न जैव चिकित्सीय शैक्षिक संस्थान भी बड़ी मात्रा में जैव चिकित्सीय अपशिष्ट उत्पन्न करते हैं।

इनके अतिरिक्त सामान्य चिकित्सक, दंत चिकित्सा क्लीनिकों, पशुघरों, कसाईघरों, रक्तदान शिविरों, एक्यूपंक्चर विशेषज्ञों, मनोरोग क्लीनिकों, अंत्येष्टि सेवाओं, टीकाकरण केन्द्रों तथा विकलांगता शैक्षिक संस्थानों में भी जैव चिकित्सीय कचरा निकलता है और यह कबाड़ियों के हाथों में पहुंचकर बहुत अधिक खतरनाक हो जाता है।

जैव चिकित्सा अपशिष्ट चार प्रकार के होते हैं–

- **पीला अपशिष्ट** : इसमें पशु अपशिष्ट, मिट्टी का कचरा एक्सपायर्ड दवाइयां, रासायनिक कचरा, रासायनिक तरल अपशिष्ट, सूक्ष्म जीव अपशिष्ट, जैव प्रौद्योगिकी और अन्य नैदानिक प्रयोगशाला अपशिष्ट आदि सम्मिलित हैं।
- **लाल अपशिष्ट** : इसमें दूषित अपशिष्ट, ट्यूब, सीरिंज, पेशाब की थैलियां, दस्ताने इत्यादि आते हैं।
- **नीला अपशिष्ट** : इसमें नुकीली धातुओं वाले अपशिष्ट आते हैं।
- **श्वेत अपशिष्ट** : इसमें कांच से बने पदार्थों के अपशिष्ट सम्मिलित हैं।

जैव चिकित्सा अपशिष्ट के विभिन्न प्रकारों के उपचार तथा निपटान के सामान्य तरीके निम्नलिखित हैं–

- **पीले अपशिष्ट** : इनका उपचार एवं निपटान भस्मीकरण, प्लाज्मा पायरोलिसिस तथा गहरे गड्ढे में दफनाकर किया जाता है।
- **लाल अपशिष्ट** : इस प्रकार के अपशिष्टों का उपचार व निपटान आटोक्लेविंग, माइक्रोवेविंग तथा रासायनिक कीटाणु शोधन द्वारा किया जाता है।
- **नीली श्रेणी के कांच के अपशिष्ट** : इनका उपचार व निपटान पुनःचक्रीकरण के पश्चात् धुलाई, कीटाणुनाशक शोधन द्वारा किया जाता है।
- **श्वेत श्रेणी के नुकीले अपशिष्ट** : इस प्रकार के अवशिष्टों का उपचार व निपटान कीटाणुशोधन और कतरन, फाउंड्री/ऐन्कैप्सूलेशन के माध्यम से कंक्रीट के गड्ढे में दफनाने एवं पुनःचक्रीकरण के पश्चात् कीटाणुशोधन से किया जाता है।

जैव चिकित्सीय अपशिष्ट से रोग फैलने के रास्ते

- सांस के द्वारा
- मुख के द्वारा
- घावों के संक्रमण द्वारा
- श्लेष्मा झिल्लियों द्वारा सोख लेने पर
- चोट तथा इसके बाद संक्रमण होने पर

जैव चिकित्सीय अपशिष्ट निपटान के नियम

जैव चिकित्सीय अपशिष्ट का उचित प्रकार से निपटान करने के लिए कानून तो बने हैं, लेकिन उनका पालन उचित प्रकार से नहीं होता है। इसके लिए केन्द्र सरकार ने पर्यावरण संरक्षण के लिए जैव चिकित्सीय अपशिष्ट (प्रबंधन व संचालन) नियम 1992 बनाया है। इस अधिनियम के अनुसार निजी व सरकारी अस्पतालों को इस तरह के चिकित्सीय जैविक अपशिष्ट को खुले में या सड़कों पर नहीं फेंकना चाहिए। न ही इस कचरे को नगरपालिका के कचरे में डालना चाहिए। इसे स्थानीय कूड़ाघरों में भी निष्कासित नहीं करना चाहिए क्योंकि इस कचरे में फेंकी जाने वाली सेलाइन बोतलें और सिरिंज कबाड़ियों के हाथों में होती हुई अवैध पैकिंग का काम करने वाले लोगों तक पहुंच जाती हैं, जहां इन्हें साफ कर नई पैकिंग में बाजार में बेच दिया जाता है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत, इस जैविक कचरे को खुले में डालने पर अस्पतालों के खिलाफ जुर्माने व सजा का प्रावधान है। कूड़ा निस्तारण के उपाय नहीं करने पर पांच साल की कैद और एक लाख रुपये जुर्माने का प्रावधान है। इसके बाद भी यदि आवश्यक उपाय नहीं किए जाते हैं, तो प्रतिदिन पांच हजार रुपये का जुर्माना वसूलने का प्रावधान है।

नियम के अनुसार, अस्पतालों में काले, पीले व लाल रंग के बैग रखने चाहिए। ये बैग अलग तरीके से बनाये जाते हैं। इनकी पन्नी में एक प्रकार का केमिकल मिला होता है जो जलने पर नष्ट हो जाता है, तथा दूसरे पॉलीथीन बैगों की भांति जलने पर सिकुड़ता नहीं है। इसलिए इसे बायोमेडिकल डिस्पोजेबल बैग भी कहा जाता है।

वास्तव में, विभिन्न प्रकार के जैव चिकित्सा अपशिष्ट को अलग–अलग एकत्रित करने वाले बैगों या डिब्बों को अलग रंग दिया जाता है ताकि इसके निपटान में सुगमता हो। लाल बैग में सूखे कचरे (रुई, गन्दी पट्टी, प्लास्टर) को ही डाला जाता है। पीले बैग में गीला कचरा (बायोप्सी, मानव अंगों का कचरा) इत्यादि डालना चाहिए तथा काला बैग सूइयां, ब्लेड, कांच की बोतलें, इंजेक्शन आदि हेतु प्रयुक्त होता है।

अस्पताल में एक रजिस्टर होना चाहिए जिसमें जैव चिकित्सा अपशिष्ट ले जाने वाले कर्मचारी के हस्ताक्षर करवाने चाहिए। अस्पतालों से निकलने वाले उस कचरे को जैव चिकित्सा अपशिष्ट उपचार संयंत्र में भेजा जाता है, जहां पर तीनों बैगों के कूड़ों को हाइड्रोक्लोराइड अम्ल से साफ किया जाता है जिससे यह कीटाणुरहित हो जाता है। आटोब्लेड सलेक्टर से कूड़े में से निकली सुइयों को काटा जाता है, जिससे कि वे पुनः उपयोग में न लायी जा सकें। इसके बाद कूड़े में से कांच, लोहा, प्लास्टिक जैसी वस्तुओं को अलग किया जाता है। शेष बचे हुए कूड़े–कचरे को संयंत्र में डालकर उसमें केमिकल मिलाकर नष्ट कर दिया जाता है। ऐसा करने से जैव चिकित्सा अपशिष्ट के दुरुपयोग और इससे पर्यावरण को होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है।

टिप्पणी

जैव चिकित्सीय अपशिष्ट निपटान में जन साधारण की भूमिका

जैव चिकित्सीय अपशिष्ट निपटान एवं प्रबंधन में जनसाधारण की अहम भूमिका होती है। जो निम्नलिखित है–

- कचरे को बन्द वाहनों में ले जाना चाहिए। मिश्रित कचरे को अलग–अलग करके निर्धारित प्रक्रिया के तहत उसका निस्तारण करना चाहिए।
- कचरे को जलाकर नष्ट करने की बजाय पुनःचक्रीकरण करने की व्यवस्था होनी चाहिए।
- जैव चिकित्सीय और औद्योगिक कचरे को नगरीय कचरे में नहीं मिलाना चाहिए।
- स्थान–स्थान पर कचरा पात्र रखे होने चाहिए। जहां से कचरा नियमित रूप से उठाने की व्यवस्था हो।
- ठोस कचरा प्रबंधन की जानकारी के लिए जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।
- लैंडफिल साइट पर जैव चिकित्सीय अपशिष्ट नहीं डालना चाहिए।
- अस्पतालों को भी जैव चिकित्सीय अपशिष्ट निपटान के नियमों का पूर्णतः पालन करना चाहिए।
- उल्लंघन की स्थिति में व्यक्ति का कर्तव्य होता है कि वह अधिकृत व्यक्ति को सूचित करे जिससे कि अपराधी के विरुद्ध कार्यवाही संभव हो सके।

अपनी प्रगति जांचिए

3. पानी की कमी को पूरा करने के लिए क्या आवश्यक है?

   (क) कुएं खोदना (ख) नदियों की सफाई

   (ग) पानी का संरक्षण (घ) कम पानी पीना

4. किसके अनुसार, 1980 के दशक के दौरान वैश्विक स्तर पर हर 17 दिनों में एक नया परमाणु रिएक्टर औसत रूप से शुरू हुआ?

   (क) विश्व परमाणु संघ के (ख) राष्ट्र संघ के

   (ग) विश्व विज्ञान संघ के (घ) संयुक्त राज्य संघ के

2.4 सतत विकास की प्राप्ति

सतत विकास की प्राप्ति में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की अहम भूमिका रहती है। सतत विकास को प्राप्त कर पाना अपने आप में बहुत बड़ी उपलब्धि है।

सतत विकास को सफल बनाने में राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की भूमिका

पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण संरक्षण एवं सतत विकास को बढ़ावा देने के लिये सरकारों की भूमिका काफी आलोचनात्मक है। विभिन्न पर्यावरणीय मुद्दों पर कार्य करने के

टिप्पणी

लिये संयुक्त राष्ट्र द्वारा राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय सरकारों तथा सिविल सोसाइटी द्वारा कई पर्यावरण संबंधी संस्थाएं एवं संगठन स्थापित किए गए हैं। कोई भी पर्यावरणीय संगठन एक ऐसा संगठन होता है, जो पर्यावरण को किसी प्रकार के दुरूपयोग तथा आक्रमण के खिलाफ सुरक्षित करता है। साथ ही ये संगठन पर्यावरण की देखभाल तथा विश्लेषण भी करते हैं।

इन लक्ष्यों को पाने के लिए प्रकोष्ठ भी बनाते हैं। पर्यावरणीय संगठन सरकारी संगठन हो सकते हैं। गैर सरकारी संगठन भी हो सकते हैं या ट्रस्ट भी हो सकते हैं। पर्यावरणीय संगठन वैश्विक राष्ट्रीय या स्थानीय हो सकते हैं। यह इकाई अग्रणीय पर्यावरणीय संगठनों के संबंध में सूचना प्रदान करती है। ये संगठन सहकारी या सरकार के बाहर के राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के संरक्षण तथा विकास के लिये कार्य करते हैं।

भारत में पर्यावरणीय संस्थाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय सभ्यता के आरम्भ से ही पर्यावरण को सुरक्षित रखने की जागरूकता लोगों में मौजूद थी। वैदिक एवं वैदिककाल के बाद का इतिहास इस बात का साक्षी है लेकिन आधुनिक काल में विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद से, आर्थिक प्रगति को उच्च प्राथमिकता मिलने के कारण, पर्यावरण कुछ कम महत्वपूर्ण स्थान पर रह गया। केवल 1972 में पर्यावरणीय योजना एवं सहयोग के लिए राष्ट्रीय कमेटी (National Committee of Environment and Forest NCEPC) के लिये कदम उठाए गए जो धीरे–धीरे पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के रूप में परिवर्तित हुआ। शुरुआत में भारत के संविधान में पर्यावरण को बढ़ावा देने या उसके संरक्षण के लिये किसी प्रकार के प्रावधान नहीं थे लेकिन 1977 में हुए 42वें संविधान संशोधन में कुछ महत्वपूर्ण धाराएं जोड़ी गईं जो सरकार पर एक स्वच्छ एवं सुरक्षित पर्यावरण प्रदान करने की जिम्मेदारी सौंपती हैं।

राष्ट्रीय पर्यावरणीय एजेंसियां

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड एवं वन्य जीवन के लिए भारतीय बोर्ड ही मुख्य राष्ट्रीय पर्यावरण एजेंसियां हैं।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय देश में पर्यावरण एवं वन संबंधी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की योजना बनाने, उसका प्रचार करने, समन्वय करने के लिये केन्द्रीय सरकार के प्रशासनिक तंत्र में एक नोडल एजेंसी है। इस मंत्रालय द्वारा किए जाने वाले कार्यों में भारत की वनस्पति तथा जीव जन्तुओं को संरक्षण एवं सर्वेक्षण, वनों एवं बीमा क्षेत्रों का सर्वेक्षण एवं संरक्षण, प्रदूषण नियंत्रण तथा निवारण, वनरोपण को बढ़ावा तथा अवक्रमण को कम करना सम्मिलित हैं। यह भारत के राष्ट्रीय उद्यानों के प्रशासन के लिये भी जिम्मेदार है। इसमें इस्तेमाल होने वाले मुख्य साधन सर्वेक्षण, पर्यावरणीय प्रभावों का मूल्यांकन, प्रदूषण नियंत्रण, पुनरुत्पादन कार्यक्रम, संगठनों का समाधान खोजने के लिये प्रशिक्षण, पर्यावरणीय सूचना एवं वितरण तथा देश की जनसंख्या के सभी भागों में पर्यावरणीय जागरूकता फैलाना है। यह मंत्रालय यूनाइटेड नेशनल पर्यावरण कार्यक्रम (United Nations Environment Programme-UNEP) के लिए भी नोडल एजेंसी है।

टिप्पणी

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड एक वैधानिक संगठन है। जिसका गठन सितम्बर 1974 में जल कानून प्रदूषण का नियंत्रण एवं निवारण के तहत हुआ था इसके अलावा CBCB को वायु कानून (प्रदूषण नियंत्रण एवं निवारण) 1981 के तहत क्षमताएं एवं कार्य भी सौंपे गए थे। यह 1986 के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण कानून के प्रयोजनों के लिये पर्यावरण एवं वन मंत्रालय को तकनीकी सेवाएं प्रदान करता है।

वायु गुणवत्ता का ध्यान रखना वायु गुणवत्ता के प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण भाग है। राष्ट्रीय परिवेश वायु गुणवत्ता मॉनीटरन प्रोग्राम का गठन वायु गुणवत्ता के वर्तमान स्तर का निर्धारण करने, कल कारखानों तथा अन्य स्रोतों में से वायु प्रदूषकों के उत्सर्जन का नियंत्रण जैसे उद्देश्यों के लिए हुआ था। यह उद्योगों को स्थापित करने तथा नगर योजनाओं के लिये आवश्यक वायु पृष्ठभूमि भी प्रदान करता है।

अलवण (शुद्ध) जल एक सीमित संसाधन है, जो कृषि, उद्योगों, वन्य जीव जन्तुओं एवं मत्स्य पालन तथा मानव जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। भारत नदियों से परिपूर्ण देश है। परन्तु यहां पर असंख्य झीलें, तालाब हैं, जो पेयजल के मुख्य स्रोत हैं। यहां तक कि बिना पानी के शोधन किए भी अधिकांश नदियों में मानसून की वर्षा का पानी एकत्र होता है, जो साल के तीन महीनों तक ही सीमित है। अतः वर्षा के बाकी महीनों में ये सूख जाती है। अकसर इन शहरों, कस्बों तथा उद्योगों से निष्कासित गन्दा पानी ही बहता है जो हमारे कम हो रहे जल स्रोतों की गुणवत्ता पर और खतरा पैदा करता है। भारत की संसद ने अपनी बुद्धिमता के अनुसार जल कानून 1974 इसलिए बनाया था ताकि हमारे जल भंडारों की स्वास्थ्यपूर्ण क्षमता को सुरक्षित रखा जा सके। CBCB का एक मत यह है कि जल प्रदूषण से संबंधित तकनीकी तथा सांख्यिकी आंकड़ों को संग्रहित करो, उन्हें मिलाओ और फिर उनका प्रसार करो। अतः जल गुणवत्ता मॉनीटरन (Water Quality Monitoring-WQM) एवं निगरानी दोनों काफी महत्वपूर्ण हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय बोर्ड के कार्य

- केन्द्रीय सरकार को जल एवं वायु प्रदूषण के नियंत्रण एवं निवारण से जुड़े किसी भी मुद्दे पर एवं वायु की गुणवत्ता को बढ़ाने के बारे में सलाह देना।
- जल एवं वायु प्रदूषण के नियंत्रण, निवारक तथा कटौती के लिये राष्ट्रव्यापी कार्यक्रमों की योजना बनाना एवं संचालन करना।
- राज्य बोर्डों की गतिविधियों का समन्वयन एवं उनके आपसी मतभेदों को दूर करना।
- राज्य बोर्डों की तकनीकी सहायता करना एवं दिशा निर्देश प्रदान करना, वायु एवं जल प्रदूषण से संबंधित समस्याएं एवं उनके नियंत्रण, निवारण तथा कटौती हेतु शोध क्रियान्वित करना।
- जल एवं वायु प्रदूषण के नियंत्रण, निवारण तथा कटौती से संबंधित कार्यक्रमों से जुड़े लोगों के प्रशिक्षण की योजना बनाना एवं व्यवस्था करना।
- जल एवं वायु प्रदूषण के नियंत्रण, निवारण तथा कटौती के प्रोग्राम के बारे में एक व्यापक जन जागरूकता लाने के लिये एक जनसंचार की व्यवस्था प्रदान करना।

पर्यावरणीय शासन एवं राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

टिप्पणी

अब्रेला एक्ट पर्यावरणीय संरक्षण एजेंसी है। 1986 ने पहले के सभी प्रयोजनों को और मजबूती प्रदान की। देश के औद्योगिक वाहन संबंधित एवं ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के लिये विशेष प्रावधान किए गए। भारत में राज्यों की अपनी स्वयं कोई पर्यावरण नीति नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर बनाई गई नीतियों को ही अपनाते हैं। बस इसमें उस राज्य की स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार थोड़े–बहुत परिवर्तन कर लिये जाते हैं। केन्द्र सरकार भी राज्य सरकारों को विभिन्न परिवर्तनीय मुद्दों पर दिशा–निर्देश देती रहती है।

वन्य जीवों के लिये भारतीय बोर्ड

देश में आई.बी.एम.एल. (IBML-Indian Board for Wildlife) वन्य जीव संरक्षण के क्षेत्र में एक अहम सलाहकार संस्था है एवं इसके अध्यक्ष भारत के माननीय प्रधानमंत्री होते हैं। 21वीं बैठक 21 जनवरी, 2002 को नई दिल्ली में हुई जिसमें भारत के माननीय प्रधानमंत्री ने अध्यक्षता की थी।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (Ministry of Human Resource Development-MHRD)

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (1985-2020), वर्तमान में शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार का एक प्रमुख केन्द्रीय मंत्रालय है। यह मंत्रालय, पूर्व में शिक्षा मंत्रालय (25 सितंबर, 1985), भारत में मानव संसाधनों के विकास के लिए उत्तरदायी है। मंत्रालय निम्न प्रमुख विभागों में विभाजित है–

- विश्वविद्यालय एवं अन्य शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा
- तकनीकी शिक्षा
- नियोजन
- यूनेस्को
- एकीकृत वित्त विभाग

मंत्रालय निम्न स्वरूपों में कार्यरत है–

- शिक्षा और साक्षरता विभाग
- उच्च शिक्षा विभाग

शिक्षा और साक्षरता विभाग : यह विभाग देश में स्कूली शिक्षा तथा साक्षरता विकास हेतु उत्तरदायी होता है। यह 'शिक्षा के सार्वभौमीकरण' और भारत के युवाओं में नागरिकता के लिए उच्च मानकों के विकास हेतु कार्य करता है।

उच्च शिक्षा विभाग : यह विभाग माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का प्रभारी है। विभाग को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 का अधिकार प्राप्त है। उच्चतर शिक्षा विभाग संयुक्त राज्य अमेरिका एवं चीन के पश्चात् विश्व की सबसे बड़ी उच्चतर शिक्षा प्रणाली की देखरेख करता है।

यह मंत्रालय शिक्षा, खेलकूद आदि कार्यक्षेत्रों की देखभाल करता है। मानव संसाधन विकास का सार शिक्षा है, जो देश के सामाजिक, आर्थिक ताने–बाने में संतुलन के लिए उल्लेखनीय और उपचारी भूमिका निभाता है। चूंकि भारत के नागरिक राष्ट्र के

टिप्पणी

अत्यधिक बहुमूल्य संसाधन हैं, इसलिए हमारे सुदृढ़ राष्ट्र को जीवन की उत्तम गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए बुनियादी शिक्षा के रूप में पोषण व देखभाल की आवश्यकता है। इसके लिए हमारे नागरिकों के समग्र विकास की आवश्यकता है, जिसे शिक्षा में सुदृढ़ आधार बनाकर प्राप्त किया जा सकता है। इस मंत्रालय का सृजन भारत सरकार नियम 1961 के 174वें संशोधन के माध्यम से किया गया था।

स्कूली शिक्षा और साक्षरता विभाग का मुख्य केन्द्र 'शिक्षा के वैश्वीकरण' और हमारे युवाओं को बेहतर नागरिक बनाना है। इसके लिए विभिन्न नई योजनाएं और पहल शुरू की गई है और स्कूलों में छात्रों की बढ़ती हुई संख्या इन योजनाओं की सफलता को भी दर्शाती है।

दूसरी ओर उच्च शिक्षा विभाग विश्व स्तर की उच्च शिक्षा और अनुसंधान देश में लाने लगा है जिससे भारतीय छात्रों को अंतर्राष्ट्रीय मंचों का सामना करने में कठिनाई न हो। भारतीय छात्रों को विश्व ज्ञान का लाभ प्राप्त करने में सहायता करने के लिए सरकार ने संयुक्त उद्यम स्थापित किए हैं और समझौता ज्ञापनों पर भी हस्ताक्षर किए हैं।

उद्देश्य

मानव संसाधन विकास कार्यालय के उद्देश्य निम्न हैं–

- शिक्षा हेतु राष्ट्रीय नीति बनाना तथा इसका अक्षरशः पालन सुनिश्चित करना।
- संपूर्ण देश में नियोजित विकास (उन क्षेत्रों सहित जहां लोगों की शिक्षा तक पहुंच नहीं है), शिक्षा का विकास और शैक्षिक संस्थानों की गुणवत्ता में सुधार करना।
- गरीबों, महिलाओं और अल्पसंख्यकों जैसे वंचित समूहों पर विशेष ध्यान देना।
- समाज के वंचित वर्ग के पात्र छात्रों को छात्रवृत्ति, ऋण अनुदान आदि के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करना।
- देश में शिक्षा के अवसर बढ़ाने के उद्देश्य से यूनेस्को तथा विदेशी सरकारों के साथ मिलकर कार्य करने सहित, शिक्षा क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देना।

राष्ट्रीय हरित अभिकरण (National Green Tribunal-NGT)

पर्यावरण सम्बन्धी कानूनी अधिकारों को लागू करने एवं व्यक्तियों व सम्पत्तियों की क्षतिपूर्ति हेतु सहायता देने के लिए राष्ट्रीय हरित अधिकरण (National Green Tribunal-NGT) की स्थापना 18 अक्टूबर, 2010 को राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम (National Green Tribunal Act) 2010 के अन्तर्गत की गई थी। इसमें पर्यावरण संरक्षण, वनों तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों से सम्बंधित मामलों के प्रभावी तथा त्वरित निपटारे भी किए जाते हैं। राष्ट्रीय हरित अधिकरण की स्थापना के साथ भारत एक विशेष पर्यावरण न्यायाधिकरण स्थापित करने वाला विश्व का तीसरा देश बन गया। इसके पहले आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में ऐसे निकायों की स्थापना की गई थी। यह अधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अंतर्गत तथा प्रक्रिया द्वारा बाधित नहीं है। अपितु यह नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है। एन.जी.टी. का मुख्य उद्देश्य

पर्यावरण संबंधी मुद्दों का शीघ्रता (6 महीने के अंदर) से निपटारा करना है जिससे राष्ट्र की अदालतों में लगे मुकदमों के बोझ को कम किया जा सके। इसका मुख्य कार्यालय दिल्ली में है। इसकी चार क्षेत्रीय शाखाएं पुणे, भोपाल, चेन्नई तथा कलकत्ता में स्थापित की गई हैं।

टिप्पणी

राष्ट्रीय हरित अधिकरण संरचना

- अध्यक्ष
- न्यायिक सदस्य
- विशेषज्ञ सदस्य

इस अधिकरण में निम्न कानून से संबंधित बातों को चुनौती दी जा सकती है–

- जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974
- जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1977
- वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980
- पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986
- लोक दायित्व बीमा अधिनियम, 1991
- जैव विविधता अधिनियम, 2002

शक्तियां तथा अधिकार क्षेत्र

- अधिकरण का न्याय क्षेत्र बेहद विस्तृत है और यह उन समस्त मामलों की सुनवाई कर सकता है जिनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण सम्मिलित हो। इसमें पर्यावरण से संबंधित कानूनी अधिकारों को लागू करना भी सम्मिलित है।
- एक वैधानिक निकाय होने के कारण एन.जी.टी. के पास अपीलीय क्षेत्राधिकार है जिसके तहत वह सुनवाई कर सकता है।
- नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 से उल्लिखित न्यायिक प्रक्रिया का पालन करने के लिए अधिकरण बाध्य नहीं है।
- किसी भी निर्णय को देते समय यह आवश्यक है कि एन.जी.टी. उस पर सतत विकास, निवारक और प्रदूषक भुगतान आदि सिद्धान्त अवश्य लागू करे।
- अधिकरण पर्यावरण प्रदूषण या किसी अन्य पर्यावरणीय क्षति के पीड़ितों को क्षतिपूर्ति प्रदान कर सकता है।
- क्षतिग्रस्त संपत्तियों की बहाली अथवा उसका पुनर्निर्माण करवा सकता है।
- एन.जी.टी. अधिनियम में नियमों का पालन न करने पर दंड का प्रावधान भी किया गया है जो इस प्रकार है–

  – एक निश्चित समय के लिए कारावास जिसे अधिकतम तीन वर्षों के लिए बढ़ाया जा सकता है।

  – निश्चित आर्थिक दंड जिसे 10 करोड़ रुपये तक बढ़ाया जा सकता है।

  – कारावास और आर्थिक दंड दोनों

- एन.जी.टी. द्वारा दिये गये आदेश के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में 90 दिनों के अन्दर अपील की जा सकती है।

एन.जी.टी. का महत्व

टिप्पणी

- विगत वर्षों में एन.जी.टी. ने पर्यावरण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और जंगलों में वनों की कटाई से लेकर अपशिष्ट प्रबन्धन आदि के लिए सख्त आदेश पारित किए हैं।
- एन.जी.टी. ने पर्यावरण के क्षेत्र में न्याय के लिए एक वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र स्थापित करके नई दिशा प्रदान की है।
- इससे उच्च न्यायालयों में पर्यावरण सम्बन्धी मामलों का भार कम हुआ है।
- पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने हेतु एन.जी.टी. एक अनौपचारिक, मितव्ययी एवं शीघ्रता से कार्य करने वाला तंत्र है।
- यह पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाली गतिविधियों को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- चूंकि अधिकरण का कोई भी सदस्य पुनः नियुक्ति के योग्य नहीं होता है इसलिए वह भयभीत हुए बिना स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय सुना सकता है।

भारत के संविधान में 1976 में संशोधनों के द्वारा दो महत्वपूर्ण अनुच्छेद 48(ए) तथा 51(ए) सम्मिलित किए गये। इससे पूर्व संविधान में पर्यावरण के सम्बंध में कोई प्रावधान नहीं था। 48(ए) राज्य सरकारों को निर्देश देता है कि वे पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार सुनिश्चित करें तथा देश के वनों और वन जीवों की रक्षा करें। 51(ए) में वर्णित है कि नागरिकों का कर्तव्य है कि वे पर्यावरण की रक्षा करें, इसका संवर्द्धन करें तथा समस्त जीवधारियों के प्रति दया का भाव रखें।

राज्यों ने पर्यावरण की रक्षा हेतु निम्न कदम उठाये थे–

- उड़ीसा नदी प्रदूषण निषेध कानून, 1953
- महाराष्ट्र जल प्रदूषण निषेध कानून, 1969
- वन्य जीव संरक्षण कानून, 1972
- जल प्रदूषण नियंत्रण व रोकथाम कानून, 1974
- राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय अधिकार कानून, 1997
- जैव विविधता अधिनियम, 2002

सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली में सार्वजनिक वाहनों को सी.एन.जी. से चलाने के निर्देश दिये हैं क्योंकि वाहनों के कारण अत्यधिक वायु प्रदूषण होता है, जिससे मनुष्य के जीवन के अधिकार का हनन होता है। जनहित याचिका की सहायता से पर्यावरण को बचाने के प्रयास पिछले कई दशकों से किए गये है।

चर्च ऑफ गॉड इन इंडिया बनाम के.के.आर. मजेस्टिक कॉलोनी वेलफेयर याचिका में ध्वनि प्रदूषण पर न्यायालय ने सख्ती दिखाई और कहा कि ध्वनि प्रदूषण के कारण अनुच्छेद 21 में दिए गये अधिकार का उल्लंघन होता है।

एन.जी.टी. के महत्वपूर्ण निर्णय इस प्रकार हैं–

- मेघालय में कोयला खनन पर प्रतिबंध (अगस्त, 2014)
- रेलवे स्टेशन पर साफ सफाई
- रेलवे ट्रैक के किनारे बाड़ लगाना
- केरल में बालू खनन पर प्रतिबंध
- प्लास्टिक के प्रयोग पर प्रतिबंध

अंततः यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय हरित अधिकरण ने पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेकानेक ऐतिहासिक फैसले लेकर मानव कल्याण किया है तथा यह निरन्तर अपने कार्य क्षेत्र को बढ़ाते हुए कार्यरत है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरणीय कार्यक्रम (UNEP)

UNEP का गठन यूनाइटेड नेशन्स जनरल असेंबली द्वारा यूनाइटेड नेशन्स की स्टॉकहोम, स्वीडन में उसी वर्ष मानव पर्यावरण के ऊपर हुई कॉन्फ्रेंस के परिणामस्वरूप हुआ। 1992 में रियो डी जेनेरियो में पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र क्रांफ्रेंस हुई।

UNEP ने अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय परंपराओं को विकसित करने में एक अहम भूमिका निभाई है। इसके अलावा UNEP पर्यावरणीय गैर सरकारी संगठनों (NGO) के साथ कार्य करने में राष्ट्रीय सरकार को योजनाओं के विकास एवं क्रियान्वयन तथा आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने में भी सक्रिय रहा है।

UNEP के कार्यों का क्रियान्वयन निम्न सात विभागों द्वारा किया जाता है–

- जल्द चेतावनी एवं उसका आकलन
- पर्यावरणीय नीति क्रियान्वयन
- तकनीक, उद्योग एवं अर्थशास्त्र
- क्षेत्रीय सहयोग
- पर्यावरणीय कानून का सम्मेलन
- वैश्विक पर्यावरण सुविधा सहयोग
- संचार एवं जन सूचना

UNEP के कई अहम कार्यों में से 'विश्व को स्वच्छ रखो' अभियान के द्वारा विश्व में इस बात की जागरूकता फैलाने का प्रयास किया जाता है कि हमारी आधुनिक जीवनशैली के क्या दुष्प्रभाव हैं। अंतर्राष्ट्रीय मार्गों का प्रदूषण, सीमा पार का वायु प्रदूषण तथा हानिकारक रसायनों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार जैसे मुद्दों पर दिशा निर्देश तथा संधियों के विकास में UNEP की काफी मदद है।

आर्थिक सहायता

UNEP को अपने कार्यक्रमों के लिए आवश्यक आर्थिक सहायता पर्यावरण कोष से प्राप्त होती है जिसका रख रखाव सदस्य सरकारों के स्वैच्छिक सहयोग से अधिक ट्रस्टी कोषों के सहयोग से तथा यूनाइटेड नेशन्स के नियमित बजट में से छोटे से सहयोग से किया जाता है।

टिप्पणी

विश्व स्वास्थ्य संगठन

WHO के संविधान के अनुसार इसका उद्देश्य है "सभी लोगों को स्वास्थ्य की प्रणाली उच्चतम संभावित स्तर पर उपलब्ध हो।" इसका मुख्य कार्य है–रोगों से लड़ाई, विशेषकर संक्रामक रोगों से एवं विश्व के लोगों में सामान्य स्वास्थ्य को बढ़ावा देना। इसका सर्वप्रथम गठन प्रथव विश्व स्वास्थ्य दिवस (7 अप्रैल, 1948) को हुआ था। तब इसका समर्थन 26 सदस्य देशों द्वारा किया गया था। WHO में 93 सदस्य देश हैं। WHO को सदस्य देशों से एवं दानकर्ताओं से सहयोग व आर्थिक सहायता मिलती है।

गतिविधियां

सार्स सीवीयर ऐक्यूट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम, मलेरिया, स्वाइन फ्लू एवं एड्स जैसी संक्रामक बीमारियों को फैलने से बचाने का ध्यान रखना एवं इन रोगों के इलाज व रोकथाम के लिए कार्यक्रम प्रवर्तित करना। चेचक के लिए कई दशकों तक लड़ने के बाद 1980 में WHO ने घोषणा की कि यह बीमारी पूरी तरह से मिटा दी गई है, जो मानव प्रयास द्वारा पूरी तरह से मिटा दी गई। WHO का लक्ष्य है अगले कुछ वर्षों में पोलियो को भी जड़ से मिटा देना।

क्षेत्रीय कार्यालय

- अफ्रीका का क्षेत्रीय कार्यालय (Regional office for Africa, AFRO)
- यूरोप का क्षेत्रीय कार्यालय (Regional office for Europe, EURO)
- दक्षिण पूर्व एशिया का क्षेत्रीय कार्यालय (Regional office for South East Asia, AEARO)
- अफ्रीका का क्षेत्रीय कार्यालय (Regional office for Africa, AFRO)
- पूर्व भूमध्य सागर का क्षेत्रीय कार्यालय (Regional office for Easten Meditenanean)
- पश्चिमी पैसीफिक का क्षेत्रीय कार्यालय (Regional office for Western Pacific, WPRO)
- अमेरिका का क्षेत्रीय कार्यालय (Regional office for America, AMRO)

संयुक्त राष्ट्र का खाद्य एवं कृषि संगठन

यह यूनाइटेड नेशन्स की एक विशिष्ट एजेंसी है, जो भुखमरी को मिटाने के अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों की अगुआई करती है। विकसित एवं विकासशील दोनों तरह के देशों की सेवा करते हुए यह एक निष्पक्ष फोरम के रूप में कार्य करती है। यह ज्ञान एवं सूचना का एक स्रोत भी है। कृषि को आधुनिक बनाने एवं मत्स्य पालन तथा वनरोपण के कार्यों सभी के लिए खाद्य सुरक्षा एवं सुपोषण सुनिश्चित करने को हम हिन्दी में कह सकते हैं कि 'सभी को रोटी मिले'।

यूनाइटेड नेशन्स फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (UNFCCC)

एक दशक पहले हुए संयुक्त राष्ट्र के इस जलवायु परिवर्तन सम्मेलन UNFCCC में अधिकांश देश एक अंतर्राष्ट्रीय संधि में सम्मिलित हुए। एकमत होकर सोचना व कार्य करना प्रारंभ किया कि वैश्विक ऊष्मन को कम करने के लिये क्या–क्या किया जाना

चाहिए एवं तापमान बढ़ने के अपरिहार्य कारणों से किस तरह तालमेल बैठाकर चलना चाहिए। इस विभाग में असंख्य संसाधन शामिल हैं।

टिप्पणी

क्योटो प्रोटोकॉल

क्योटो प्रोटोकॉल एक अंतर्राष्ट्रीय तथा कानूनी रूप से बाध्य करने वाला समझौता है। जिसके द्वारा विश्वभर में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम किया जा सकता है। यह 16 फरवरी, 2005 से लागू हुआ है।

दायित्व एवं सुभेधता

1. सम्मेलन औद्योगिकीकरण देशों पर जलवायु परिवर्तन से लड़ने के लिए काफी दबाव डालता है क्योंकि देश में भूत और वर्तमान के ग्रीन हाउस उत्सर्जन के प्रमुख स्रोत हैं। इन देशों को इस प्रकार के उत्सर्जन को कम करने हेतु प्रत्येक संभावित प्रसार को करने के लिए प्रेरित किया जाता है।
2. इन प्रगतिशील देशों एवं परिवर्तनकारी अर्थव्यवस्थाओं से आशा की गई थी कि सन् 2000 तक ये अपने देशों का उत्सर्जन स्तर कम करेंगे।
3. औद्योगिक देश सम्मेलन के अंतर्गत विकासशील देशों में होने वाली जलवायु परिवर्तन की गतिविधियों को आर्थिक समर्थन प्रदान करने हेतु सहमत हो गये हैं। सम्मेलन के द्वारा ऋण एवं दान की एक प्रणाली भी बनाई गई है और उसे वैश्विक पर्यावरण सुविधा (Global Environment Facility) द्वारा प्रतिबंधित किया जाता है।

हेली (HELI)

पर्यावरण संबंधी स्वास्थ्य खतरों से निपटने हेतु WHO ने स्वास्थ्य पर्यावरण संपर्क उपक्रम (Health Environment Link Initiative, HELI) का विकास किया है। HELI, UNEP एवं WHO के द्वारा किया गया एक वैश्विक प्रयास है जो विकासशील देशों के नीतिकारों द्वारा स्वास्थ्य पर होने वाले पर्यावरणीय खतरों पर किए जाने वाले कार्यों का समर्थन करता है।

HELI समस्त देशों से इस अवधारणा को बढ़ावा देने का समर्थन करता है। आर्थिक विकास का संबंध स्वास्थ्य एवं पर्यावरण से होता है। सामान्यतः स्वस्थ जीवन एक कार्य का वातावरण तथा वायु, जल, खाद्य एवं ऊर्जा के स्रोतों का पुनरुत्पादन अथवा प्रयोजन या जलवायु नियंत्रण जैसी समस्त सेवाएं जो मानव स्वास्थ्य के लिए है, का आकलन एवं समर्थन HELI द्वारा किया जाता है। HELI की गतिविधियों में राष्ट्रस्तरीय पायलट प्रोजेक्ट भी सम्मिलित हैं।

यूनेस्को (UNESCO)

यूनेस्को (UNESCO) संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (United Nations Educational Scientific and Cultural Organization) का लघु रूप है। यह संयुक्त राष्ट्र का एक घटक निकाय है। इसका गठन 4 नवम्बर, 1946 को हुआ था। इसका उद्देश्य शिक्षा एवं संस्कृति के अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से शांति और सहयोग की स्थापना करना है, ताकि संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में वर्णित न्याय, कानून का राजा, मानवाधिकार एवं मौलिक स्वतंत्रता हेतु वैश्विक सहमति संभव हो सके। इसका कार्य शिक्षा, प्रकृति तथा समाज विज्ञान, संस्कृति तथा संचार के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय शांति को प्रोत्साहित करना है।

टिप्पणी

यूनेस्को के 193 सदस्य देश हैं और 11 सहयोगी सदस्य देश और दो पर्यवेक्षक सदस्य देश हैं। इसका मुख्यालय पेरिस (फ्रांस) में है। संपूर्ण विश्व के 332 अंतर्राष्ट्रीय स्वयंसेवी संगठनों के साथ यूनेस्को के संबंध हैं। यूनेस्को के महानिदेशक आंद्रे अजोले हैं। भारत सन् 1946 से ही यूनेस्को का सदस्य देश है।

यूनेस्को ने भारत सरकार के साथ मिलकर महात्मा गांधी शांति एवं सतत विकास शिक्षा संस्थान की स्थापना के लिए एक प्रमुख पहल की थी। यह संस्थान सतत विकास के लिए शिक्षा और शांति शिक्षा के लिए स्वीकृति केन्द्र का भी कार्य करता है।

यूनेस्को साक्षरता बढ़ाने वाले कार्यक्रमों को प्रायोजित करता है और वैश्विक धरोहर की इमारतों और पार्कों के संरक्षण में भी सहयोग करता है। यूनेस्को की विरासत सूची में हमारे भारत वर्ष की अनेक ऐतिहासिक इमारतें और पार्क सम्मिलित हैं।

इस समय भारत यूनेस्को के 19 अभिसमयों का सदस्य है, जिसमें प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक विरासत, शिक्षा और बौद्धिक संपदा अधिकार से संबंधित अभिसमय सम्मिलित हैं।

जैव प्रौद्योगिकी के लिए एक श्रेणी–2 क्षेत्रीय कार्यालय भी स्थापित किया गया है। 37वें आम सम्मेलन द्वारा देहरादून के वन्य जीव संस्थान में स्थित प्राकृतिक विश्व विरासत पर दूसरे स्थान के लिए प्रस्ताव को अनुमोदन प्रदान किया गया।

यूनेस्को का मिशन सामान्यतः साझे मूल्यों के लिए सम्मान के आधार पर विभिन्न संस्कृतियों, सभ्यताओं एवं लोगों के मध्य वार्ता के लिए परिस्थितियों का सृजन करना है। इसलिए इसका मिशन शांति स्थापना, गरीबी उन्मूलन, संपोषणीय विकास तथा परस्पर सांस्कृतिक वार्ता में योगदान करना है और इसके लिए शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति, संचार एवं सूचना की सहायता की जाती है।

भारत में, इसमें 5 प्रमुख कार्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए यूनेस्को अपना मिशन संपन्न करता है, जो इस प्रकार है–

- सबके लिए कोटिपरक शिक्षा तथा जीवनपर्यन्त शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करना।
- संपोषणीय विकास के लिए वैज्ञानिक ज्ञान एवं नीति का उपयोग करना।
- नई सामाजिक व नैतिक चुनौतियों को दूर करना।
- सांस्कृतिक विविधता, अंतर सांस्कृतिक वार्ता और शांति की संस्कृति को बढ़ावा देना।
- सूचना एवं संचार के माध्यम से समावेशी ज्ञान समाज का निर्माण करना।

प्राकृतिक संपदा के संरक्षण हेतु यूनेस्को एक अहम भूमिका अदा कर रहा है। यह प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता के संरक्षण के आधार पर कार्य करता है जो कि भारत जैसे सभ्यता एवं संस्कृति वाले राष्ट्र के लिए अत्यंत कारगर है।

दीर्घोपयोगी विकास आयोग (CSD)

इसकी स्थापना दिसम्बर, 1992 में जनरल एसेंबली रिजॉल्यूशन A/RES/47/191 द्वारा की गई थी। इसे यू.एन. आर्थिक एवं सामाजिक काउंसिल के कार्यकारी आयोग के रूप में स्थापित किया गया था। इसने जून, 1992 में रियो डी जेनेरियो में हुए पृथ्वी सम्मेलन अथवा पर्यावरण तथा विकास पर यू.एन. की क्रॉन्फ्रेंस में एक ऐतिहासिक वैश्विक समझौता किया था जो एजेंडा 21 में दी एक संस्तुति को क्रियान्वित करता था।

टिप्पणी

सतत विकास हेतु बना डिवीजन (Division for Sustaniable Development, DSD) नेतृत्व प्रदान करता है एवं यह यूनाइटेड नेशन्स के सतत विकास पर बनी व्यवस्था के अन्दर कुशलता का एक अधिकृत स्रोत है। यह दीर्घोपयोगी विकास के संयुक्त राष्ट्र आयोग के लिए वास्तविक सचिवालय के रूप में सतत विकास का प्रचार करता है एवं अंतर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर तकनीकी सहयोग तथा क्षमता निर्माण प्रदान करता है।

लक्ष्य

- अंतर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर नीति निर्धारण में सतत विकास के लिए सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरणीय आयामों का समाकलन।
- सतत विकास के लिए एकीकृत एवं व्यापक रूप से भागीदारीपूर्ण प्रयास को बड़े पैमाने पर लागू करना।
- जोहान्सबर्ग की क्रियान्वयन योजना के लक्ष्य एवं लक्ष्य क्षेत्र के क्रियान्वयन में तीव्र प्रगति।

CSD का मत है–

- पर्यावरण एवं विकास के मुद्दों के क्रियान्वयन एवं सरकार, गैर सरकारी संस्थान तथा अन्य यू.एन. संस्थाओं द्वारा निर्धारित पर्यावरण एवं विकास के लक्ष्यों के समाकलन से संबंधित गतिविधियों की प्रगति की निगरानी करना।
- विकसित देशों द्वारा विदेशी विकास सहायता कोष (Overseas Development Aid) के लिए निर्धारित 0.7% GNP के लक्ष्य की प्रगति की निगरानी करना।
- तकनीकों का स्थानांतरण एवं उनकी आर्थिक सहायता की पर्याप्तता का पुनरावलोकन करना।
- एजेंडा 21 के क्रियान्वयन के संदर्भ में सुयोग्य NGO द्वारा संबंधित सूचना को प्राप्त करके उसका विश्लेषण करना।
- यू.एन. के ढांचे के अंतर्गत आने वाले NGO, स्वतंत्र निकायों तथा अन्य इकाइयों के साथ वार्तालाप बढ़ाना।

गैर सरकारी संगठन

गैर सरकारी संगठन एक ऐसा संगठन है जो सरकार का अंग नहीं होता है। इसे अधिकतर आर्थिक सहायता निजी सहयोग से प्राप्त होती है जो संस्थागत सरकार अथवा राजनीतिक संरचना के बाहर कार्य करती है। इसी कारण, ये सरकार से पूर्णतः स्वतंत्र होते हैं। सामान्यतः NGOs का अपना स्वयं का कार्यक्रम होता है। अनेक NGOs वन्य जीव जन्तुओं के संरक्षण, पर्यावरण सुरक्षा, संसाधनों का संरक्षण एवं सतत विकास के कार्य के लिए प्रतिबद्ध रूप से कार्यरत हैं। पर्यावरण के क्षेत्र में कार्य करने वाले महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन निम्नलिखित हैं–

- अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (International Union for Conservation of Nation, IUCN)
- विश्व वन्यजीव कोष (World Wild Life Fund, WWF)
- ग्रीन पीस (Green Peace)

टिप्पणी

- टाटा ऊर्जा शोध संस्थान (Tata Energy Research Institute, TERI)
- अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (IUCN)

यह विश्व का सर्वाधिक पुराना एवं सबसे बड़ा व वैश्विक पर्यावरण नेटवर्क है। यह एक गणतांत्रिक सदस्य सभा है जिसमें 1000 से अधिक सरकारी तथा गैर सरकारी सदस्य संगठन हैं, एवं लगभग 11,000 स्वयंसेवी वैज्ञानिक हैं जो 160 से अधिक देशों में रहते हैं। IUCN विश्व में फैले सैकड़ों सार्वजनिक NGOs एवं निजी क्षेत्रों की सहभागिता तथा 60 कार्यालयों के करीब सौ से अधिक प्रशिक्षित कर्मचारियों की सहायता से कार्य करता है। इसका मुख्यालय जेनेवा के समीप, ग्लैंड, स्विटजरलैंड में है।

IUCN पर्यावरण तथा विकास से संबंधित अधिकांश चुनौतियों के लिए व्यावहारिक समाधान विकसित करने के लिए कार्य करता है। यह वैज्ञानिक शोध का समर्थन करता है। संपूर्ण विश्व में परियोजनाओं का प्रबंधन करता है तथा सरकारी, गैर–सरकारी, संयुक्त राष्ट्र, विभिन्न संगठनों एवं स्थानीय समुदायों को एक जुट करता है जिससे नीतियों एवं कानूनों का क्रियान्वयन उचित प्रकार से संपन्न हो सके।

IUCN का मिशन एवं दृष्टिकोण

- संपूर्ण विश्व में व्याप्त विभिन्न समाजों को प्रभावित करना प्रोत्साहित करना एवं उनकी सहायता करना, जिससे वे प्रकृति की विभिन्नता एवं अखंडता का संरक्षण कर सकें तथा यह सुनिश्चित करें कि किसी भी प्राकृतिक संसाधन का उपयोग पूर्णतः न्यायसंगत हो एवं पारिस्थितिकी के अनुकूल हो।
- प्रकृति हमें जीवन की समस्त मूलभूत आवश्यकताएं (जल, खाद्य वस्तुएं, स्वच्छ वायु, ऊर्जा एवं आवास) प्रदान करती है। इसलिए इनका उपयोग बुद्धिमता एवं मितव्ययिता से करना चाहिए एवं इसका संरक्षण भी करना चाहिए। इसके अतिरिक्त कोशों का जीवन स्तर सुधार निर्धनता उन्मूलन हेतु सामाजिक एवं आर्थिक विकास भी निरंतर होते रहना चाहिए।
- जैव विविधता पृथ्वी पर उपस्थित समस्त जीवन का आधार है। इसको संरक्षित करना पौधों एवं पशुओं की प्रजातियों को लुप्त होने से रोकना एवं प्राकृतिक क्षेत्रों को नष्ट होने से बचाना ही IUCN का मुख्य कार्य है।
- जैव विविधता से संबंधित मानव जाति के समक्ष आज चार चुनौतियां हैं–
  - जलवायु परिवर्तन
  - ऊर्जा
  - आजीविका
  - अर्थशास्त्र

  IUCN इन चारों चुनौतियों का सामना करने हेतु निरन्तर कार्यरत है।

  ज्ञान : IUCN संरक्षण विज्ञान का समर्थन करता है। खासकर प्रजातियों, पारिस्थितिकी तंत्रों, जैव विविधता एवं मानव आजीविका पर इनका प्रभाव किस प्रकार होगा इस पर विशेष ध्यान देता है।

कार्य : IUCN हजारों फील्ड प्रोजेक्ट पूरे विश्व में चलाता है, जिससे प्राकृतिक पर्यावरण का प्रबंध अच्छी तरह से हो सके।

प्रभाव : IUCN सरकारों, NGO, अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, UN संगठनों, कंपनियों एवं समुदायों का समर्थन करता है, जिससे वे नितियां एवं कानून बनाकर उनका अच्छी तरह क्रियान्वयन कर सकें।

टिप्पणी

सशक्तीकरण : IUCN संगठनों को तैयार करके उन्हें संसाधन मुहैया कराकर, लोगों को प्रशिक्षित करके तथा परिणामों की मॉनीटरिंग करके नियम, कानून तथा उनके क्रियान्वयन में मदद करता है।

वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर (WWF)

वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर (WWF) एक अंतर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन है। WWF का लक्ष्य है हमारे पर्यावरण को नष्ट होने से रोकना एवं इसका प्रतिकार करना। वर्तमान में इसका अधिकांश कार्य तीन बायोम के संरक्षण पर केन्द्रित है। यह संगठन 11 सितंबर, 1961 में स्विट्जरलैंड के मोर्जेस में एक धर्मार्थ ट्रस्ट के रूप में गठित हुआ। 1986 में संगठन का नाम बदलकर वर्ल्ड फंड फॉर नेचर कर दिया गया लेकिन उसके आरंभिक शब्द WWF ही रखे गए जोकि इसके क्रियाकलापों को अच्छे ढंग से बता सकें।

ग्रीन पीस (Green Peace)

ग्रीन पीस विश्व का सबसे बड़ा धरातलीय स्तर का पर्यावरण नेटवर्क है। यह 77 राष्ट्रीय सदस्य समूहों एवं 5000 स्थानीय कार्यकर्ता समूहों को प्रत्येक महाद्वीप में एकजुट करता है। संपूर्ण विश्व में इसके बीस लाख से भी अधिक सदस्य हैं जिनके द्वारा ये आज के सर्वाधिक ज्वलंत पर्यावरणीय एवं सामाजिक मुद्दों पर अभियान चलाते हैं। 1986 में कार्यकर्ताओं का एक छोटा सा दल (ग्रीनलैंड के संस्थापक) कनाडा बैंकक्यूवर से अपने लक्ष्य (हरित एवं शांतिप्रिय विश्व) प्राप्ति हेतु निकल पड़ा। नीदरलैंड के एम्सटर्डम में स्थित ग्रीन पीस के पास विश्वभर में करीब 2.8 मिलियन से भी अधिक समर्थक हैं एवं 41 देशों में राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय कार्यालय हैं। आज ग्रीन पीस एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जो वैश्विक पर्यावरणीय अभियानों को प्राथमिकता प्रदान करता है।

ग्रीन पीस की नीतियां एवं मान्यताएं

ग्रीन पीस की नीतियां एवं मान्यताएं निम्नानुसार हैं–

- शांतिप्रिय एवं अहिंसात्मक तरीके से पर्यावरण को नष्ट होने से बचाना।
- राजनीतिक एवं व्यावसायिक रुचियों से आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करना।
- समाज की पर्यावरणीय रुचियों के संबंध में स्वतंत्र बहस को प्रोत्साहित करना व उनके समाधानों की खोज करना।

दृष्टिकोण एवं मिशन

एक शांतिपूर्ण एवं अखंड विश्व जो समाजों पर आधारित है जो प्रकृति के साथ संतुलन बनाये रखकर जीवनयापन करते हैं। स्वतंत्र लोगों का एक समाज जो गर्व, संपूर्णता तथा संतोष के साथ रहते हैं जिसमें मानव समानता तथा जनता के अधिकारों का एहसास होता है।

टिप्पणी

- अखंड समाजों को सुरक्षित रखने के लिए मानव अधिकारों तथा लोगों के अधिकारों के भावी सम्मान, मानव का आत्म सम्मान, पर्यावरणीय एवं सामाजिक न्याय आदि को सामूहिक तौर पर सुनिश्चित करना।
- पर्यावरणीय अवक्रमण तथा प्राकृतिक संसाधनों में कमी को रोकना या उसका विरोध करना, पृथ्वी की पारिस्थितिकी एवं सांस्कृतिक विविधता का पोषण करना तथा सतत आजीविका की सुरक्षा करना।
- स्वदेशी लोगों, स्थानीय समुदायों, महिलाओं समूहों एवं व्यक्तिगत लोगों के सशक्तिकरण को सुनिश्चित करना एवं निर्णय लेने में जनता की भागीदारी को सुनिश्चित करना।
- गुंजायमान अभियानों में व्यस्त रहना, जागरूकता को प्रोत्साहन देना, लोगों को गतिशील बनाना एवं विविध प्रकार के अभियानों के साथ संबद्ध होना, जमीनी स्तर तक पहुंचना, राष्ट्रीय एवं वैश्विक संघर्ष में सम्मिलित होना।

राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन

भारत में गैर सरकारी संगठन पर्यावरण संरक्षण में प्रशंसनीय तथा महत्वपूर्ण प्रयास कर रहा है। देश में हजारों संस्थाएं पंजीकृत हैं। ये संस्थाएं पर्यावरण संरक्षण से संबंधित निम्नलिखित कार्यक्रमों में प्रयासरत हैं–

- पर्यावरण जागरूकता
- पर्यावरण शिक्षा तथा साक्षरता
- बाल विकास तथा महिला कल्याण
- स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण
- वृक्षारोपण तथा प्रदूषण नियंत्रण
- वन्य जीव संरक्षण
- वन संरक्षण चिपको आन्दोलन
- ऊर्जा स्रोतों का विकास, प्रचार तथा प्रसार
- जल प्रबंधन
- ग्रामीण कुटीर उद्योग
- वनवासियों तथा आदिवासियों का आर्थिक तथा सामाजिक विकास
- ऊसर तथा बंजर भूमि का विकास
- विकलांग की शिक्षा एवं पुनर्वास कार्यक्रम
- मलिन बस्तियों में सेवा व सहायता कार्य
- सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करना।

विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र (Centre for Science and Environment)

यह केन्द्र एक गैर लाभकारी तथा लोकहित में शोध और सलाह प्रदान करने वाला संस्थान है जोकि वर्ष 1980 में नई दिल्ली में स्थापित हुआ था। संस्थान भारत से संबंधित पर्यावरणीय विकास की अवधारणा पर कार्य करता है, जो निर्धनता सुधार और

व्यवस्था, जलवायु परिवर्तन, वनों के संरक्षण पर आधारित सलाह प्रदान करता है। इसके साथ यह पूर्व में संचालित नीतियों के अधिक बेहतर संचालन हेतु सुझाव उपलब्ध कराता है। संस्था किसी भी समस्या की जानकारी पर आधारित समाधान देती है जो कि प्रावधान व वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित होते हैं।

दिल्ली स्थित थिंक टैंक विज्ञान पुरस्कार केन्द्र को इंदिरा गांधी शांति, निशस्त्रीकरण व विकास पुरस्कार (2018) से सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार इस संस्थान को पर्यावरण शिक्षा और सुरक्षा में योगदान के लिए दिया गया था। विज्ञान व पर्यावरण केन्द्र का पर्यावरण सुरक्षा के लिए जन–जागरूकता प्रसार काफी सीमा तक सफल रहा है।

CSE अनौपचारिक पर्यावरणीय शिक्षा को विकसित कर रही है। इनके दो प्रमुख प्रकाशन 'डाउन टू अर्थ' (Down to Earth) तथा बच्चों की पत्रिका 'गोबर टाइम्स' (Gober Times) है।

CSE अनुसंधान करता है एवं विकास की आवश्यकता की सूचना प्रदान करता है। पर्यावरणीय अतिक्रमण की सबसे बड़ी चुनौती एक ओर तो प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन है तथा दूसरी ओर तीव्रता से बढ़ता हुआ औद्योगिकीकरण है। इन दोनों में संतुलन कायम करने के महत्वपूर्ण कार्य हेतु CSE उत्तरदायी है। यह संस्था इन समस्याओं हेतु जागरूकता उत्पन्न करती है तथा समाधान भी प्रस्तुत करती है।

कल्पवृक्ष

इसकी स्थापना 1979 में हुई थी और यह पर्यावरणीय जागरूकता अभियानों, मुकदमों, शोध एवं अन्य क्षेत्रों में कार्य करता है। इसके कई पर्यावरण विकास संबंधित मुद्दों पर पकड़ रखी गई है। इसके अधिकतर सदस्य विविध एवं गहन रूप से सीखने की प्रक्रिया में लगे रहते हैं। चिपको आन्दोलन के समय हिमालयी क्षेत्र का दौरा दिल्ली के सबसे बड़े हरित क्षेत्र के विनाश के खिलाफ स्थानीय विद्रोह को प्रारंभ करना वन्य जीव जन्तु संरक्षण तथा पशु अधिकारों के लिये प्रकोष्ठ गठन के साथ–साथ ये 'नेचर वॉक' भी करते रहते हैं। NGO ने लगातार राज्यों और उसकी नीतियों को चुनौती देने वाले आन्दोलनों में भाग लिया है।

कल्पवृक्ष का यह विश्वास है कि देश का सही मायने में विकास तभी हो सकता है जब परिस्थितियां, सुरक्षा एवं सामाजिक समानता सुनिश्चित हो एवं प्रकृति व प्राणियों के प्रति एकरूपता तथा आदर का भाव लाया जा सके।

डेवलपमेंट अल्टरनेटिव्स (Development Alternatives)

यह एक लाभकारी संगठन है जो सतत विकास के लिये शोध कार्य में व्यस्त रहता है। इसकी स्थापना 1983 में हुई थी एवं इसका पंजीकरण भारत सरकार के साथ सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट के तहत हुआ था। डेवलपमेंट अल्टरनेटिव्स एवं इसके सहयोगी संगठन इस दर्शन पर काम करते हैं कि सतत विकास न केवल आर्थिक क्षेत्र को लाभ पहुंचाता है बल्कि यह पर्यावरण एवं इससे भी ऊपर लोगों को लाभ पहुंचाता है। डेवलपमेंट अल्टरनेटिव्स ग्रुप का लक्ष्य सतत राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देना, बड़े पैमाने पर सतत आजीविका को चलाने के संसाधनों की खोज करके उन्हें लोगों तक पहुंचाना और इस प्रकार गरीबी दूर करने तथा पर्यावरण को पुनःस्थापित करने के लिए विश्वव्यापी गतिविधियों को क्रियान्वित करना है।

टिप्पणी

सुलभ इंटरनेशनल

सुलभ इंटरनेशनल (Sulabh International) एक समाज सेवी संगठन है। जो मानव अधिकारों पर्यावरण की स्वच्छता ऊर्जा के गैर परंपरागत स्रोतों अपशिष्ट प्रबंधन एवं शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तनों को बढ़ावा देने के लिए कार्य करता है। इसकी स्थापना डॉ. बिदेश्वर पाठक ने 1970 में की थी। इसने भारत के लोगों का ध्यान स्वच्छता की ओर आकर्षित करने में अहम भूमिका अदा की है। इसने लोगों की खुले में मल मूत्र त्याग की आदत को रोकने में अहम भूमिका निभाई है। लोगों को टॉयलेट इस्तेमाल के लिये उत्साहित किया। इससे पर्यावरण में होने वाले प्रदूषण से मुक्ति मिलती है। सुलभ ने मानव मल–मूत्र को मानव द्वारा हाथ से साफ करने जैसे अमानवीय कार्य को रोका है।

भविष्य में सुलभ की दृष्टि को प्राप्त करने के लिये लोगों को शिक्षित एवं प्रेरित करना, नीतिकारों एवं पदाधिकारियों को सुग्राही बनाना, सरकार एवं लोगों के कार्यक्रमों तथा गतिविधियों को बढ़ावा देना आवश्यक है। सफाई कर्मी जो मानव मलमूत्र की सफाई करते हैं, उनके प्रति सुलभ ने लोगों का नजरिया काफी बदल दिया है जो समाज ने स्वीकार कर लिया है।

सफाई कर्मियों को अधिकार व सम्मान दिलाने में सुलभ के प्रयासों में पांच अलग–अलग चरण होते हैं–

1. स्वतंत्रता
2. पुनर्स्थापना
3. व्यावसायिक प्रशिक्षण
4. सामाजिक उत्थान
5. अगली पीढ़ी को उचित शिक्षा

सुलभ के नए अविष्कारों में सफाई मुक्त दो गड्ढ़ों वाला पेपर फ्लश शौचालय (सुलभ शौचालय) सुरक्षित एवं स्वच्छ मल–मूत्र निपटान तकनीक जन, सुविधाएं जहां पैसे देकर इस्तेमाल होता है। 10 लाख लोगों द्वारा प्रतिदिन इस्तेमाल की जाने वाली सुलभ कॉम्प्लेक्स जिनमें नहाने, कपड़े धोने व पेशाब घरों की सुविधा होती है। मलमूत्र आधारित बायोगैस संयंत्रों से बायोगैस एवं बायो खाद का उत्पादन संस्थानों एवं उद्योगों के लिये मध्यम क्षमता वाले गन्दे पानी को संशोधित करने वाले खर्चीले संशोधन संयंत्र आदि शामिल हैं। सन् 2007 अक्टूबर में सुलभ ने एक ऐसे सस्ते शौचालय सिस्टम का डिजाइन तैयार किया है जो मानव अपशिष्ट को बायोगैस एवं खाद में पुनः चक्रित करता है।

अन्य प्रमुख गैर सरकारी संगठन निम्नांकित हैं–

- पर्यावरण शिक्षा के केन्द्र, सरिस्का अरावली (बिहार), सर्वहारा संघ सिंह भूमि बिहार।
- अंतर्राष्ट्रीय वृक्षारोपण संस्थान बड़ौदा (गुजरात), मगध समाज विकास समिति पटना।
- ग्रामीण अन्त्योदय विकास परिषद पटना (बिहार), मानव कल्याण समिति मुजफ्फरनगर।

टिप्पणी

- बिहार ग्राम सेवा संस्थान, समस्तीपुर (बिहार), लक्ष्मी सेवा सदन, सीवान (बिहार)
- बिहार खेल परिषद, पटना (बिहार), जन सेवा आवास संस्थान पटना, बिहार
- बिहार आयोग मण्डल नालन्दा, (बिहार), करुणालय गोपालगंज (बिहार)
- गांधी सेवा आश्रम, सारन (बिहार), कृषि ग्राम विकास केन्द्र रांची (बिहार)
- पर सेवा संस्थान, मुगेर (बिहार), प्राकृतिक आरोग्य आश्रम नालन्दा, बिहार।
- महिला विकास अध्ययन केन्द्र पंचशील एन्क्लेव, नई दिल्ली।
- सेन्टर फॉर कम्यूनिटी मेडिसिन, अन्सारी नगर, नई दिल्ली।
- हरिजन सेवक संघ, नई दिल्ली, हिमालय सेवा संघ राजघाट नई दिल्ली।
- भारत सामाजिक संस्थान, लोदी रोड, नई दिल्ली।
- वनवासी कल्याण आश्रम, नई दिल्ली, खाद्य उत्पादन कार्यक्रम, जनकपुरी नई दिल्ली।
- आगाखान फाउण्डेशन इंडिया, नई दिल्ली।
- महिला चेतना केन्द्र, लोदी रोड, नई दिल्ली।

आदिकाल से ही पर्यावरण मानव विकास को निर्धारित तथा नियंत्रित करता रहा है। पर्यावरण अनुकूलन परिस्थितियां मानव के सामाजिक, आर्थिक एवं वैज्ञानिक विकास की गति में वृद्धि करती हैं तथा प्रतिकूल परिस्थितियां विकास की गति को अवरुद्ध भी करती हैं। समस्त सरकारी तथा गैर–सरकारी संस्थाएं इन पर्यावरण अनुकूलन परिस्थितियों को बनाये रखने में एक अहम भूमिका निभाती हैं।

मानव के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है कि किसी प्रकार पर्यावरण के विघटन पर नियंत्रण किया जाए और पारिस्थितिकी संतुलन एवं पारिस्थितिकी तंत्र में स्थिरता कैसे रखी जाए? यद्यपि विश्व स्तर और राष्ट्रीय स्तरों पर इस दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं। सरकारी तथा गैर–सरकारी व स्वयंसेवी संस्थायें प्रयत्नशील हैं परन्तु उनके कोई ठोस परिणाम दिखाई नहीं दे रहे हैं। इसका प्रमुख कारण है कि हमारी मानसिकता और विचारधारा में परिवर्तन नहीं हो रहा है। पर्यावरण के प्रति हमारी संवेदनशीलता विकसित नहीं हुई है। मानवीय क्रियायें सामान्य रूप से चल रही हैं, क्योंकि धन कमाना सभी का लक्ष्य हो गया है। राष्ट्र और समाज की किसी को चिन्ता नहीं है।

हैंडरसन ने अपनी पुस्तक 'Creating Alternative Future' में लिखा है– ऊर्जा संकट, नगरीय संकट, पर्यावरण संकट, जनसंख्या संकट समस्त संकटों का मूल कारण हमारी संकुचित दृष्टि है।

कपरा ने भी इसी विचार को दोहराते हुए लिखा है कि हमारी समस्त समस्याएं और संकट हमारी संकुचित विचारधारा व दृष्टिकोण के कारण है। हम दूरगामी दुष्परिणामों की चिंता किए बिना तत्काल लाभ को ही सब कुछ मान लेते हैं। मानवीय क्रियाओं के दुष्परिणामों को भावी पीढ़ी को भुगतना पड़ेगा।

मानवीय विचारधाराओं तथा दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में योजना, अभिक्रम तथा प्रकल्प की भूमिका अहम नहीं होती है। इसके लिए शिक्षा की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। पर्यावरण–शिक्षा के पाठ्यक्रमों द्वारा क्रियात्मक तथा भावनात्मक उद्देश्यों

टिप्पणी

को प्राप्त करने का प्रयास किया जा सकता है तथा बाल्यावस्था के प्रारंभिक वर्षों में ही बालकों में पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता विकसित की जा सकती है। औपचारिक शिक्षा के साथ अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, सतत शिक्षा, निरौपचारिक शिक्षा, दूरवर्ती शिक्षा आदि के माध्यम से प्रौढ़ तथा वृद्धों में भी पर्यावरण जागरूकता तथा सचेतना का विकास किया जाए, जिससे प्राकृतिक स्रोतों का उपयोग मितव्ययिता से किया जाए तथा पृथ्वी और प्रकृति की पवित्रता को कायम रखा जा सके। पारिस्थितिकी की विरोधी तकनीक को सौर ऊर्जा, बायोगैस और विद्युत को जल तथा वायु द्वारा उत्पन्न तकनीक से स्थापन्न किया जाना चाहिए।

मानव दृष्टिकोण के परिवर्तन से संस्कृति का विकास होता है जिससे पारिस्थितिकी संतुलन बना रहता है और पारिस्थितिकी तंत्र में स्थिरता भी रहती है। मनुष्य एवं उसके पर्यावरण में सामंजस्य रखने में ही मानव का कल्याण है। इस मानव कल्याण हेतु पर्यावरण सामंजस्य को स्थापित करने पर पर्यावरण संबंधी सरकारी व गैर सरकारी संस्थाएं बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

आपदा प्रबंधन (Disaster Management)

भारत में आपदा प्रबंधन प्राकृतिक या मानव निर्मित आपदाओं के दौरान जीवन और संपत्ति के संरक्षण को संदर्भित करता है। आपदा प्रबंधन योजना बहु–स्तरीय है और बाढ़, तूफान, आग और उपयोगिता की व्यापक विफलता, बीमारी और सूखे के तेजी से फैलने जैसे मुद्दों को संबोधित करने की योजना है। भारत अपनी अद्वितीय भू–जलवायु स्थिति के कारण प्राकृतिक आपदाओं के लिए विशेष रूप से कमजोर है। जिसमें आवर्ती बाढ़, सूखा, चक्रवात, भूकंप और भूस्खलन होते हैं। जैसे कि भारत एक बहुत बड़ा देश है, विभिन्न क्षेत्र विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं की चपेट में है। उदाहरण के लिए, बरसात के मौसम के दौरान दक्षिण भारत के प्रायद्वीपीय क्षेत्र ज्यादातर चक्रवातों से प्रभावित होते हैं और पश्चिम भारत के राज्य गर्मियों के गंभीर सूखे का अनुभव करते हैं। आपदा प्रबंधन शब्द का उपयोग आपदाओं की योजना बनाने और प्रतिक्रिया देने में शामिल सभी पहलुओं को कवर करने के लिए किया जाता है। आपदा प्रबंधन सिर्फ घटना पर प्रतिक्रिया देने और पीड़ितों को राहत देने के बारे में नहीं है। यह घटना के कुल नकारात्मक प्रभाव को कम करने और भविष्य में इसकी पुनः घटना या परिणामों को रोकने के बारे में भी है।

आपदा प्रबंधन के प्रमुख लक्ष्य : आपदा प्रबंधन के लक्ष्य एक अधिक टिकाऊ और प्रभावी वसूली का निर्माण कर रहे हैं, जो एक व्यवसाय द्वारा सामना किए गए जोखिमों को कम करने के लिए योजनाबद्ध तरीके से योजना बना रहा है और अधिक प्रभावी योजना तथा प्रतिक्रिया प्रयासों के माध्यम से नुकसान को कम करता है।

कई प्रकार के संकट या आपदा के प्रकार हैं, जिन्हें प्रत्येक के लिए अलग–अलग आपदा प्रबंधन रणनीतियों को लागू करने के लिए नियोजन प्रक्रिया के दौरान पहचाना जाना चाहिए।

आपदा प्रबंधन के वर्गीकरण में, विचार करने के लिए आपदा के आठ प्रकार हैं–

- आतंकवादी हमले
- संगठनात्मक दुष्कर्म
- अफवाहें
- द्वेष

- कार्यस्थल हिंसा
- आमना–सामना
- तकनीकी संकट
- प्राकृतिक आपदा

टिप्पणी

आपातकालीन प्रबंधकों द्वारा पीछा की जाने वाली प्रक्रिया सभी संगठनों के बीच काफी सीधी और आम है। यह उन्हें आपदा का पूर्वानुमान लगाने, आपदा का जवाब देने और समय पर प्रभावी व टिकाऊ तरीके से इससे उबरने में मदद करती है।

आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005

आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2 नवंबर, 2005 को लोकसभा और 12 दिसंबर, 2005 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया। इसे 9 जनवरी, 2006 को भारत के राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई। आपदा प्रबंधन अधिकरण (NDMA) के पास एक समय में नौ से अधिक सदस्य नहीं हैं, जिनमें एक उपाध्यक्ष भी शामिल है। NDMA के सदस्यों का कार्याकाल 5 वर्ष है। NDMA, जिसे 30 मई, 2005 को एक कार्यकारी आदेश द्वारा स्थापित किया गया था, 27 सितंबर, 2005 को आपदा प्रबंधन अधिनियम की धारा–3(1) के तहत गठित किया गया था। NDMA के लिए "नीतियों, योजनाओं और दिशानिर्देशों को समाप्त करना है," आपदा प्रबंधन और आपदा पर बहुत समय एवं प्रभावी प्रतिक्रिया सुनिश्चित करने के लिए।

अधिनियम की धारा 6 के तहत यह "देश की योजना बनाने में राज्य के अधिकारियों द्वारा पालन किए जाने वाले दिशा निर्देशों का पालन करने के लिए" जिम्मेदार है।

आपदा प्रबंधन योजना : 1 जून, 2016 को भारत के पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने भारत के आपदा प्रबंधन योजना की शुरुआत की, जो आपदाओं की रोकथाम, शमन और प्रबंधन के लिए सरकारी एजेंसियों की सहायता और दिशा प्रदान करना चाहती है। यह आपदा प्रबंधन 2005 के अधिनियम के बाद राष्ट्रीय स्तर की पहली योजना है।

दुनिया में आपदा प्रबंधन के प्रकार

आपदा प्रबंधन कैसे आता है, इसे लेकर दुनिया भर में कई तरह के रुझान हैं–

- अग्रिम में आपदा के जोखिम में प्रबंधन पर ध्यान केन्द्रित है।
- कॉर्पोरेट दान नकद से अन्य संसाधनों में भी स्थानांतरित हो रहे हैं।
- विकास कार्यक्रमों में आपदा की तैयारी को एकीकृत किया जा रहा है।
- त्वरित आपातकालीन प्रतिक्रिया दल और आपातकालीन इकाइयां विकसित की जा रही हैं।
- विकास बैंक और निजी क्षेत्र अधिक शामिल हो रहे हैं।
- पेशेवर दिशानिर्देश और मानकों में सुधार किया जा रहा है।
- प्रतिक्रिया कार्यक्रमों की तुलना में शमन कार्यक्रमों पर अधिक जोर दिया जा रहा है।

आपदा प्रबंधन एक ऐसी चीज है जो हम सभी के लिए महत्वपूर्ण है। एक व्यवसाय के रूप में, आप बेहतर आपदा प्रबंधन प्रथाओं को अपनाने के लिए वैश्विक धारा में भाग ले सकते हैं, न केवल अपने आपको बचाने के लिए, बल्कि आपदा की स्थिति

टिप्पणी

में अपने आस पास के समुदाय की रक्षा करने के लिए भी। आपातकालीन प्रबंधन चार चरणों में आयोजित किया जाता है–

- **शमन** : किसी खतरे को खत्म करने या इसके संभावित प्रभाव को कम करने के लिए की गई कार्रवाई।
- **तैयारी** : प्रशिक्षण और अभ्यास सहित प्रमुख आपात स्थितियों के लिए योजना।
- **प्रतिक्रिया** : आपात स्थितियों के जवाब में की गई कार्रवाई।
- **पुनःप्राप्ति** : सेवाओं को बहाल करने और समुदायों के पुनःप्राप्ति के लिए एक आपदा के बाद की गई कार्रवाही।

आपदा प्रबंधन चक्र (Risk Management)

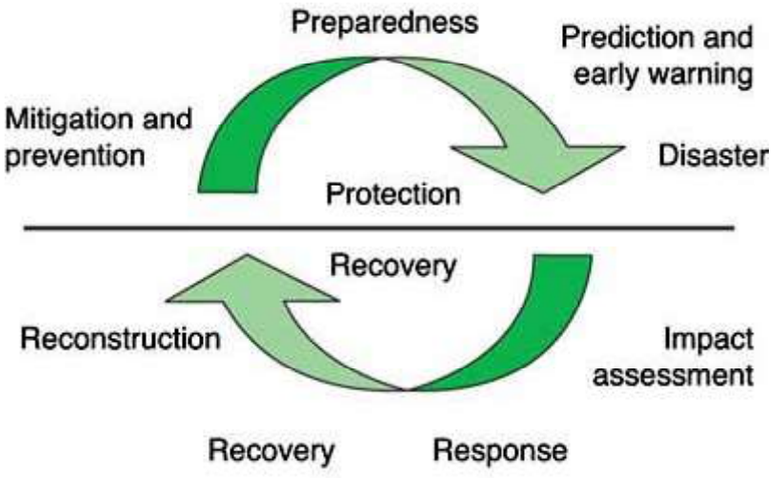

Crisis management

प्रबंधन जोखिमों से निपटने और उनसे बचने का अनुशासन है। यह एक ऐसा अनुशासन है जिसमें प्राकृतिक या मानव निर्मित आपदाएं होने पर समाज को तैयार करना, समर्थन करना और पुनर्निर्माण करना शामिल है।

सामान्य तौर पर, कोई भी आपातकालीन प्रबंधन एक सतत प्रक्रिया है जिसके द्वारा सभी व्यक्ति, समूह और समुदाय खतरों से बचने या आपदा के प्रभाव को कम करने के प्रयास में खतरों का प्रबंधन करते हैं।

आपातकालीन प्रबंधन योजनाओं के गहन एकीकरण पर निर्भर करता है। प्रत्येक स्तर पर गतिविधियां अन्य स्तरों को प्रभावित करती हैं। नागरिक सुरक्षा के लिए या आपातकालीन सेवाओं के पारंपरिक ढांचे के भीतर संस्थानों के साथ सरकारी आपातकालीन प्रबंधन के लिए जिम्मेदारी देना आम है। निजी क्षेत्र में, आपातकालीन प्रबंधन को कभी–कभी व्यावसायिक निरंतर प्रबंधन कहा जाता है।

तैयारी : आपदाओं के लिए तैयार समुदायों और परिवारों की मदद करने के अलावा, हमारी खुद की तैयारियों का मतलब है कि हम आपदाओं के दौरान समुदायों की मदद करने के लिए तैयार हैं।

अधिकांश देशों में जहां हम काम करते हैं और रणनीतिक रूप से स्थित आपदा प्रतिक्रिया गोदामों में राहत वस्तुओं के भंडार बनाए हुए हैं। इन वस्तुओं में शामिल हैं–

टिप्पणी

- तिरपाल
- जल वाहक
- घरेलू किट
- आपातकालीन खाद्य आपूर्ति के लिए विश्वसनीय पहुंच
- जल शुद्धीकरण गोलियां
- आश्रय सामग्री
- खाना पकाने के बर्तन
- कम्बल

आपदा जोखिम में कमी : उचित प्रशिक्षण और योजना के माध्यम से, हम बच्चों और परिवारों को एक आपदा आने पर होने वाले नुकसान को कम करने में मदद कर सकते हैं।

हम परिवारों और व्यक्तियों के साथ–साथ दुनिया भर के स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय साझेदार के साथ काम करते हैं जो आपातकाल की स्थिति में उनका सामना करने और कैसे ठीक से तैयार और प्रतिक्रिया करने के लिए तैयार है। गतिविधियों के उद्देश्य–

- कमजोरियों को कम करें : जिसमें शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय कारण शामिल हैं जो संवेदनशीलता को बढ़ाते हैं।
- प्राकृतिक और मानव निर्मित परिस्थितियों के प्रभावों को कम करें जो समुदाय के जीवन और आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की क्षमता रखते हैं।

आपदा प्रबंधन का निष्कर्ष (Disaster Management Conclusion)

आपदा प्रबंधन का यह एक निष्कर्ष निकल सकता है कि आपदा एक निरंतर प्रतिक्रिया प्रणाली है। यह अप्रत्याशित मापदंडों के लिए ज्ञात परिस्थिति का परिणाम है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आपदा प्रतिक्रिया दोनों के लिए आपदा प्रतिक्रिया प्रणाली लिखी गई है। प्रारंभिक प्रतिक्रिया सबसे अधिक सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है लेकिन यह ज्ञात है। एक बार जब आपको आपदा के बारे में सूचित किया जाता है तो उसकी प्रतिक्रिया प्रणाली ज्ञात समय की एक शृंखला के लिए निर्धारित की जाती है, जिसका पालन न करने पर सभी अन्योन्याश्रित प्रणालियों को बदल दिया जाएगा।

आपातकालीन और सुरक्षा सेवाओं का परीक्षण समय से पहले होता है। आतंकवाद और जलवायु परिवर्तन से उन पर निर्भरता बढ़ेगी। जोखिम वाले क्षेत्रों में सैन्य और समुदायों के साथ प्रशिक्षण वस्तुतः अस्तित्वहीन है। जैसे ही एक आपदा से निपटा जाता है, उसे पिछली आपदा से सीखे गए सबक के साथ अगली तैयारी करनी चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

5. वैज्ञानिक संगठन केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का गठन कब हुआ था?

   (क) अक्टूबर 1974 में (ख) सितंबर 1964 में

   (ग) जनवरी 1959 में (घ) सितंबर 1974 में

6. भारत किस वर्ष से यूनेस्को का सदस्य देश है?

   (क) 1946 से (ख) 1956 से

   (ग) 1936 से (घ) 1966 से

2.5 सतत विकास के लिए अधिगम

टिप्पणी

पर्यावरण शिक्षा एवं संरक्षण के अभियान को व्यापक रूप से चलाने के लिए संपूर्ण समाज उत्तरदायी है, किन्तु शिक्षक समाज का उत्तरदायित्व अधिक है। इसलिए इस लक्ष्य की प्राप्ति में शिक्षक की अहम भूमिका होती है। शिक्षक का संबंध विभिन्न आयु वर्गों के छात्रों से होता है। वह एक पथ प्रदर्शक की भांति छात्रों में पर्यावरण संरक्षण हेतु जागरूकता विकसित करने में विविध समस्याओं से उन्हें अवगत कराकर उनका नवीन एवं सफल समाधान ढूंढ़ने हेतु छात्रों को प्रेरित कर सकता है। आज के समय में सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण एक ज्वलंत समस्या है जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में पूरे विश्व को उसके भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वरूपों में विकृति लाकर प्रभावित कर रही है। पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त बनाये रखने में समाज के बुद्धिजीवी वर्ग से शिक्षक इस समस्या विशेष के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने में विशेष भूमिका निभा सकता है क्योंकि वह समाज की ज्वलंत समस्याओं को विद्यालय जैसी प्रयोगशाला में शोधन करने वाला एक संवेदनशील व जिम्मेदार नागरिक होता है जो अपने छात्रों में अपने पर्यावरण (भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक) के प्रति चेतना विकसित करने हेतु विभिन्न अधिगम क्रियाओं का आयोजन कर सकता है। विभिन्न क्रिया कलापों में विद्यार्थियों की प्रतिभागिता उन्हें अपने पर्यावरण के लिए जागरूक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जैसे–

- वृक्षारोपण, हरी–भरी वाटिकाओं का संरक्षण।
- पार्कों तथा जन स्थलों की सफाई कराना तथा स्वच्छता के प्रति जनसामान्य को जागरूक बनाने हेतु स्थान–स्थान पर छात्रों द्वारा स्पष्ट एवं सुन्दर अक्षरों में सन्देश पट्टिकाओं को लगवाना।
- अपशिष्ट पदार्थों सूखा व गीला कूड़ा इत्यादि उपयुक्त स्थानों पर रखने की आदत विकसित करना।
- छात्रों को पर्यावरण को स्वच्छ रखने के प्रति जागरूक बनने की शिक्षा देना तथा क्रियात्मक रूप से झोपड़पट्टियों एवं गांवों में उन्हें ले जाकर ऐसे कार्यक्रम प्रस्तुत कराना जिससे जनसामान्य पर्यावरण के प्रति सजग हो सके और इसे सुधारने के लिए सभी वर्ग के लोगों को सहयोग प्राप्त हो सके।
- छात्रों को सामाजिक वानिकी की जानकारी देना, सार्वजनिक खाली स्थानों पर पौधे लगाना।

अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेकानेक अभियान चलाये जा रहे हैं तथा अधिनियम व कानून बनाये जा रहे हैं परन्तु विभिन्न शैक्षिक अधिगम गतिविधियों द्वारा व्यक्ति विशेष में सचेतना, अभिवृत्ति व मूल्यों का विकास किया जा सके जिससे निश्चित रूप से पर्यावरण संरक्षण अभियान सही मायनों में सफल हो पाएगा।

यह समस्या अति आवश्यक है कि मानव उत्तरदायित्व मात्र अपनी पूर्ति करना ही नहीं है, बल्कि यह नैतिक उत्तरदायित्व है कि हम ऐसे विकास आदर्शों को अपनाएं जिससे पीढ़ियां भी पर्यावरण के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह उचित प्रकार से कर पायें।

टिप्पणी

भारत विश्व के उन सभ्य देशों में से एक है, जहां का सांस्कृतिक विकास और सांस्कृतिक समृद्धि मनुष्य और प्रकृति के अत्यधिक घनिष्ठ संबंधों से परिपूर्ण है। वेदों और उपनिषदों से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय संस्कृतियों में वह धारा प्रवाहित रही है, जो मनुष्य को शैल, सागर, नदी, नद, वृक्ष, लता, पशु–पक्षी और कीट पतंगों के सहचर संरक्षण के रूप में देखती आई है। आज वास्तव में हम भारतीय उस आह्वान को याद करते हैं जिसमें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की कल्पना की गई है। इस प्रकार की विचारधारा से 'मानव कल्याण' और 'पर्यावरण संरक्षण' संभव हो पाएगा।

विद्यार्थियों में पर्यावरण के संरक्षण एवं उसके विकास हेतु सचेतना उत्पन्न करने के लिए नियमित शिक्षण विधियों व अधिगम शैलियों को पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता है। शुद्ध, स्वच्छ प्राकृतिक व सामाजिक पर्यावरण मनुष्य की मुख्य आवश्यकताओं में से एक है। मनुष्य के बुद्धिजीवी प्राणी होने के नाते उससे आशा की जाती है कि वह प्राकृतिक संसाधनों को अपनी आवश्यकतानुसार संतुलित करके उनके वैकल्पिक साधनों की खोज करे कि प्राकृतिक साधनों को नष्ट किए बिना परिस्थितियों का संतुलन बना रह सके।

मानव आवश्यकताओं, प्राकृतिक दोहन की क्षमताओं और पर्यावरण के मध्य समायोजन होना आवश्यक है। अतः शालाओं में मानव एवं पर्यावरण के महत्व को समझाते हुए उन दोनों में सामंजस्य स्थापित किया जाना चाहिए, क्योंकि इन दोनों को एक व्यवस्था में रखकर ही खुशहाल रहा जा सकता है। छात्रों के समक्ष विषय–वस्तु एवं प्राकृतिक संसाधनों को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाए कि विद्यार्थी पर्यावरण संरक्षण एवं विकास हेतु अपना मूलभूत योगदान प्रदान कर सके। संतुलित व्यक्तित्व का विकास शुद्ध सामाजिक व प्राकृतिक पर्यावरण में ही संभव है।

अतः पर्यावरण संरक्षण हेतु विद्यालयों द्वारा छात्रों में पर्यावरण संवेदना विकसित करने के लिए निम्न उद्देश्यों की पूर्ति अति आवश्यक है–

- परितंत्र को संतुलित बनाये रखने के उद्देश्य से विभिन्न जीवों एवं पेड़–पौधों का पर्यावरण में बना रहना उपादेय है – इसका अवबोध कराना।
- विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के प्रकृति के निकट रहने के लाभ तथा पृथक रहने की हानियों के संबंध में विश्लेषणात्मक तरीके से छात्रों को अवगत कराना।
- व्यक्तिगत, बाह्य तथा मूलरूप से मानव, प्राकृतिक साधन और जीव–जन्तु किस प्रकार एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं–इसका ज्ञान कराना।
- भविष्य में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के परिणामस्वरूप उत्पन्न प्रतिकूल परिस्थितियों से छात्रों को अवगत कराना।
- शीघ्र और विलंबकारी परिवर्तनों के लाभ और हानियों से अवगत कराना।
- व्यक्तिगत जीवन, समाज और मानव जीवन के तौर तरीकों पर पर्यावरण असंतुलन से होने वाले दुष्प्रभावों से परिचित कराना।

उपर्युक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, शिक्षण संस्थानों में पर्यावरण–संरक्षण से संबंधित विभिन्न कौशलों का विकास करना यथावत वांछनीय है–

- विभिन्न प्रकार के प्रदूषण फैलाने वाले तथ्यों को एकत्रित कर उन्हें समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने के कौशल का विकास करना।

टिप्पणी

- पर्यावरण का विध्वंस करने के प्रसंग से संबंधित परिकल्पनाओं को एकत्रित करना, उनका विश्लेषण कर सही परिकल्पना प्रस्तुत करते हुए उनका निदान, सोचने का कौशल उत्पन्न करना।
- विभिन्न कृत्यों से होने वाली पर्यावरणीय हानियों के संबंध में पूर्वघोषणा करने की दक्षता उत्पन्न करना तथा उसका मूल्यांकन करते हुए सही स्थिति को ज्ञात करने की क्षमता को विकसित करना।
- कल्पना शक्ति एवं सृजनात्मकता के आधार पर शुद्ध पर्यावरण विकास में विज्ञान द्वारा किए गये कार्यों की प्रशंसा करना।
- समाज का सदस्य होने के नाते प्रकृति के संरक्षण की भावना एवं व्यवहार का विकास करना।

पर्यावरण को शुद्ध एवं संतुलित बनाये रखने के लिए शिक्षक व शिक्षण संस्थानों का उत्तरदायित्व है कि विद्यार्थियों में विभिन्न अधिगम विधियों द्वारा अभिवृत्तियों का विकास किया जाए। इसलिए, निम्नांकित बिन्दुओं को क्रियान्वित किया जाना अपेक्षित है–

- पर्यावरण के संबंध में ज्ञान प्राप्त करना, उससे आनंदित होना तथा उसका हृदय से सम्मान करना।
- पर्यावरण को शुद्ध बनाये रखने के उद्देश्य से प्रदूषण एवं इसके निवारण हेतु सूचनाओं को प्राप्त कर उनकी समालोचना करने की अभिवृत्ति का विकास करना।
- अन्य व्यक्तियों व जैविक वस्तुओं को भी समाज का अंग मानने की वृत्ति का विकास करना।
- अन्य जीवों की अपेक्षा मनुष्य में विशिष्ट क्षमता है। पर्यावरण के सतत विकास हेतु प्रभावशाली कदम उठाने की इस क्षमता को विकसित करना।
- भूत, वर्तमान व भविष्य– यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। अतः इसके निरंतर प्रवाह को मानसिक धरातल पर प्रतिष्ठित करते हुए निरंतरता की अभिवृत्ति का विकास करना।
- वर्तमान व भविष्य के पर्यावरण को दृष्टि में रखते हुए किसी भी बांध, कटाव आदि का दोहन करने से पूर्व वैकल्पिक व्यवस्था में सबसे कम प्रदूषण फैलाने वाले कार्य करना तथा इस संदर्भ में उत्तरदायित्वपूर्ण वृत्तियों का विकास करना।
- प्रखर बुद्धि, पर्यावरण संवेदन वाले विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना।

पर्यावरण के सतत विकास हेतु प्रयुक्त शिक्षण विधियां इस प्रकार हैं–

सर्वेक्षण (Survey)

जब हम वर्तमान में उपस्थित तथ्यों का संकलन करते हैं, उनका विश्लेषण करते हैं, उनकी व्याख्या करते हैं और किसी समस्या के समाधान के रूप में किसी निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास करते हैं, तो यह सर्वेक्षण अनुसंधान विधि कहलाता है। इस प्रकार के अनुसंधान का संबंध विद्यमान (Existing) विचारों, विश्वासों, अभिवृत्तियों, प्रक्रियाओं, अनुभवों, प्रवृत्तियों, प्रचलित व्यवहारों, रीति–रिवाजों आदि में होता है। समाज में व्याप्त

विभिन्न प्रकार की मनो–सामाजिक विशेषताओं का अध्ययन करते समय सर्वेक्षण में मुख्यतः तीन प्रकार की सूचनाएं एकत्र की जाती हैं–

टिप्पणी

- **वर्तमान वस्तुस्थिति संबंधी जानकारी** : समाज में व्याप्त सूचनाओं के अध्ययन और विश्लेषण के द्वारा किसी महत्वपूर्ण सामाजिक पक्ष के विषय में वास्तविक स्थिति से अवगत कराने का प्रयास इसके अंतर्गत आता है।
- **वांछनीय संबंधी जानकारी** : किसी अन्य सामाजिक समूह एवं परिवेश का अध्ययन करके अथवा विशेषज्ञों की राय की सहायता से प्रचालित उद्देश्यों, प्रथाओं, आदतों आदि की वांछनीयता से संबंधित सूचनाओं को इसके अंतर्गत एकत्र किया जाता है।
- **उपयुक्त साधनों से संबंधित जानकारी** : अन्य व्यक्तियों एवं विशेषज्ञों के अनुभवों की सहायता से अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संभावित साधनों की खोज उस प्रकार की सूचनाओं के आधार पर की जाती है।

सर्वेक्षण का संबंध प्रायः वर्तमान समय से होता है। इसके द्वारा अनुसंधान से संबंधित समस्या अथवा घटना को वर्तमान स्थिति के विषय में तथ्यों को एकत्रित करने की चेष्टा की जाती है। इन तथ्यों के द्वारा जहां एक ओर उस समस्या अथवा घटना के विस्तार का अनुमान होता है, वहीं दूसरी ओर इनकी सहायता से घटनाओं का स्पष्ट विवरण प्रस्तुत करने अथवा समस्याओं को हल करने में सहायता मिलती है। शिक्षा के क्षेत्र में तथा सामाजिक क्षेत्रों में अधिकतर सर्वेक्षणात्मक अनुसंधान को ही प्रयुक्त किया जाता है।

सर्वेक्षण की प्रकृति

शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त कमियों और उनसे संबंधित समस्याओं को हल करने के लिए सर्वेक्षण अनुसंधान विधि, स्थानीय, राज्यीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्त स्तरों पर बहुत लोकप्रिय है। सर्वेक्षण के द्वारा शैक्षणिक समस्याओं से संबंधित दलों का केवल संग्रह ही नहीं किया जाता है, अपितु दलों का सारणीकरण, विश्लेषण, व्याख्या, तुलना, मूल्यांकन आदि भी इस प्रकार के अनुसंधान के महत्वपूर्ण व अभिन्न पक्ष हैं। सर्वेक्षण अनुसंधान की विधि से जो व्यक्ति पूर्ण रूप से परिचित नहीं है, वह प्रायः शिक्षा के क्षेत्र में उन समस्याओं से परिचित होते हुए अनभिज्ञ होते हैं जिसका निराकरण सर्वेक्षण अनुसंधान की सहायता से किया जा सकता है।

सर्वेक्षण के प्रकार

अनुसंधान समस्या के आधार पर सर्वेक्षण को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

- विवरणात्मक सर्वेक्षण : इसे पुनः निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जाता है–
  - परीक्षण सर्वेक्षण
  - प्रश्नावली सर्वेक्षण
  - साक्षात्कार सर्वेक्षण
- **विश्लेषणात्मक सर्वेक्षण** : इसको पुनः निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है–

टिप्पणी

– प्रलेखी – आवृत्ति सर्वेक्षण

– अवलोकनात्मक सर्वेक्षण

– क्रान्तिक घटना सर्वेक्षण

– विद्यालय सर्वेक्षण

– आनुवांशिक सर्वेक्षण

सर्वेक्षण की विशेषताएं

शोध के क्षेत्र में प्रायः सर्वेक्षण को उत्कृष्ट प्रकार की शोध विधा के रूप में मान्यता नहीं दी जाती है। फिर भी अपनी विशेषताओं के कारण शैक्षणिक अनुसंधान में इसका उपयोग बहुत अधिक किया जाता है। अनुसंधान के दृष्टिकोण से उपयोगिता, महत्व, सीमाओं आदि पर आधारित इसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

- यह अनुसंधान का एक प्रचलित एवं महत्वपूर्ण प्रकार है। यह अनुसंधान–प्रक्रिया निश्चित उद्देश्यों पर आधारित होती है और इसे प्रारंभ करने से पूर्व शोध समस्या को उचित प्रकार से परिभाषित किया जाता है। इस अनुसंधान अभिकल्प को बहुत सावधानीपूर्वक नियोजित किया जाता है। दलों को एकत्रित करके उनका उचित प्रकार से विश्लेषण किया जाता है तथा इस विश्लेषण की उपयुक्त व्याख्या करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं।
- इस अनुसंधान विधि की सहायता से वैज्ञानिक सिद्धान्तों को स्थापित करने की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। सर्वेक्षण समस्याओं के समाधान हेतु उपयोगी सूचनाएं उपलब्ध कराके मौलिक प्रकृति के शोध कार्य के लिए आधार प्रदान करने में सहायक होता है।
- सर्वेक्षण विधि जटिलता के दृष्टिकोण से विविधतापूर्ण होती है। कुछ सर्वेक्षणों की मात्र आवृत्ति (Frequency) पर्याप्त होती है। जबकि अन्य में घटनाओं एवं विशेषताओं के मध्य संबंध स्थापित करने की चेष्टा की जाती है।
- सर्वेक्षण गुणात्मक व संख्यात्मक दोनों प्रकार के होते हैं। यह, दल संकलन के लिए प्रयुक्त उपकरणों की प्रकृति एवं क्षमता पर निर्भर करता है।
- इस प्रकार के अनुसंधान निम्न शोध कार्यों के लिए विशेष रूप से उपयोगी होते हैं–

  किसी नये क्षेत्र में सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए जिससे शोध समस्या की वस्तु–स्थिति का परिचय प्राप्त हो सके, इसे प्रारंभिक सर्वेक्षण कहते हैं।
- सर्वेक्षण अनुसंधान के द्वारा प्रचलित प्रवृत्तियों को ज्ञात करके वर्तमान व्यावहारिक समस्याओं को हल किया जाता है।
- यह भावी प्रवृत्तियों की ओर भी संकेत करने में सक्षम है। यद्यपि इसे पूर्ण रूप से भविष्य–दृष्टा के रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता है, किन्तु इसके द्वारा भविष्य की योजना हेतु आवश्यक दलों, सूचनाओं और तथ्यों को संकलित एवं सुव्यवस्थित किया जा सकता है।
- शोध कार्य में प्रयुक्त किए जाने वाले अनेक उपकरण (चेकलिस्ट, अनुसूचियों) आदि को विकसित करने के लिए सर्वेक्षण की प्रक्रिया अपनाई जाती है।

- इसके द्वारा किसी एक व्यक्ति की विशेषताओं का अध्ययन नहीं किया जाता है, वरन् इसका संबंध समाविष्ट अथवा किसी न्यायदर्श की सामान्यीकृत सांख्यिकी से होता है।

टिप्पणी

प्रोजेक्ट का प्रयोग (Use of Project): प्रोजेक्ट आधारित अधिगम छात्र केन्द्रित तकनीक है। प्रोजेक्ट आधारित शिक्षण प्रक्रिया विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक क्रियाओं में लगाने की बहुत ही प्रभावशाली शिक्षण तकनीक है। इसके माध्यम से प्राप्त किया गया अधिगम अन्य तकनीकों से कराये गये अधिगम से अधिक प्रभावी होता है और अधिगम स्थायी प्रकृति का होता है क्योंकि इसका आधार संरचनात्मक विचाराधारा है। इस तकनीक के माध्यम से विद्यार्थियों के रचनात्मक, मौलिकता एवं प्रस्तुतीकरण का आकलन सरलता से हो जाता है। किलपैक्ट्रिक के अनुसार प्रोजेक्ट वह उद्देश्यपूर्ण कार्य है जिसे लगन के साथ सामाजिक वातावरण में किया जा सकता है।

प्रोजेक्ट बनाने का कार्य विद्यार्थी अपनी रुचि व इच्छा के अनुसार करते हैं। इसके द्वारा बालकों में सहयोग से कार्य करने की आदत विकसित होती है। यह क्रिया आधारित एवं खोज आधारित अधिगम विधि है। प्रोजेक्ट आधारित अधिगम विद्यार्थियों को केवल अधिगम में सहयोग करने के अवसर ही प्रदान नहीं करता अपितु उनके कौशल को विकसित करता है, जैसे समस्याओं का समाधान करने का कौशल। प्रोजेक्ट तकनीक विद्यार्थियों में भविष्य के लिए अनिवार्य कुशलता को विकसित करती है जिससे उनमें समय प्रबंधन की आदत विकसित होती है।

प्रोजेक्ट आधारित अधिगम विद्यार्थियों को विश्वसनीय प्रोजेक्ट बनाने के अवसर प्रदान करता है, जो व्यक्तिगत और दैनिक जीवन में प्रयोग के लिए सार्थक होते हैं। इससे विद्यार्थियों को अपनी रुचि एवं क्षमता को प्रयोग करने का पूरा मौका मिलता है। प्रोजेक्ट कार्य में ज्ञान को चार प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है–

1. प्रयोगात्मक कार्य जैसे उपयोगी लेख का निर्माण– कुछ विचारों को समाविष्ट करना।
2. सुरुचिपूर्ण अनुभवों के गुण–दोषों की विवेचना करना– अनुभवों का सर्वोत्तम प्रयोग।
3. समस्या समाधान– कुछ समस्याओं का हल निकालना।
4. ज्ञान अथवा कौशल में दक्षता– ज्ञान अथवा तकनीकी कुशलता में डिग्री प्राप्त करना।

प्रोजेक्ट के सोपान (Steps of Project)– प्रोजेक्ट निर्माण के प्रमुख सोपान निम्न हैं–

1. समस्या का चयन करना तथा उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न करना।
2. परियोजना का चुनाव करना और उसके उद्देश्य को स्पष्ट करना।
3. परियोजना निर्माण के लिए व्यवस्थित कार्यक्रम बनाना।
4. योजनानुसार कार्य करना।
5. कार्य का मूल्यांकन करना।
6. संपूर्ण कार्य का आलेखन प्रक्रिया पर परामर्श देना।

टिप्पणी

प्रोजेक्ट के गुण (Merits of Project)– एक अच्छे प्रोजेक्ट में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

1. प्रोजेक्ट का एक उपयुक्त लक्ष्य होना चाहिए।
2. प्रोजेक्ट दैनिक जीवन में उपयोगी, उपयुक्त एवं संबंधित होना चाहिए।
3. प्रोजेक्ट में विद्यार्थी की व्यावसायिक रुचि होनी चाहिए।
4. प्रोजेक्ट बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए। यह इतना होना चाहिए कि समय पर पूरा हो सके।
5. प्रोजेक्ट में विद्यार्थियों को सहयोगी होना चाहिए।
6. प्रोजेक्ट छात्र केन्द्रित होना चाहिए। प्रोजेक्ट इस प्रकार डिजाइन किया जाना चाहिए कि बालक उसमें अपने को शारीरिक और मानसिक रूप से सक्रिय रख सके। प्रोजेक्ट को शुरू करने से पूर्व वातावरणीय एवं मौसमी कारकों को ध्यान में रखना चाहिए।
7. प्रोजेक्ट कार्य से विद्यार्थियों के ज्ञान में वृद्धि हो तथा वे आगे के कार्य के लिए प्रोत्साहित हों।
8. प्रोजेक्ट कार्य विद्यार्थियों पर जबरदस्ती थोपना नहीं चाहिए। यह उनकी अपनी अभिक्षमता, रुचि तथा अभिवृत्ति के अनुकूल होना चाहिए।
9. प्रोजेक्ट मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए।

प्रोजेक्ट शिक्षण के लाभ (Benifits of Project): प्रोजेक्ट के माध्यम से शिक्षण अधिगम में निम्न लाभ होते हैं–

1. सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण क्रियाएं स्थायी अधिगम कराती हैं जो विद्यार्थी के दैनिक जीवन से संबंधित होता है।
2. प्रोजेक्ट के माध्यम से शिक्षण द्वारा विद्यार्थी को पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों का प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त होता है।
3. प्रोजेक्ट कार्य विद्यार्थियों में सहयोग की भावना को विकसित करता है।
4. इससे विद्यार्थियों में परस्पर विचार विमर्श की भावना विकसित होती है।
5. यह विद्यार्थियों में सामाजिक कल्याण के चिंतन की आदत को विकसित करता है।
6. प्रोजेक्ट कार्य से विद्यार्थियों में आत्मनिर्भरता की भावना विकसित होती है।
7. विद्यार्थी प्रोजेक्ट के लिए विभिन्न सूचनाएं स्वयं एकत्र करते हैं। इसलिए वे रिसोर्स पर्सन होते हैं।
8. इससे विद्यार्थी को मिलती–जुलती संबंधित समस्याओं को हल करने में मदद मिलती है।
9. विद्यार्थी श्रम के महत्व को समझते हैं और सभी प्रकार के कार्यों का सम्मान करना सीखते हैं।

प्रोजेक्ट शिक्षण की कमियां (Shortcoming of Project) : प्रोजेक्ट के माध्यम से शिक्षण अधिगम में निम्न कमियां होती हैं–

टिप्पणी

1. प्रोजेक्ट विधि से शिक्षण कार्य में समय अधिक लगता है अतः इससे कम ज्ञान की प्राप्ति होती है।
2. पाठ्यक्रम के सभी विषयों को प्रोजेक्ट में शामिल नहीं किया जा सकता।
3. एक सत्र में अध्ययन के लिए बहुत से प्रसंग होते हैं जिन्हें इस माध्यम से नहीं पढ़ाया जा सकता है।
4. शिक्षक एवं शिक्षार्थी इस माध्यम से गहन अध्ययन नहीं कर सकते हैं।
5. विद्यार्थी अच्छे एवं उपयुक्त कलेवर तक पहुंचने में असमर्थ होते हैं।
6. प्रोजेक्ट के माध्यम से निरंतर एवं व्यवस्थित शिक्षण देना संभव नहीं है जो शिक्षण अधिगम को प्रभावी बना सके।
7. प्रोजेक्ट विधि में बहुत अधिक व्यय होता है।
8. यह विधि कौशल के विकास एवं अभ्यास को नजर अंदाज करती है।

असाइनमेंट (Assignments): असाइनमेंट एक सतत मूल्यांकन उपकरण है। असाइनमेंट शिक्षण–अधिगम क्रिया में पूरक का कार्य करते हैं। असाइनमेंट शैक्षिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षक द्वारा बालकों को गृह कार्य के रूप में दिया जाता है। असाइनमेंट कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी को दिया जाता है। यह कार्य विद्यार्थियों द्वारा स्वतंत्रतापूर्वक घर पर किया जाता है। विद्यार्थियों को कक्षा में पढ़ाये गये, समझाये गये कार्य को घर पर पुनरावृत्ति हेतु लिखने के लिए दिया जाता है। इसमें केवल एक या एक से अधिक प्रश्न के रूप में लिखने के लिए देना ही असाइनमेंट नहीं है, अपितु प्रत्येक असाइनमेंट शिक्षक द्वारा सावधानीपूर्वक तैयार किया जाता है। शिक्षक विद्यार्थियों को विभिन्न पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं और वेब पेज से कुछ अंश बताते हैं और विद्यार्थी शिक्षक द्वारा बताये गये निश्चित अंशों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करता है। साधारण शब्दों में, 'असाइनमेंट एक विद्यार्थी अथवा विद्यार्थियों के समूह और शिक्षक के मध्य एक कार्य करने का समझौता होता है जिसे विद्यार्थियों द्वारा दिये गये एक निश्चित समय सीमा के अन्दर ही पूरा करना होता है।'

असाइनमेंट सतत एवं व्यापक मूल्यांकन अथवा संरचनात्मक मूल्यांकन का एक अभिन्न अंग है। असाइनमेंट सैद्धांतिक अथवा प्रायोगिक, मानसिक अथवा शारीरिक, एक विद्यार्थी अथवा विद्यार्थियों के समूह को दिया जा सकता है। असाइनमेंट चार्ट, मानचित्र, माडल तैयार करने अथवा किसी आधुनिक/ऐतिहासिक घटना का वर्णन करने के रूप में भी हो सकता है। इस प्रकार के असाइनमेंट विद्यार्थियों की बौद्धिक तथा मानसिक शक्तियों के लिए चुनौती होते हैं। असाइनमेंट देने का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को अपने स्वयं के उत्तरदायित्व पर कार्य करने की क्षमता को विकसित करना होता है। इसको करने का समय नियत होता है। विद्यालयों में दैनिक अथवा मासिक असाइनमेंट की अपेक्षा साप्ताहिक असाइनमेंट ज्यादा अच्छे समझे जाते हैं। सामाजिक विषयों में इकाई की दोहराई करने के लिए असाइनमेंट बहुत उपयोगी होते हैं। अध्यापकों को असाइनमेंट का नियमित रूप से मूल्यांकन करना चाहिए तथा इसके लिए अभिलेख तैयार करने चाहिए तथा उन अभिलेखों को वर्गोन्नति के समय प्रयोग किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

इस प्रकार असाइनमेंट के मूल्यांकन से शिक्षक विद्यार्थी के विभिन्न सबल एवं कमजोर पक्षों को जान पाता है और फिर उसके अनुसार शिक्षक विद्यार्थी को अधिगम सुधार के लिए प्रतिपुष्टि प्रदान करता है जो विद्यार्थी के लिए उसके अधिगम एवं प्रस्तुतीकरण कौशलों में सुधार में सहायक सिद्ध होती है।

असाइनमेंट के उद्देश्य (Purpose of Assignment): उचित प्रकार से नियोजित करके लिखे गये असाइनमेंट का शैक्षिक मूल्य बहुत अधिक होता है। व्यापक रूप से तैयार किए गये असाइनमेंट के मुख्य उद्देश्य निम्न होते हैं–

- भावी अधिगम के लिए मार्गदर्शन का कार्य करना।
- विद्यार्थियों को प्रभावी अधिगम की सुविधा प्रदान करना।
- असाइनमेंट से विद्यार्थी क्रियाशील रहते हैं।
- अधिगम के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को पहचानना।
- कठिनाइयों को दूर करने में सहायक।

असाइनमेंट की विशेषताएं (Characteristics of Assignment): असाइनमेंट की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. असाइनमेंट के द्वारा विद्यार्थी को यह स्पष्ट हो जाता है कि उससे किस प्रकार के अधिगम अनुभव की अपेक्षा की जाती है।
2. असाइनमेंट की सहायता से विद्यार्थियों को यह समझाने का प्रयास किया जाता है कि दिए गए कार्य को कैसे किया जाना है ताकि विद्यार्थी उसके अनुसार ही अपना सर्वोत्तम प्रदर्शन कर सके।
3. असाइनमेंट एक शिक्षक द्वारा एक विद्यार्थी के अधिगम, उसके लेखन एवं उसकी व्यक्तिगत शैक्षिक आवश्यकताओं को यथा सम्भव पूरा करने का प्रयास है।
4. असाइनमेंट मूल्यांकन की प्रक्रिया को सरल बनाते हैं, क्योंकि असाइनमेंट को पूरा करने के लिए विद्यार्थी पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होता है।
5. असाइनमेंट विद्यार्थी में प्रभावी अध्ययन आदतों एवं ज्ञान के उपयुक्त उपयोग की आदत में वृद्धि करता है। इसके साथ ही सामूहिक असाइनमेंट बालकों में समूह की भावना को विकसित करने में सहायक सिद्ध होते हैं।
6. असाइनमेंट सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के क्रम में योगात्मक आकलन का पूरक है जो विद्यार्थी के सम्पूर्ण आकलन में मददगार होता है।

अच्छे असाइनमेंट के गुण (Merits of Good Assignment): एक अच्छे असाइनमेंट में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

- असाइनमेंट स्पष्ट रूप से वर्णित होना चाहिए।
- यह विद्यार्थियों को आगे की शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करता हो।
- असाइनमेंट हाल ही में पढ़ाये गये अथवा पढ़ाई जा रही पाठ्य वस्तु पर आधारित होना चाहिए।
- असाइनमेंट बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए।
- असाइनमेंट ऐसा होना चाहिए जो बालकों में कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न करता हो।

टिप्पणी

- इसमें विद्यार्थी के पूर्व अनुभव का प्रयोग होता है।
- यह समस्या समाधान करने में सहायक होता है।
- यह सहकारी प्रयासों को प्रोत्साहित करता है।
- यह स्थिति में गहनता का विकास करता है।

असाइनमेंट की कमियाँ (Shortcomings of Assignment): असाइनमेंट द्वारा मूल्यांकन प्रक्रिया में निम्न समस्यायें सामने आती हैं–

1. असाइनमेंट को करने के लिए अतिरिक्त संसाधनों की आवश्यकता होती है।
2. असाइनमेंट शिक्षण के प्रारम्भिक स्तर पर लाभदायक नहीं होते हैं।
3. असाइनमेंट के लिए कक्षा में अधिक समय की आवश्यकता होती है।

असाइनमेंट के प्रकार (Types of Assigment): असाइनमेंट कई रूपों में हो सकते हैं। ये वस्तुनिष्ठ प्रश्नों से लेकर ऐसी कई प्रायोगिक क्रियाओं के रूप में हो सकते हैं, जिनसे विद्यार्थी का मूल्यांकन किया जा सके।

- सामान्य प्रश्न वाले असाइनमेंट
- आलेख
- अनुसंधान एवं शोध पत्र
- केस अध्ययन
- मौखिक प्रस्तुतीकरण
- विभिन्न प्रकार की परियोजनाएं
- प्रयोगशाला से सम्बन्धित असाइनमेंट

असाइनमेंट निर्माण के सोपान (Steps of Assigment Construction): असाइनमेंट निर्माण के विभिन्न सोपानों को निम्न चार्ट की सहायता से प्रदर्शित किया गया है–

असाइनमेंट निर्माण के सोपान

- अधिगम के उद्देश्यों को पहचानना
- असाइनमेंट का उपयुक्त प्रकार निश्चित करना
- असाइनमेंट का निर्माण करना
- आकलन के मानदंडों को तय करना
- विद्यार्थी की आवधिक प्रगति की समीक्षा करना
- असाइनमेंट का मूल्यांकन करना
- असाइनमेंट को उपयुक्त ग्रेड प्रदान करना

खुली चर्चा (Open Ended Discussion)

इस विधि में छात्रों को चर्चा का अवसर प्रदान किया जाता है जिससे कक्षा की नीरसता समाप्त हो जाती है तथा छात्र उत्साहित होकर ज्ञान प्राप्त करने को तत्पर हो जाता है। इसमें किसी समस्या का निराकरण, सहयोग और सहकारिता के आधार पर किया जाता है। छात्रों को प्रश्न करने की छूट रहती है तथा वे चर्चा के द्वारा अपनी शंकाओं

टिप्पणी

का समाधान करते रहते हैं। इस विधि का सबसे बड़ा लाभ यह है कि छात्रों को आत्माभिव्यक्ति के अवसर प्राप्त होते हैं और उनमें तर्कशक्ति का विकास होता है। छात्र अपने विचारों को व्यवस्थित करने का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं तथा उनमें आत्मविश्वास भी उत्पन्न होता है।

खुली चर्चा अधिगम का एक सशक्त माध्यम है तथा आधुनिक शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार, अधिगम के लिए छात्र एवं शिक्षक दोनों के मध्य अधिकाधिक सक्रियता और क्रियाशीलता आवश्यक है, तभी अधिगम की प्रक्रिया सरल तथा बोधगम्य बनायी जा सकती है।

पर्यावरणीय शिक्षण की दृष्टि से चर्चा विधि लोकतांत्रिक विधि है। इस विधि में प्रत्येक विद्यार्थी को समान अवसर मिलता है। चर्चा हेतु छात्रों को विषय के संदर्भ में पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है, तभी यह पूर्ण रूप से सफल हो पाता है। इसके लिए विषयवस्तु का चयन तथा संगठन निर्माण करना पड़ता है। चर्चा के माध्यम से छात्र कुछ नई बातें सीखते हैं तथा अपने विचारों को स्पष्ट बनाने के साथ–साथ–सार्थक निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। इस प्रकार यह विधि अत्यधिक उपयोगी तथा सार्थक होती है। चर्चा विधि को अधिक स्पष्ट रूप से समझाते हुए कुछ प्रमुख शिक्षाशास्त्रियों (क्लार्क तथा स्टार, जेम्स एल.ली., योकम एवं सिम्परन, सैटलर और मिलट) ने इसको परिभाषित किया है, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि चर्चा विधि के अन्तर्गत किसी न किसी विवादपूर्ण समस्या अथवा अस्पष्ट विचार अथवा कार्य अवरोध, विचार विभेद अथवा विचारणीय परिस्थिति होती है, जिसके समाधान के अभाव में विचार अथवा कार्य को नई दिशा नहीं मिलती है। विद्यालयी शिक्षा की दृष्टि से इस विधि के द्वारा विषय वस्तु से सम्बन्धित विचारों के प्रति छात्रों में आत्मविश्वास, आस्था तथा सामंजस्य की भावना का निर्माण होता है। विद्यार्थियों द्वारा किया गया विचारशील चिन्तन चर्चा कहलाता है। वास्तव में, चर्चा, सामूहिक निर्णय लेने या विचार निर्माण करने में एक व्यवस्थित प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि सोद्देश्य, सार्थक, तार्किक तथा ज्ञानयुक्त विचार विमर्श ही चर्चा कहलाता है।

शिक्षण की दृष्टि से चर्चा विधि को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं–

- चर्चा की तैयारी
- चर्चा का प्रस्तुतीकरण
- चर्चा का मूल्यांकन

चर्चा के उद्देश्य : चर्चा को आयोजित करने के उद्‌देश्य निम्नलिखित हैं–

- समस्या के सन्दर्भ में सूचनाओं तथा तथ्यों को प्रदान करना।
- मूल्यों को निर्धारित करना।
- किसी समस्या के संदर्भ में विश्लेषण करना।
- मनोरंजन की दृष्टि से चर्चा आयोजित करना।

ध्यान रखने योग्य बातें : चर्चा विधि में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

- समस्त छात्रों को अपने विचार स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने का अवसर प्रदान करना चाहिए।

टिप्पणी

- चर्चा से पूर्व समस्या का चयन उचित प्रकार से किया जाना चाहिए।
- चर्चा का प्रारम्भ एवं तैयारी का सम्पादन भली–भांति किया जाना चाहिए।
- सुविधा की दृष्टि से चर्चा के आयोजन हेतु विद्यार्थियों को छोटे–छोटे समूहों में विभाजित किया जा सकता है।
- चर्चा के मध्य अप्रासंगिक अथवा व्यर्थ का तर्क नहीं होना चाहिए।
- प्रत्येक समूह की चर्चा का निष्कर्ष प्रतिवेदन के रूप में व्यक्त करना चाहिए, जिस पर समस्त छात्र एकमत हों।
- प्रतिवेदन का मूल्यांकन उचित प्रकार से होना चाहिए व इसमें निष्पक्षता का ध्यान रखना चाहिए।

छात्रों में पर्यावरण संबंधी चर्चा की क्षमता को विकसित करने हेतु निम्नलिखित गतिविधियों का आयोजन किया जा सकता है–

- पर्यावरण विशेषज्ञों की वार्ता : विद्यालय में पर्यावरण के विविध क्षेत्रों के विशेषज्ञों को आमंत्रित करके उनकी वार्ता का आयोजन कर विद्यार्थियों की चर्चा क्षमता को विकसित किया जा सकता है।
- पत्रिकाओं का प्रकाशन : पर्यावरण से सम्बन्धित ज्ञान व समस्याओं से सम्बन्धित लेखों का प्रकाशन पत्रिकाओं में होना चाहिए। ये पत्रिकाएं सार्वजनिक पुस्तकालयों में सरलतापूर्वक उपलब्ध होनी चाहिए।
- पर्यावरण विघटन तथा दुष्परिणामों पर प्रदर्शनी का आयोजन विद्यार्थियों में तर्क वितर्क क्षमता को प्रोत्साहित करने का उत्तम माध्यम है।
- फैक्ट्री के प्रबंधकों को आमंत्रण : उद्योगपतियों को वार्ता हेतु आमंत्रित करके उनके उद्योगों से होने वाले प्रदूषण तथा उसकी रोक के लिए उनके द्वारा अपनाये गए तरीकों पर उचित चर्चा का आयोजन किया जा सकता है।
- टी.वी. तथा रेडियो : ये दोनों साधन पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने हेतु तथा विद्यार्थियों में चर्चा हेतु विचार ज्ञान विकसित करने के सशक्त साधन हैं। दूरदर्शन पर अनेक कार्यक्रमों के प्रसारण द्वारा प्रदूषण और उसके दुष्प्रभाव से छात्रों को सचेत किया जा सकता है। रेडियो पर्यावरण अनुकूलन बनाने हेतु अति प्रभावशाली होता है।
- पर्यावरण सम्बन्धी फिल्में : दृश्य श्रव्य साधन होने के कारण ये फिल्में विद्यार्थियों की अधिकाधिक इन्द्रियों द्वारा अधिगम की प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली बनाती हैं तथा उनमें विचारों को उत्तम प्रकार से प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होती हैं।

प्रयोगात्मक कार्य (Experimentation)

प्रयोगात्मक कार्यों से तात्पर्य उन गतिविधियों से होता है जिनमें समस्याओं के समाधान हेतु व्यवस्थित रूप से गतिविधियाँ की जाती हैं। अन्य शब्दों में प्रयोगात्मक कार्यों से आशय उन कौशलों से होता है जिन्हें विद्यार्थी क्रियाओं के द्वारा सम्पादित करते हैं। प्रयोगात्मक कार्यों के माध्यम से विद्यार्थी की प्रदर्शन क्षमता को आंका जाता है। यह आमतौर पर मनोगत्यात्मक कौशल पर केन्द्रित होता है। इनका उद्देश्य विद्यार्थी में

टिप्पणी

कौशल का विकास करना होता है। प्रयोगात्मक कार्य उत्पाद/परिणाम/उत्पादन मुखी है। प्रयोगात्मक कार्यों से विद्यार्थी में संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं मनोगत्यात्मक क्षमताओं को विकसित किया जाता है। प्रायोगिक परीक्षण कौशल उन्मुखी है चूँकि कौशल प्रायोगिक परीक्षण का एक प्रमुख अंग है। एक शिक्षक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिक रुचिकर बनाने के लिए विभिन्न कौशलों का उपयोग करता है जैसे कि प्रारम्भ, पूछताछ, पुनर्बलन, पुनर्कथन तथा समाप्ति। नाट्यकला, कला और शिल्प, संगीत, सिलाई, पाक–कला, काष्ठ–कार्य, धातु–कार्य, योग, क्रीड़ा खेल आदि विषय प्रायोगिक विषय होते हैं। इनको पाठ्यक्रम में शामिल करने और उनका अध्ययन कराने का मुख्य उद्देश्य कुछ विशिष्ट प्रयोगिक कौशलों को प्राप्त करना तथा उनमें अभिवृद्धि करना है। विद्यार्थियों में प्रायोगिक कौशल का विकास महत्वपूर्ण समझा जाता है। विशुद्ध विज्ञान के विषय जैसे– भौतिकी, रसायनशास्त्र, जीवविज्ञान तथा प्रायोगिक विज्ञान जैसे– कम्प्यूटर, अभियान्त्रिकी, कृषि तकनीक, ग्रामीण तकनीक, जैव रसायन, जैव प्रौद्योगिकी में विषयों के विभिन्न पहलुओं को स्थापित तथा वर्णित करने के साथ–साथ आवश्यक वांछित कौशलों को विकसित करने की आवश्यकता होती है। इन विषयों का अध्ययन व अधिगम करने के लिए सभी विद्यार्थियों को दक्षता एवं ज्ञान का अनुप्रयोग करना होता है। इस परीक्षण से परीक्षार्थियों के क्रियात्मक पक्ष का मापन किया जाता है।

प्रायोगिक परीक्षण का प्रयोजन सैद्धान्तिक अवधारणाओं को अभ्यास आधारित कार्य से जोड़ना होता है। प्रयोगात्मक कार्य सिद्धान्त को बेहतर तरीके से समझने तथा सिद्धान्त को दैनिक जीवन की परिस्थितियों से जोड़ने में सहायता प्रदान करते हैं। प्रायोगिक परीक्षण में ज्ञान तथा कौशल को समाज की बेहतरी के लिए शामिल किया जाता है। प्रायोगिक परीक्षण के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

- ये परीक्षण अधिक समय लेने वाले होते हैं। इनके लिए अधिक व्यक्तियों के साथ–साथ अधिक संसाधनों की भी आवश्यकता होती है।
- इसमें परीक्षार्थी के लिए स्पष्ट तथा ठोस समझ के साथ–साथ धैर्य होना जरूरी होता है।
- प्रयोगात्मक परीक्षणों के संचालन के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है।
- विद्यार्थियों को बाह्य के साथ–साथ आन्तरिक अभिप्रेरण की आवश्यकता होती है।

प्रायोगिक परीक्षण का अवलोकन तथा आकलन : प्रायोगिक परीक्षण विभिन्न कुशलताओं के अर्जन का अवलोकन तथा आकलन करने हेतु एकमात्र सही साधन है। आकलन से तात्पर्य उस सीमा का मापन है जिसमें विद्यार्थी किसी दी गई परिस्थिति में उन बातों का अवलोकन करते हैं जिनका अवलोकन किया जाना चाहिए तथा उपयुक्त व्याख्या एवं विश्लेषण करते हैं और इस क्रम में वे बाद में उन अवलोकनों के परिणामों का मूल्यांकन कर सकते हैं। विद्यार्थियों को प्रदर्शन के रूप में अथवा स्वयं द्वारा करने के लिए अभ्यासों के रूप में विशिष्ट अवलोकन प्रस्तुत किया जा सकता है तथा इस बात की आवश्यकता है कि जो घटित हुआ है वे उन सबका प्रतिवेदन तैयार करें। अवलोकन काफी सीमा तक विद्यार्थियों को अपने अवलोकनों को दर्ज कराने की क्षमता पर निर्भर होगा तथा यह अपरिहार्य है कि आकलन प्रायः अवलोकन के लिखित

प्रतिवेदनों के लिए अंक प्रदान करने के रूप में हो। आमतौर पर प्रायोगिक परीक्षण में मुक्त प्रश्न होते हैं। प्रायोगिक परीक्षण में लगभग सभी विद्यार्थियों से यह वांछित होता है कि वे प्रायोगिक कार्यो से निष्कर्ष निकालें। इसमें सन्निहित प्रक्रिया की व्याख्या या परिस्थिति का विकास या दोनों किए जाने की आवश्यकता होती है।

टिप्पणी

प्रयोगात्मक कार्यों की सीमाएं : इन परीक्षणों की अपनी सीमाएं होती हैं।

- इनके द्वारा सैद्धान्तिक ज्ञान एवं बालक के भावात्मक पक्ष का सही–सही मापन नहीं किया जा सकता है।
- इनके सम्पादन के लिए समय और शक्ति की भी अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता होती है।

सिक्किम में पर्यावरण को उत्तम रखने के उपायों का अध्ययन (Study of measures taken up to keep Environment in Sikkim)

1975 में भारतीय संघ में सम्मिलित होने वाला प्रदेश हिमालय की गोद में बसा हुआ वह हरा–भरा भू–भाग है जो अपनी प्राकृतिक संपदा को समृद्ध बनाने के साथ–साथ आर्थिक विकास की दिशा में भी निरन्तर अग्रसर हो रहा है। पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं व सीमाओं के बावजूद सिक्किम न केवल अपने पडोसी पूर्वोत्तर राज्यों बल्कि देश के अनेक अन्य राज्यों की तुलना में भी तीव्रता से अग्रसर है।

सिक्किम 'ग्रीनलैण्ड' यानी हरित प्रदेश के नाम से विख्यात हो गया है। इसे उद्यानों का प्रदेश भी कहा गया है। इसके दो प्रमुख कारण हैं–

- प्रकृति ने इस राज्य को सुन्दरता और हरियाली का असीम भण्डार प्रदान किया है।
- सरकार ने प्राकृतिक धरोहर के संरक्षण हेतु अनेक परियोजनाओं का क्रियान्वयन किया है।

पर्यावरण संरक्षण को उच्च प्राथमिकता देते हुए राज्य सरकार ने वनों और भूमि के उपयोग के बारे में राज्य नीति तैयार की है। इस नीति के क्रियान्वयन पर गंभीरता से कार्य हो रहा है। अनेक विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में 'इको–क्लब' भी बनाये गये हैं जिनमें छात्र–छात्राओं को पर्यावरण संरक्षण हेतु जागरूक किया जाता है तथा उनकी सहभागिता हेतु उन्हें अनेकानेक अवसर प्रदान किए जाते हैं। वन्य जीवन संरक्षण भी पर्यावरण संरक्षण का अंग बनाया गया है और संपूर्ण राज्य में वन्य प्राणियों के शिकार पर प्रतिबंध लगाया गया है। यह प्रतिबंध जल जीवों की हत्या पर भी लागू होता है। पर्वतीय संपदा और धरोहर को हानि से बचाने हेतु सिक्किम के देव पर्वत कंचनजंघा सहित समस्त ऊँची चोटियों पर चढ़ाई करने तथा गर्म झरनों, पार्कों और महत्वपूर्ण गुफाओं में जाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है।

मात्र सरकारी प्रयासों से संपूर्ण प्रदेश में पर्यावरण बचाव में सफलता नहीं पाई जा सकती है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए राज्य सरकार ने पर्यावरणविदों व संस्थाओं का भी सहयोग लिया है। सुनीता नारायण पर्यावरणविद तथा निदेशक (सेंटर फॉर साइंस एण्ड एन्वायरमेण्ट) की अध्यक्षता में 'पर्यावरण आयोग' का गठन किया गया है जो पर्यावरण को प्रभावित करने वाली गतिविधियों पर नियंत्रण रखता है तथा

टिप्पणी

राज्य की पर्यावरणीय परिस्थितियों को उत्तम बनाने हेतु उपाय भी सुझाता है। इसी प्रकार सामान्य जन समूह को हरियाली के विस्तार के अभियान में सम्मिलित करने और उन्हें इस दिशा में प्रेरित व निर्देशित करने के विचार से 'सिक्किम ग्रीन मिशन, 2006' गठित किया गया है। राज्य में निर्मित व निर्माणाधीन समस्त सड़कों के साथ पर्याप्त मात्रा में वृक्ष लगाना अनिवार्य कर दिया गया है। इसमें समस्त सरकारी विभागों द्वारा एक या दो प्रतिशत राशि देना अनिवार्य है। यह मिशन एक स्वायत्त संस्था के रूप में शासन और सामान्य जनता के सहयोग से हरियाली अभियान को गति प्रदान करता है। भारत में जैव विविधता पार्क सिक्किम राज्य (तेंदोंग) में भी बनाया गया है।

उद्योगों तथा बिजलीघरों के निर्माण व संचालन से पर्यावरण को हानि होने की आशंका अधिक रहती है। इस खतरे को टालने के उद्देश्य से राज्य सरकार ने पनबिजली परियोजनाओं तथा अन्य परियोजनाओं से पूर्व उनसे पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन करना अनिवार्य बना दिया है। इसी प्रकार पनबिजली परियोजनाओं हेतु एक पर्यावरण प्रबन्ध योजना और जल ग्रहण क्षेत्र शोधन योजना भी लागू की गई है। इसके अतिरिक्त, राज्य उद्योग नीति, 1996 में यह प्रावधान किया गया है कि सिक्किम में पर्यावरण अनुकूल व प्रदूषण रहित उद्योगों को ही प्रोत्सहित किया जाए।

सिक्किम राज्य में पर्यटन विकास के लिए बनाई गई मुख्य योजना में पर्यावरण संरक्षण को केन्द्रीय स्थान देना, राज्य की पर्यावरण और प्राकृतिक संपदा के प्रति संवेदनशीलता दर्शाता है। खेती बाड़ी, कृषि, बागान तथा वृक्षारोपण में रासायनिक उवर्रकों तथा कीटनाशकों के स्थान पर केवल जैव खाद का ही प्रयोग किया जाना सुनिश्चित किया गया। पर्यावरण अभियान में झीलों, हिमनदों और अन्य जलाशयों को भी सम्मिलित किया गया है। इसके लिए आर्द्रभूमि संरक्षण कार्यक्रम तैयार किया गया है तथा क्रियान्वित किया जा रहा है। जल संसाधनों पर भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के बढ़ते प्रभाव की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण अध्ययन हेतु विशेषज्ञ दल बनाया गया है।

राज्य को केन्द्र सरकार और पर्यावरण मंत्रालय का पूर्ण समर्थन तथा सहयोग प्राप्त हो रहा है। सिक्किम में 4,000 से अधिक प्रजातियों के पौधे और झाड़ियाँ पाई जाती हैं। विविध प्रकार के पुष्प उद्यान इसकी शोभा में वृद्धि करते हैं। अनेक हिमधवल, पर्वत चोटियाँ, दो प्रमुख नदियाँ (तीस्ता व रंगित) तथा हरी भरी घाटियाँ यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य की पहचान हैं। सिक्किम सरकार के प्राकृतिक संपदा संरक्षण हेतु किए गये सक्रिय प्रयास सभी के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं तथा सिक्किम के पर्यावरण संरक्षण के अभियान को निरन्तर महत्व प्राप्त हो रहा है।

सिक्किम की कृषि भी यहाँ के पर्यावरण पर आधारित है। अकूत प्राकृतिक व वन संपदा की उपस्थिति के कारण यहाँ बागबानी पर विशेष बल दिया जाता है। बिना मौसम की सब्जियाँ उगाने को प्रोत्साहित किया गया है ताकि उत्पादकों को अच्छे दाम प्राप्त हो सकें। इलायची, अदरक, फूल, संतरे और चेरी यहाँ की प्रमुख व्यापारिक फसलें हैं। राज्य में जैविक कृषि को भी प्रोत्साहित किया गया है। फूलों की मांग में वृद्धि हेतु फूलों की खेती को भी विकसित किया गया है। फूलों की खेती की तकनीक के प्रशिक्षण हेतु पूर्वी सिक्किम (पांगचांग) में पुष्प कृषि प्रशिक्षण केन्द्र खोला गया है।

टिप्पणी

सिक्किम राज्य प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर होने के कारण यहाँ पर पर्यटन की अपार संभावनाएँ हैं तथा सिक्किम सरकार भी ग्रामीण पर्यटन की अवधारणा को संवेदनशीलता के साथ अपना रही है। इस योजना में पर्यटक प्रकृति का आनन्द लेने के साथ–साथ यहाँ की संस्कृति, लोकशिल्प, लोककलाओं और लोकजीवन से परिचित होते हैं तथा इसका प्रचार व प्रसार न केवल राष्ट्रीय, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी होता है। ग्रामीण पर्यटन एक प्रकार से सामाजिक पर्यटन है। इसमें पर्यटक स्थानीय जन साधारण के मध्य रहकर, राष्ट्रीय तथा भावनात्मक एकता को भी सुदृढ़ता प्रदान करता है।

आधुनिक पर्यटन को ध्यान में रखते हुए सिक्किम में ग्रामीण पर्यटन के साथ पर्यावरण पर्यटन (Eco-tourism) को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। पर्यावरण के अनुकूल आवास विकसित किए गये हैं। वन–वास नाम की अवधारणा के अन्तर्गत वन क्षेत्रों में झोपड़ी नुमा आवास बनाये गये हैं। इस अभिनव प्रयोग से वनों को हानि पहुंचाये बिना लाभ अर्जित किया जा रहा है।

सिक्किम राज्य ने अपने संवेदनशील प्रयासों द्वारा स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान स्थापित की है।

गोवा में पर्यावरण को उत्तम रखने के उपायों का अध्ययन (Study of Measures taken up to keep Environment in Goa)

गोवा प्राचीनकाल में गोमांचल, गोपकपट्टम, गोपकेपुरी, गोवापुरी और गोमांतक आदि अनेक नामों से विख्यात रहा है। गोवा का क्षेत्रफल 3,702 वर्ग किलोमीटर है तथा यहाँ 14,57,723 जनसंख्या निवास करती है। गोवा की राजधानी पणजी है व राजभाषा कोंकणी है। गोवा भारतीय प्रायद्वीप के पश्चिमी तट पर स्थित है। इसके उत्तर में कन्नड़ जिला और पूर्व में पश्चिमी घाट तथा पश्चिम में अरब सागर है।

राज्य की मुख्य खाद्य फसल चावल है। इसके अतिरिक्त दालें, रागी तथा कुछ अन्य खाद्य फसलें भी उगायी जाती है। नारियल, काजू, सुपारी तथा गन्ने जैसी नकदी फसलों के साथ अनानास, आम और केला भी होता है। राज्य में 1424 वर्ग किलोमीटर से अधिक क्षेत्र में घने वन हैं।

गोवा में सेलाउलिम तथा अंजूनेम बाँधों व अन्य लघु सिंचाई परियोजनाओं के आरम्भ हो जाने से सिंचित क्षेत्र में निन्तर वृद्धि हो रही है। इन परियोजनाओं से कुल 43,000 हेक्टेयर की सिंचाई क्षमता उपलब्ध हो सकी है। राज्य के खनिज उत्पादों में फैरो मैंगनीज, बॉक्साइट, लौह–अयस्क आदि सम्मिलित हैं, जो राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं।

राज्य में मत्स्यकी का एक प्रमुख स्थान है क्योंकि 90 प्रतिशत जनसंख्या मत्स्य उद्योग में संलग्न है। लगभग एक लाख लोग मत्स्य उद्योग में कार्यरत हैं। अधिकतर मछुआरों को राज्य बीमा योजना में सम्मिलित किया गया है।

राज्य के 34 प्रतिशत क्षेत्रफल पर वन है। लगभग 30.18 लाख पौधे लगाए गए तथा 978.50 हेक्टेयर क्षेत्र पर वृक्षारोपण किया गया है। जैव संरक्षण हेतु यहाँ पर जलप्रपात तथा माएम झील है। राज्य में समृद्ध वन्य प्राणी उद्यान (बोंडला, कोटीगाव व मोलेम) है और चोराव में पक्षी उद्यान है, जिसका कुल क्षेत्रफल 354 वर्ग किलोमीटर है। राज्य को कला एवं संस्कृति निदेशालय द्वारा आई एस ओ 9001–2000 प्रमाणपत्र दिया गया है।

टिप्पणी

वायु–प्रदूषण के बढ़ते दुष्प्रभाव को कम करने हेतु सरकार ने गोवा के निवासियों को साइकिल के प्रयोग के प्रति प्रोत्साहित करने की योजना बनाई है। इस संबंध में सरकार ने किराये पर जी पी एस (Global Positioning System) युक्त साइकिलों के संचालन हेतु एक निजी कंपनी के साथ समझौते की योजना बनाई है। पर्यावरण अनुकूल वातावरण हेतु जैव ईंधन चालित बसों का भी प्रबंध किया गया है।

खनन गोवा के राजस्व का प्रमुख स्रोत है, साथ में यह पर्यावरण संकट की विडम्बना से भी जुड़ा है। अक्टूबर 2012 में सुप्रीम कोर्ट ने गोवा के समस्त लौह अयस्क खनन और परिवहन पर प्रतिबंध लगाने का आदेश दिया था, पर्यावरण निर्गम के पश्चात् ही खनन कंपनियों को नई चीज दी जा सकती है। विशेषज्ञों के अनुसार, गोवा में खदानों को वार्षिक छह करोड़ टन अयस्क के उत्पादन की अनुमति थी। डाउन टू अर्थ संस्था के एक आकलन के अनुसार, गोवा में खनन का व्यापार 16 हजार करोड़ से 22 हजार करोड़ प्रति वर्ष का माना गया है। राज्य के चार तालुकों में अधिकांश खदानें हैं जहाँ स्थानीय लोग वायु, जल तथा ध्वनि से पीड़ित हैं। लौह और मैंगनीज की मांग में वृद्धि होने से गोवा की खनिज संपदा का आवश्यकता से अधिक दोहन होने लगा।

इंडियन स्टेट ऑफ फॉरेस्ट रिपोर्ट 2017 के अनुसार, 2015 से 2017 की अवधि में खनन तथा दूसरी परियोजनाओं के कारण 900 हेक्टेयर जंगल समाप्त हो गये हैं।

गोवा में खनन की नहीं, अपितु अन्य विकास परियोजनाएं भी जंगलों, खेतों और हरित क्षेत्र को निगल रही हैं। केन्द्र द्वारा वित्त पोषित भारतमाला और सागरमाला परियोजनाओं के अन्तर्गत आठ–लेन हाईवे, नया हवाई अड्डा, कोयले के लिए रेल लाइनें, रियल एस्टेट बिजनेस के प्रसार व अनगिनत आवासीय निर्माण कार्यों के कारण पेड़ों का दोहन निरन्तर जारी है।

प्रसिद्ध पर्यावरणविद् माधव गाडगिल के अनुसार असंख्य विकास कार्य, प्राकृतिक प्रवाह को बाधित करते हैं। पर्यावरणविदों के अनुसार, विकास कार्य आवश्यक हैं परन्तु पर्यावरण को कम हानि पहुँचाने वाले विकल्पों के सम्बन्ध में सोचना चाहिए।

खनन के साथ गोवा के समुद्र तटों पर फैला प्लास्टिक कचरा प्रकृति को हानि पहुँचाता है। इसके लिए मानव ही उत्तरदायी है। इसी कारण गोवा पर्यटन विकास निगम (GTDC) ने राज्य भर में प्लास्टिक की बोतलों, कपों को समाप्त करने की घोषणा की है। जी.टी.डी.सी. के अध्यक्ष दयानंद सोप्ते के अनुसार यह निर्णय पर्यावरण संरक्षण में योगदान देने और प्लास्टिक कचरे को कम करने में एक लंबा रास्ता तय करेगा। प्लास्टिक कचरे का बढ़ना चिंता का विषय है और इस पर्यावरण को प्लास्टिक से मुक्त बनाए रखना महत्वपूर्ण है। पर्यटन मुख्य कार्यालय और आवासों पर पानी के डिस्पेंसर पानी के फिल्टर लगाये जाएंगें। पानी को धातु या कांच की बोतलों में दिया जाए जो पुनः प्रयोग करने योग्य हो। चाय व कॉफी को भी कागज या काँच के कप में दिया जाना सुनिश्चित किया गया।

सोप्ते के अनुसार 'यह शुभारम्भ सर्वप्रथम ऑफिस से किया गया तथा अगले तीन महीनों में निवास स्थल पर भी लागू किया जाएगा', जिससे पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें। प्लास्टिक की वस्तुओं के उपयोग पर प्रतिबंध लगाने का यह निर्णय पर्यावरण की दृष्टि से स्थायी पर्यटन क्षेत्र बनाने में सहायता प्रदान पर करेगा।

प्लास्टिक की बोतलें पर्यटन उद्योग में उपयोग की जाने वाली प्रमुख प्लास्टिक वस्तुओं में से एक हैं और वे महासागरों में 20 प्रतिशत से अधिक प्लास्टिक प्रदूषण में योगदान करती हैं।

टिप्पणी

सरकार तथा मानव, दोनों का कर्तव्य है कि गोवा की अद्‌भुत प्रकृति पर प्रदूषण नामक राक्षस आक्रमण न कर पाए तथा उसे इस राक्षस से सुरक्षित रखा जाना चाहिए।

हिमाचल प्रदेश में पर्यावरण को उत्तम रखने के उपायों का अध्ययन (Study of Measures taken up to keep Environment in Himachal Pradesh)

हिमाचल का शाब्दिक अर्थ है बर्फ से ढकी पहाड़ी के मध्य स्थित भूमि। पश्चिमी हिमाचल की गोद में स्थित हिमाचल प्रदेश में प्रदेश के लिए विभिन्न रास्ते हैं (पंजाब में मैदान, शिवालिक पहाड़ियाँ या हरे–भरे चीड़ के वनों से ढकी शिमला की पहाड़ियाँ)। इसकी पूर्वी दिशा में स्थित है तिब्बत, उत्तर में जम्मू व कश्मीर, दक्षिण पूर्व में उत्तराखण्ड, दक्षिण में हरियाणा एवं पश्चिम में पंजाब प्रदेश। हिमाचल प्रदेश की समस्त भूमि पहाड़ियों व ऊँची चोटियों से भरी हुई है। इन चोटियों की समुद्र तल से ऊँचाई 350 मीटर से सात हजार के मध्य में पाई जाती है। प्राकृतिक संरचना के अनुसार हिमाचल के भू–क्षेत्र को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है–

- **निचली पहाड़ियाँ** : इस क्षेत्र को शिवालिक क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। इसमें सम्मिलित हैं– कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना, विलासपुर, मंडी जिले के निचले क्षेत्र, सोलन तथा सिरमौर। इस क्षेत्र में औसतन वर्षा लगभग 1500 मि.मी. से 1800 मि.मी. के मध्य है। यहाँ की समुद्र तल से ऊँचाई 350 मीटर या 1050 फुट से 1500 मीटर या 4500 फुट तक पाई जाती है। कृषि उत्पादन की दृष्टि से यहाँ मक्का, गेहूँ, अदरक, गन्ना, धान, आलू तथा खट्‌टी किस्म के फल आदि उगाये जाते हैं। प्राचीन काल में इस क्षेत्र को मानक पर्वत के नाम से जाना जाता था।
- **भीतरी या मध्य हिमालय** : इस क्षेत्र में प्रदेश के ऊपरी भाग तथा सिरमौर जिले की पच्छाद व रेणुका तहसील, मंडी जिले की करसोग तहसील, कांगड़ा जिले के ऊपरी भाग तथा पालपुर तहसील और चंबा जिले की चुराह तहसील के ऊपरी भाग सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र की समुद्रतल से न्यूनतम ऊँचाई 1500 मीटर या 4500 फुट से 4500 मीटर या 13500 फुट है। यहाँ की जलवायु तथा मिट्‌टी, आलू, समशीतोष्ण कटिबंध फल तथा अन्य सामान्य फल प्रजातियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

  मध्य हिमालय की दो प्रमुख चोटियां उसी क्षेत्र में स्थित हैं–पीर पंजाल तथा धौलाधार।
- **वृहत हिमालय या उच्च पर्वतीय क्षेत्र** : इसमें जिला किन्नौर, चंबा जिले की पांगी तहसील तथा लाहुल स्पिति जिले के कुछ भू–भाग सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र की समुद्रतल से ऊंचाई 4500 मीटर तथा इससे अधिक पाई जाती है। यहां पर वर्षा बहुत कम होती है। इस क्षेत्र का अधिकतर भाग बर्फ से ढका होता है।

हिमाचल प्रदेश के पर्यावरण को सर्वाधिक हानि बादल फटने की घटनाओं से उठानी पड़ रही है। सीमेंट के नाम पर अनेक पहाड़ समाप्त कर दिये गये हैं। विद्युत परियोजनाओं और सड़कों के नाम पर नदियों की राह मोड़ी जा रही है। परियोजनाओं के लिए पहाड़ों को छलनी किया जा रहा है। परिणामस्वरूप बादल फटने व भू–स्खलन

की घटनाएं कहर बरसा रही हैं। वास्तव में हिमाचल को दुहा जा रहा है। भविष्य में इसके भयावह परिणामों का सामना करना पड़ेगा।

टिप्पणी

देश के एक बड़े भाग को स्वच्छ वायु व जल उपलब्ध कराने वाले हिमाचल का पर्यावरण दूषित हो रहा है। प्रदेश में बढ़ रही कचरे की स्थिति और कूड़े का दंश झेल रही नदियां भविष्य में खतरे का संकेत अवश्य दे रही हैं। वाहनों की संख्या को लेकर उद्योगों का विकास भी यहां के पर्यावरण पर भारी पड़ रहा है। प्रदूषण के कारण बर्फ पहाड़ों से कम होती जा रही है।

पर्यावरणविद् (कुलभूषण उपमन्यु) के अनुसार हिमाचल में भी पर्यावरण सुरक्षित नहीं है। इसमें संवेदनशीलता की आवयश्यकता है। हिमाचल में भी मैदानों वाला मॉडल अपनाया जा रहा है। वास्तव में पहाड़ों के लिए एक भिन्न मॉडल की आवश्यकता होती है। सड़कों के निर्माण के लिए पहाड़ दरक रहे हैं। नदियों व जंगलों को बचाना होगा। पर्यटन हेतु स्वच्छ वायु के स्थान हिमालय का संरक्षण अति आवश्यक है। यहां पर पर्यावरण संरक्षण के अनेक अभियान चल रहे हैं। इसी से आज हिमाचल प्रदेश की 70 प्रतिशत भूमि में वन है।

हिमाचल प्रदेश में पर्यावरण की स्थिति अन्य राज्यों से अच्छी है। यहां का वातावरण स्वच्छ बनाने में यहां पर प्रयुक्त होने वाली हाइड्रो पावर से प्रदूषण नहीं होता है। हाइड्रो पावर में हिमाचल राज्य अग्रणी है। ईको टूरिज्म के माध्यम से हिमालय में आने वाले पर्यटकों को प्रकृति के साथ जोड़ने की सार्थक पहल की गई है। इससे पर्यावरण को नुकसान भी कम होता है तथा यहां के निवासियों की आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ होती है। यहां विकास कार्यों हेतु प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है। अन्य राज्यों में मृदा, जल व वायु दूषित हो रहे हैं, परंतु हिमाचल में स्थिति अभी नियंत्रण में है। धीरे–धीरे प्रदूषण का असर दृष्टिगोचर होने लगा है। व्यावसायिक कृषि, बागबानी के चलते प्रदेश में अत्यधिक कीटनाशकों व रासायनिक खादों का उपयोग किया जाने लगा है। हिमाचल में शहरीकरण हो रहा है, लोग गांवों से शहरों में पलायन कर रहे हैं। शहरों का विकास करने के लिए पहले से अधिक पेड़–पौधे लगाने, हरित स्थान छोड़ने का प्रावधान होना चाहिए। नगरीकरण के कारण, यहां दिन प्रतिदिन ठोस अपशिष्ट में वृद्धि हो रही है। इस कारण निष्पादन जैव पुनर्चक्रीकरण विधि से होना चाहिए। वर्षा के जल को एकत्र करने के लिए वर्षा जल संरक्षण टैंक बनाये गये हैं। विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक समय–समय पर जन–समूह को इसके संबंध में जागरूक भी करते हैं। सूखा पड़ने की स्थिति में इसका पानी उपयोग किया जाता है। हरित गृह गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए अधिक से अधिक वृक्षारोपण होना चाहिए। साथ ही कृषि बागबानी कार्यों में पर्यावरण हितैषी विधियों, जैव कीटनाशक पदार्थों, केंचुए की खाद आदि का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करके हिमाचल प्रदेश को स्वच्छ बनाया जा सकता है।

पर्यावरण प्रदूषण के कारण हिमाचल के वातावरण में भी नकारात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर है। अब हिमाचल में सर्दियां गर्म होती जा रही हैं। वर्षा कम हो रही है। वर्षा पहले की भांति नहीं होती है। एक दम तेज वर्षा के कारण भू–स्खलन हो जाता है। यहां के तापमान में वृद्धि चिन्ता का विषय है। प्रकृति की इस अनमोल संपदा का संरक्षण अति अनिवार्य है जहां जाकर मनुष्य स्वयं को प्रकृति के अति निकट महसूस करता है। हिमाचल प्रदेश पर्यावरण और वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी विभाग (Himachal

टिप्पणी

Predesh Department of Environment, Science and Technology) की स्थापना 13 अप्रैल, 2017 को शिमला स्थित यूएस क्लब के निकट हुई थी। विभाग का मुख्य उद्देश्य राज्य के पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और सुधार तथा पर्यावरण के अनुकूल प्रबंधन प्रथाओं और प्रौद्योगिकियों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण और संवर्द्धन कार्यक्रमों की योजना, समन्वय, प्रोत्साहन तथा निगरानी करना है।

- पर्यावरण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा प्रदूषण की रोकथाम, पर्यावरण संरक्षण और विनिमय, नीति निर्माण, पर्यवेक्षण और नवीन प्रौद्योगिकियों का उपयोग करके, निगरानी और संवर्धन के लिए कार्यक्रमों की योजना बनाना, समन्वय करना, प्रोत्साहन करना और इसकी निगरानी करना।
- संगठित जानकारी, एकत्रीकरण और पर्यावरण की जानकारी के प्रसार की सुविधा द्वारा पर्यावरण जागरूकता, मूल्यांकन, वकालत और कार्यवाही को सुदृढ़ करना।

यह विभाग हिमाचल प्रदेश की प्राकृतिक संपदा संरक्षण हेतु एक महत्वपूर्ण कदम है जो कि इस कार्य को बहुत बेहतर तरीके से अंजाम की ओर बढ़ा रहा है और राष्ट्र की धरोहर को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

केरल में पर्यावरण को उत्तम रखने के उपायों का अध्ययन (Study of Measures Taken up to keep Environment in Kerala)

पश्चिमी घाट की पहाड़ियों से घिरा हुआ केरल प्रांत भारतीय प्रायद्वीप का दक्षिण पश्चिमी भाग है। इसके पूरब में पश्चिमी घाट की सबसे ऊंची चोटियां अनामुंड़ी और अगास्त्याकुडम तथा पश्चिम में अरब सागर है। उत्तर–पूर्व मानसून और दक्षिण–पश्चिम मानसून इसे सदैव हरा–भरा रखते हैं। पहाड़ों, घाटियों और झीलों के कारण इसे 'देवताओं का देश' कहा जाता है। इस प्रांत की लम्बी और परस्पर जुड़ी हुई झीलें मछलियों और सीपियों की समृद्धि के स्रोत हैं। इन झीलों के किनारे नारियल के बाग और धान के खेत इसकी समृद्धि में वृद्धि करते हैं। भारत के सर्वाधिक समृद्ध राज्यों में से एक केरल की विश्व विख्याति हेतु यहां का पर्यटन अमूल्य योगदान प्रदान करता है। यहां की विभिन्न सांस्कृतिक एवं भौगोलिक मान्यताओं ने इसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक बड़ा पर्यटन स्थल बना दिया है। केरल एक पर्यटन स्थल होने के साथ ही साथ एक आधुनिक एवं उन्नत समाज का उदाहरण भी है। इसी कारण इसे स्वच्छ एवं शान्तिपूर्ण राज्य का स्थान प्राप्त है।

18वीं सदी तक केरल का एक तिहाई हिस्सा घना जंगल था लेकिन वर्तमान में एक चौथाई हिस्सा ही जंगल है। अब तक आंकड़ों के अनुसार भारत की 25 प्रतिशत (15000) पादप प्रजातियां केरल में हैं। यहां पर 118 स्तनधारियों की प्रजातियां, 500 पक्षियों की प्रजातियां तथा 173 रेंगने वाले प्राणियों की प्रजातियां हैं।

केरल को पर्यटन मंत्रालय ने 'Gods own Country' कहकर पर्यटन को प्रोत्साहन दिया है। केरल अदरक, केले, चाय एवं कॉफी उत्पादन में भारत में सबसे अग्रणी राज्य है। यहां मसालों के बड़े–बड़े बाग हैं। इसलिए इसे 'मसालों का बगीचा' भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त यहां रबड़, काजू, नारियल, चावल, काली मिर्च व गन्ना इत्यादि उत्पन्न होता है।

टिप्पणी

केरल देश के उन राज्यों में से है, जहां सर्वाधिक मानसूनी वर्षा होती है। लेकिन पश्चिमी तट पर हवा के कम दबाव बने रहने के कारण इस राज्य को प्रभावकारी बाढ़ का सामना करना पड़ा है। पर्यटन वैज्ञानिक इस प्रलय के लिए मानवीय हस्तक्षेप को उत्तरदायी बताते हैं। जलवायु परिवर्तन तथा वन दोहन इस भारी वर्षा के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार हैं। पर्यावरण वैज्ञानिक डॉ. वी.एस. विजयन के अनुसार, केरल वास्तव में मानव निर्मित त्रासदी का शिकार हो रहा है। पहाड़ी क्षेत्र को संरक्षित करने हेतु तैयार गाडगिल समिति की रिपोर्ट को क्रियान्वित कर इस प्रकार की त्रासदियों को सीमित किया जा सकता है। पारिस्थितिकीय रूप से संवेदनशील क्षेत्रों में अवैज्ञानिक तरीके से की गई विकासात्मक गतिविधियों ने इस प्रलय को जन्म दिया है। भू–स्खलन और बाढ़ उन क्षेत्रों में अधिक होती है जहां व्यापक मानवीय हस्तक्षेप होता है। मानसूनी वर्षा में वृद्धि का कारण भूमंडलीय ऊष्मीकरण भी है।

कस्तूरीरंगन ने क्षेत्रफल वर्गीकरण में कुछ परिवर्तन करके पारिस्थितिकीय संवेदनशील क्षेत्र का प्रतिशत घटाकर 64 से 37 प्रतिशत कर दिया है। 2018 में केरल में वर्षा का स्तर 219 मिलीमीटर रहा। भारी वर्षा के कारण 8316 करोड़ की क्षति पहुंची। 52,856 परिवारों के 2.23 लाख लोग आवास रहित हो गये। 10,000 किलोमीटर सड़कें क्षतिग्रस्त हो गई थीं।

पर्यावरण संरक्षण हेतु वनों की रक्षा अति आवश्यक है। भारत विज्ञान संस्थान के एक अध्ययन के अनुसार केरल में 45 वर्षों में नौ लाख हेक्टेयर वनों का दोहन हो गया है। पर्यावरण नियमों की अवहेलना करते हुए खनन कार्य भी प्राकृतिक आपदा को बढ़ावा देते हैं। बाढ़ का जल यदि विभिन्न परंपरागत जल स्रोतों, दलदली क्षेत्रों आदि में समा जाता है, तो बाढ़ त्रासदी से हानि होने की संभावना कम होती है। नदियों के किनारे की भूमि पर अतिक्रमण होने से आम जनता को इस त्रासदी का सामना करना पड़ता है। बांध प्रबंधन में अधिक महत्व पन बिजली उत्पादन को दिया जाता है। इसी कारण मानसून के आरंभिक चरण में अधिक वर्षा होने पर बांधों को भर दिया जाता है। ऐसे में मानसून के आगामी चरण में अधिक वर्षा होने पर पानी छोड़ना पड़ता है। इस स्थिति के कारण त्रासदी उत्पन्न होती है।

तटीय व पर्वतीय क्षेत्रों की अधिकता के कारण केरल को जलवायु परिवर्तन के दौर में भूस्खलन और बाढ़ के खतरों को कम करने के लिए विशेष रूप से सतर्क रहना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

7. असाइनमेंट शिक्षण–अधिगम क्रिया में किसका कार्य करते हैं?

   (क) शिक्षक का (ख) पूरक का

   (ग) विद्यार्थी का (घ) विद्यालय का

8. उद्योगों तथा बिजलीघरों के निर्माण व संचालन से किसे हानि होने की आशंका रहती है?

   (क) बिजली को (ख) उद्योगों को

   (ग) समाज को (घ) पर्यावरण को

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (ख)
2. (क)
3. (ग)
4. (क)
5. (घ)
6. (क)
7. (ख)
8. (घ)

2.7 सारांश

सतत विकास (Sustainable Development) का सामान्य अर्थ जीवन धारण करने योग्य विकास, संधृत या टिकाऊ विकास है अथवा दीर्घकाल तक रहने वाला विकास है। इस प्रकार के विकास का आधार पर्यावरण से प्राप्त विभिन्न संसाधनों पर टिका है।

प्रसिद्ध जीव–रसायन शास्त्री फ्रेड्रिक वेस्टर के विचार के अनुसार हमें प्रकृति से बहुत कुछ सीखना होगा, क्योंकि यह आदर्श तकनीक तथा उचित प्रबन्ध कौशल का परिचायक है। उनके अनुसार, 4 अरब प्राणियों ने अब तक 30 हजार पौधों की प्रजातियों तथा लगभग 200 पक्षियों और जन्तुओं की प्रजातियाँ नष्ट कर दी हैं और लगभग 1000 नष्ट होने के खतरे का सामना कर रही हैं। दूसरी ओर मानव जनसंख्या निरन्तर बढ़ रही है तथा खाने–पीने के पदार्थों की खपत दस गुना अधिक हो गयी है। पृथ्वी की उर्वरक परत गहन खेती के कारण पतली हो रही है। भवनों के निर्माण, भू–क्षरण तथा मरुस्थलों का विकास हो रहा है। यह सब आत्मघातक है। इसके लिये प्रकृति की पारस्परिक क्रियाओं को समझना होगा क्योंकि उनके मध्य एक सार्वभौमिक एकता होती है। प्रो. वेस्टर के अनुसार, ''दुनिया का भविष्य एक प्रकार से साइबरनैटिक विज्ञान को ठीक प्रकार से समझने पर निर्भर है।'' ऊर्जा के पुनः प्रयोग से ऊर्जा समस्या कम हो जाती है। वृहत् उद्योगों के स्थान पर अधिक संख्या में छोटी इकाइयाँ स्थापित करने से ऊर्जा की बचत होती है तथा प्रदूषण का खतरा भी कम हो जाता है। उनके अनुसार दोष वर्तमान तकनीक का नहीं, बल्कि उसके गलत प्रयोग का है, इसलिये उसका विकास होना चाहिये, जिसे जीव–विज्ञान दर्शाते हैं, अर्थात् कम से कम स्थान, ऊर्जा एवं भौतिक सामग्री की आवश्यकता हो ऐसी तकनीक अपनायी जाए, जो प्रकृति के विरुद्ध न हो, जिससे पर्यावरण प्रदूषण कम से कम हो तथा जो न केवल मनुष्यों वरन् सम्पूर्ण, जीव–जगत् के लिये लाभदायक हो। वास्तव में उपर्युक्त विचार मूलरूप से पारिस्थितिकी तन्त्र के अनुरूप विकास के विचार को ही सिद्ध करते हैं।

जल संरक्षण का अर्थ पानी की बर्बादी तथा प्रदूषण को रोकने से है। जल संरक्षण एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि वर्षाजल हर समय उपलब्ध नहीं रहता अतः पानी की कमी को पूरा करने के लिये पानी का संरक्षण आवश्यक है। एक अनुमान के

टिप्पणी

अनुसार विश्व में 350 मिलियन क्यूबिक मील पानी है। इसमें से 97 प्रतिशत भाग समुद्र से घिरा हुआ है। पृथ्वी पर जल तीन स्वरूपों में उपलब्ध होता है। तरल जल– समुद्र, नदियाँ, झरने, तालाब, कुएँ आदि। ठोस जल (बर्फ)– पहाड़ों तथा ध्रुवों पर जमी बर्फ। वाष्प (भाप)– बादलों में भाप।

जल संरक्षण से तात्पर्य जल संसाधनों के संरक्षण, नियंत्रण और विकास से है, दोनों सतही और भूजल तथा प्रदूषण की रोकथाम। जल संरक्षण जलसंधानों का संरक्षण, नियंत्रण और प्रबंधन/जल संरक्षण कार्यशील पर्यावरण प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण पहलू है।

भारत एक विकासशील देश है, जिसके क्षेत्र विशाल हैं, जटिल स्थलाकृति है, परिवर्तनशील जलवायु है और एक बड़ी आबादी है। देश में अवक्षेपण तथा प्रवाह असमान रूप से वितरित है। जल्दी–जल्दी आने वाली बाढ़, सूखा तथा अस्थिर कृषि उत्पादन हमेशा से एक गम्भीर समस्या रही है। भारतीय मौसम विभाग के अनुसार भारत में वर्षा के केवल चालीस दिन होते हैं और फिर लम्बी अवधि के लिए शुष्क मौसम होता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसका आर्थिक विकास कृषि से जुड़ा हुआ है। बढ़ती हुई जनसंख्या और परिणामस्वरूप खाद्य–उत्पादन में वृद्धि, कृषि क्षेत्र और सिंचाई क्षेत्र में वृद्धि के कारण जल का अधिक उपयोग हो रहा है। जल संसाधनों के अत्यधिक उपयोग के कारण, देश के कई भागों में पानी की कमी हो रही है।

पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण संरक्षण एवं सतत विकास को बढ़ावा देने के लिये सरकारों की भूमिका बहुत आलोचनात्मक है। विभिन्न पर्यावरणीय मुद्दों पर कार्य करने के लिये संयुक्त राष्ट्र द्वारा राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय सरकारों तथा सिविल सोसाइटी द्वारा कई पर्यावरण संबंधी संस्थाएं एवं संगठन स्थापित किए गए हैं। कोई भी पर्यावरणीय संगठन एक ऐसा संगठन होता है, जो पर्यावरण को किसी प्रकार के दुरूपयोग तथा आक्रमण के खिलाफ सुरक्षित करता है। साथ ही ये संगठन पर्यावरण की देखभाल तथा विश्लेषण भी करते हैं। इन लक्ष्यों को पाने के लिए प्रकोष्ठ भी बनाते हैं। पर्यावरणीय संगठन सरकारी संगठन हो सकते हैं। गैर सरकारी संगठन भी हो सकते हैं या ट्रस्ट भी हो सकते हैं। पर्यावरणीय संगठन वैश्विक राष्ट्रीय या स्थानीय हो सकते हैं। यह इकाई अग्रणीय पर्यावरणीय संगठनों के संबंध में सूचना प्रदान करती है। ये संगठन सहकारी या सरकार के बाहर के राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के संरक्षण तथा विकास के लिये कार्य करते हैं।

भारतीय सभ्यता के आरम्भ से ही पर्यावरण को सुरक्षित रखने की जागरूकता लोगों में मौजूद थी। वैदिक एवं वैदिककाल के बाद का इतिहास इस बात का साक्षी है लेकिन आधुनिक काल में विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद से, आर्थिक प्रगति को उच्च प्राथमिकता मिलने के कारण, पर्यावरण कुछ कम महत्वपूर्ण स्थान पर रह गया। केवल 1972 में पर्यावरणीय योजना एवं सहयोग के लिए राष्ट्रीय कमेटी (National Committee of Environment and Forest NCEPC) के लिये कदम उठाए गए जो धीरे–धीरे पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के रूप में परिवर्तित हुआ। शुरुआत में भारत के संविधान में पर्यावरण को बढ़ावा देने या उसके संरक्षण के लिये किसी प्रकार के प्रावधान नहीं थे लेकिन 1977 में हुए 42वें संविधान संशोधन में कुछ महत्वपूर्ण धाराएं जोड़ी गईं जो

सरकार पर एक स्वच्छ एवं सुरक्षित पर्यावरण प्रदान करने की जिम्मेदारी सौंपती हैं।

पर्यावरण शिक्षा एवं संरक्षण के अभियान को व्यापक रूप से चलाने के लिए संपूर्ण समाज उत्तरदायी है, किन्तु शिक्षक समाज का उत्तरदायित्व अधिक है। इसलिए इस लक्ष्य की प्राप्ति में शिक्षक की अहम भूमिका होती है। शिक्षक का संबंध विभिन्न आयु वर्गों के छात्रों से होता है। वह एक पथ प्रदर्शक की भांति छात्रों में पर्यावरण संरक्षण हेतु जागरूकता विकसित करने में विविध समस्याओं से उन्हें अवगत कराकर उनका नवीन एवं सफल समाधान ढूंढ़ने हेतु छात्रों को प्रेरित कर सकता है। आज के समय में सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण एक ज्वलंत समस्या है जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में पूरे विश्व को उसके भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वरूपों में विकृति लाकर प्रभावित कर रही है। पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त बनाये रखने में समाज के बुद्धिजीवी वर्ग से शिक्षक इस समस्या विशेष के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने में विशेष भूमिका निभा सकता है क्योंकि वह समाज की ज्वलंत समस्याओं को विद्यालय जैसी प्रयोगशाला में शोधन करने वाला एक संवेदनशील व जिम्मेदार नागरिक होता है जो अपने छात्रों में अपने पर्यावरण (भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक) के प्रति चेतना विकसित करने हेतु विभिन्न अधिगम क्रियाओं का आयोजन कर सकता है। विभिन्न क्रिया कलापों में विद्यार्थियों की प्रतिभागिता उन्हें अपने पर्यावरण के लिए जागरूक बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

टिप्पणी

2.8 मुख्य शब्दावली

- **सतत** : सर्वदा, हमेशा।
- **ह्रास** : क्षय, अवनति, अभाव।
- **मृदा** : मिट्टी
- **आहार** : भोजन, खाने की वस्तु।
- **ऊर्जा** : शक्ति, बल, कार्य करने की क्षमता।
- **प्रतिबंध** : रोक, पाबंदी, बंदिश।
- **परिष्कार** : सजावट, सिंगार, सफाई।

2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. सतत विकास क्या है?
2. नवीकरण ऊर्जा से आप क्या समझते हैं?
3. जल संरक्षण का अर्थ क्या है?
4. बायोमास ऊर्जा किसे कहते हैं?
5. मुख्य राष्ट्रीय पर्यावरण एजेंसियां कौन–कौन सी हैं?
6. असाइनमेंट का शिक्षण अधिगम क्रिया में क्या योगदान है?

टिप्पणी

दीघ–उत्तरीय प्रश्न

1. सतत विकास के विविध पहलुओं का विस्तृत विवेचन कीजिए।
2. जैव–विविधता का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसका विस्तारपूर्वक विश्लेषण कीजिए।
3. वायु ऊर्जा का इतिहास तथा सिद्धांत बताते हुए इसके लाभों पर प्रकाश डालिए।
4. सौर ऊर्जा क्या है? इसकी विशेषताएं स्पष्ट करते हुए इसके उपयोगों का वर्णन कीजिए।
5. सतत विकास की प्राप्ति में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की भूमिका की समीक्षा कीजिए।
6. सतत विकास हेतु किए जाने वाले अधिगम की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. Emitton E, 1989, *Nature Hazards and Global Change,* ITC Journal-314, 169-178.
2. Kormondy EJ, 1969, *Concepts of Ecology,* Prentice Hall, New Jersey.
3. Allaby, M, *Environment*, York: Gareth Stevens Publishing, 2000.
4. Carson, R, *Silent Spring*, Boston: Houghton Miffin Harcourt, 1962.
5. Rajagopalan, R, *Environmental Studies*, 2nd edn. New Delhi: Oxford University Press.
6. Rangarajan M. and K. Sivaramakrishnan (eds). *India's Environmental History-A Reader*: (Vol. 1: From Ancient Times to the Colonial Period, Vol. 2: Colonialism, Modernity, and the Nation). New Delhi: Orient Blackswan Press, 2011.
7. Rangarajan, M (ed), *Environmental Issues in India: A Reader*, New Delhi: Pearson Longman, 2007.
8. WCED (World Commission on Environment and Development). Our Common Future. New York: Oxford University Press, 1987.